सारिका

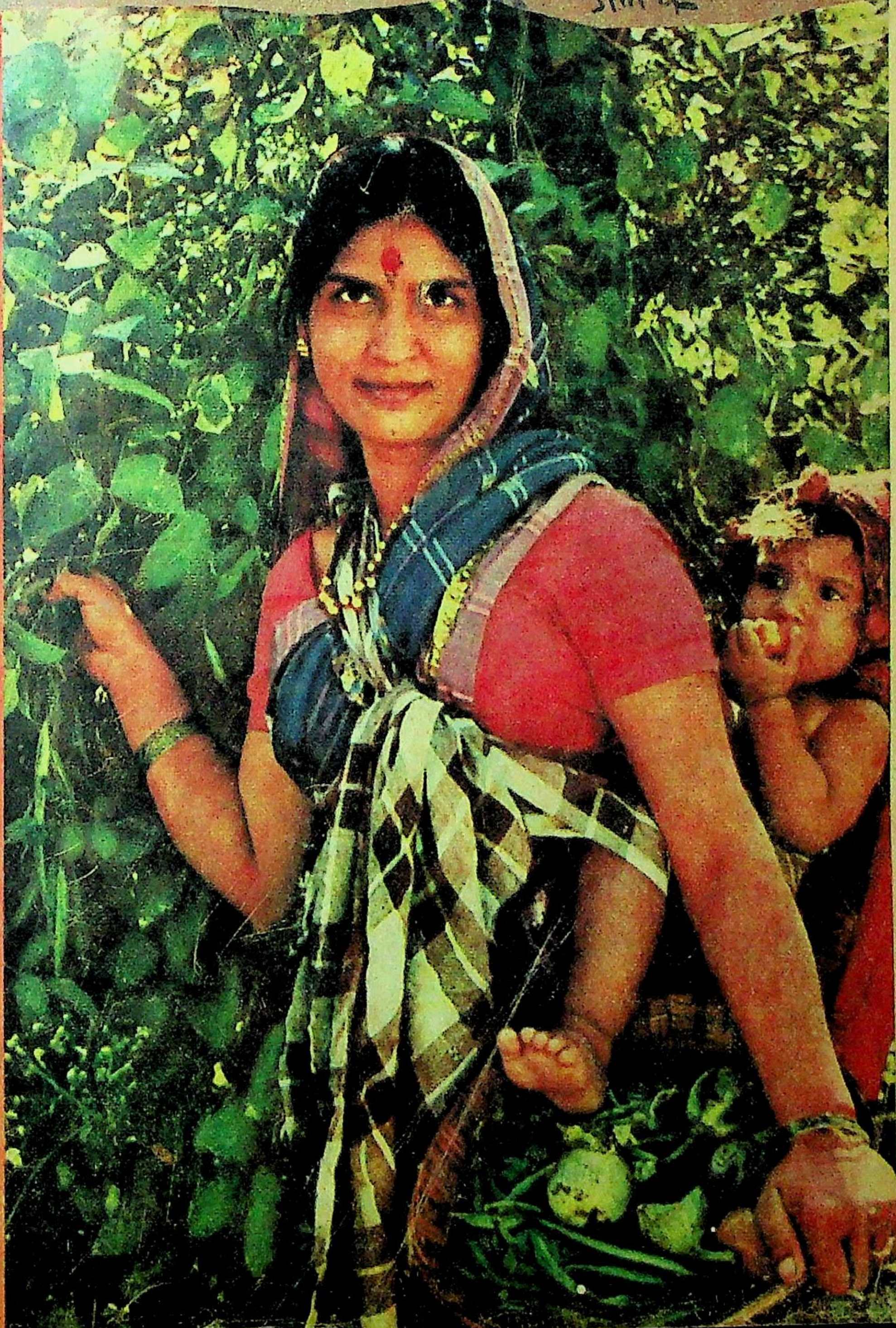
अक्तूबर १९७६

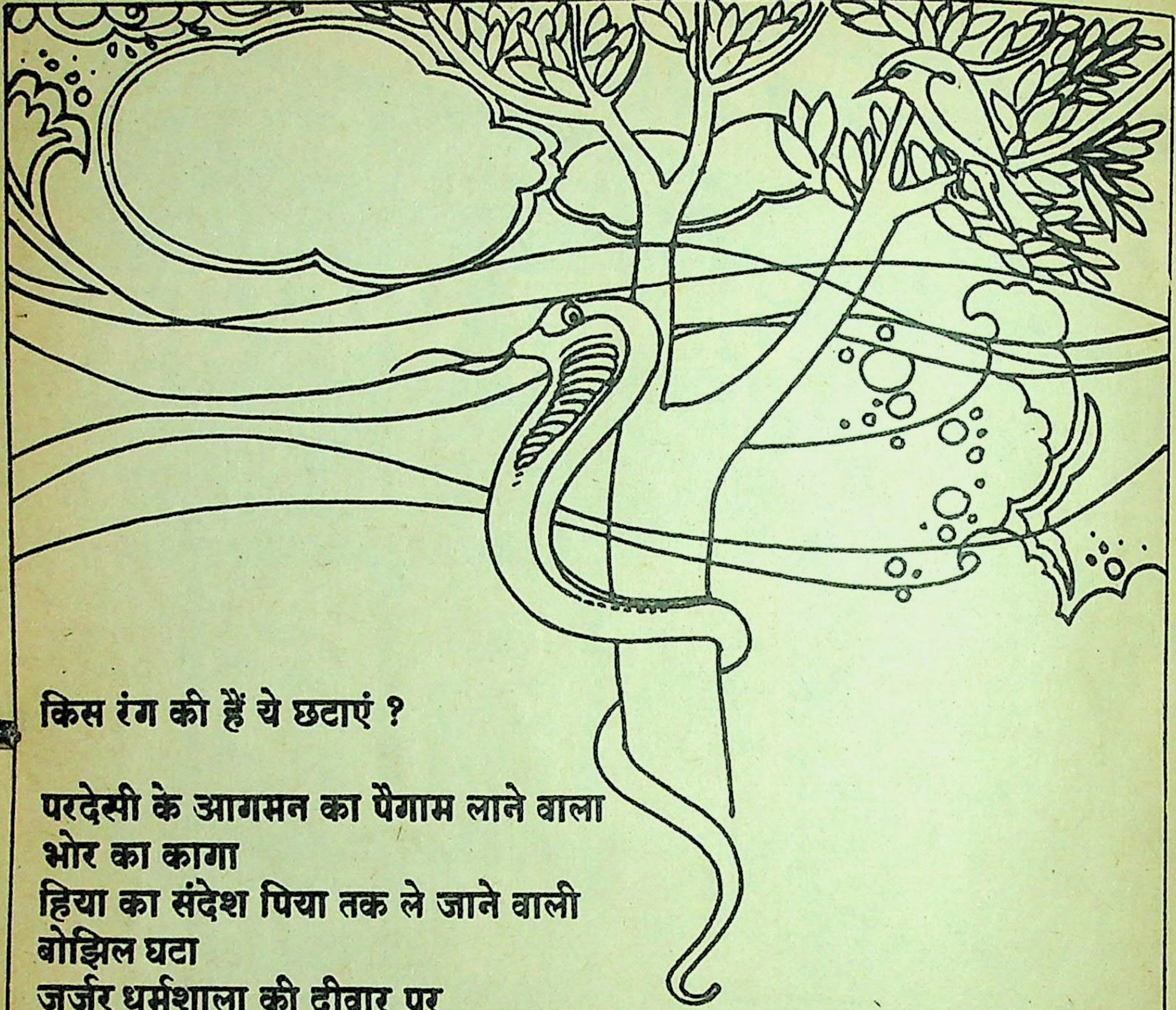
हिंदी: चार लंबी कहानियां तथा पांच अन्य कहानियां

भिमन्यु अनत
...वाहिक
...स
...ल पसीना'
पांचवीं किस्त

...कथाकार
...ल)

...क:
...साक्षस
...ाष पंत
...भ डोभाल
...ंद्र भाटिया
...कुमार त्रिपाठी
...थिलेश्वर आदि





प्रतीक्षा... प्रतीक्षा... प्रतीक्षा

सारिका के अगले अंकों में एक नयी शुरुआत--

आपके सपने

'सारिका' के पाठकों के लिए, पाठकों का ही, एक नया स्तंभ 'आपके सपने' प्रारंभ करने की हमारी योजना है. हम जो सपने देखते रहते हैं (निद्रावस्था में) उनमें अधिकांश तो बिल्कुल साधारण होते हैं, और प्रायः हमें याद भी नहीं रहते. किंतु कभी हमें अपने जीवन से संबंधित कुछ ऐसे विचित्र और अद्भुत स्वप्न दिखायी पड़ते हैं, जो हमें उद्वेलित कर देते हैं, जिन्हें हम भुला नहीं पाते और जो हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने किसी ऐसे ही सपने का वर्णन तथा उसने उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवरण, लगभग ६०० शब्दों में लिख भेजें. जो सपने रोचक और विशिष्टता लिये हुए होंगे, उन्हें इस स्तंभ में प्रकाशित किया जायेगा. लिफाफे पर लिखें—

'आपके सपने'
'सारिका'
टाइम्स ऑफ इंडिया
बंबई-१

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
अक्तूबर, १९७६
वर्ष : १६; पूर्णांक : १८६

हिंदी की चार लंबी कहानियां तथा अन्य कहानियां

लंबी कहानियां

जवाहर सिंह : अपना-अपना महाभारत : १६
जितेंद्र भाटिया : सिद्धार्थ का लौटना : ५२
प्रभातकुमार त्रिपाठी : सब्जी : ६४
मिथिलेश्वर : सरेआम : ७२

अन्य कहानियां

मुद्राराक्षस : अविश्वास : १२
दिनेश पाठक : शायद यह अंतहीन : २४
सुभाष पंत : श्रीमानजी : ३२
बल्लभ डोभाल : आहार, निद्रा, भय. . .: ४४
रवींद्र राजहंस : डरेवर साहेब: ४८

लघुकथाएं

राजकुमार लाखा : १५
शेर और बढ़ई : २९
नंदकिशोर अरोड़ा : ये दिन : ३०
मोहरसिंह यादव : अर्थ का गणित : ३०
शैलेंद्र जॉर्ज : अंतर : ३१
दुर्गादत्त दुर्गेश : व्यापारी : ३१
पश्चाताप : ३१
विचित्र पुरस्कार : ३१
धर्मेंद्र चोपड़ा : वर्ग-संघर्ष : ४३
नटखट बालिका : ४७
शंकर पुणतांबेकर: विद्यालय : ५१

धारावाहिक उपन्यास : पांचवीं किस्त

अभिमन्यु अनत : लाल पसीना : ८४

आद्य कथाकार (१४)

तालाब के किनारे पीपल का वृक्ष (तमिल)
एक विवेचन : एस. शिवप्रसाद सुंदरम् : ३६

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : १०
गोष्ठी-रपटें : ७९
कृतियां : ८०
फिल्में : ८२

● आमुख : गोविंद चंद्रे

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
● कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

जुलाई अंक

पाठकीय

समांतर कच्छी साहित्य-१

'बंधु' कुशावर्ती, लखनऊ : **'धरती का कलंक'**, **'लास्ट प्रापर्टी'**, **'घर-बाहर'** बेहद सशक्त और प्रभावित करने वाली कहानियां हैं. **'शिकारी या पुजारी'**, **'अतिथि सत्कार'**, **'विश्वास का व्यापारी'**, **'जब्बर काका'**, **'क्षत्राणी का स्वाभिमान'**, दिल को छूते हुए अपना अमित प्रभाव तो छोड़ती ही हैं, ये सब वहां की संस्कृति और लोकमानस के करीब भी ले जा कर खड़ा कर देती हैं. □

सीताराम मित्तल, खरसिया, रायगढ़ (म. प्र.). कच्छी साहित्य की लघुकथाओं ने अंतर को छू डाला. ऐसा लगता है कि 'सारिका' लघुकथाओं के रूप में शुक-सारिका के मीठे सुखप्रद कलरव की तरह पाठकों को आनंदित कर रही हो. □

नंदिनी ब्रह्मा, बसंतपुर (बिहार) : समांतर कथा-साहित्य का झंडा प्रबुद्ध मानस-पटल पर फहरा रहा है. और इसके पीछे एक जमात है जो समांतर कथा-साहित्य का जय बोल रही है, नारे लगा रही है. किंतु फेंकू मुसहर का दुख-दर्द दिल्ली से नहीं समझा-परखा जा सकता. उसके लिए गांव आना होगा. आज इमरजेंसी में भी फेंकू को जीने के लिए पूर्ववत ही संघर्ष करना पड़ता है. भविष्य में 'सारिका' के कथाकार इस वस्तुस्थिति को भी मुखरित करें, युगधर्म यही कहता है. समांतर कच्छी साहित्य—१ में कच्छी जीवन मुखर हो उठा है. तरला माटिया की **'प्रतिक्षा'** इस अंक की सबसे अच्छी कहानी जान पड़ती है. □

कृष्णगोपाल, जलालपुर, बस्ती (उ. प्र.) : **'बेकाबू'** और **'लास्ट प्रापर्टी'** के तीखे व्यंग्य ने विशेष प्रभावित किया. आरंभिक अंशों में मनु भाई बलराज मैनरा से और अंतिम अंशों में निर्मल वर्मा से प्रभावित दीखते हैं. रक्त-पात और भयावहता के प्रतीकों को बार-बार दोहराते हुए आगे बढ़नेवाली **'लाल आंखें, लाल रत्तियां, लाल गेरू**, भी कम रोचक नहीं. **'भरी दोपहर'** ने अपनी मांटी की सुगंध और करुणा बहुत कायदे से पेश की है. हां, अंतिम पांच पंक्तियां उसके प्रभाव को कम करती-सी लगीं.

'धरती का कलंक' जहां जयशंकर प्रसाद के **'आकाशदीप' 'गुंडा'** की याद दिलाती है, वहीं भाषा की आंचलिकता और अपनी संस्कारगत विशेषता के लिए उल्लेखनीय है. **'प्रतीक्षा'** में कई परिचित कोण आते हैं, जो आम प्रेम-कहानियों जैसे बोध देते हैं. किंतु एक कोण अपूर्व है—वही अंतहीन, अनंत प्रतीक्षा के लिए बुने-गढ़े गये झूठ का सहज कोण. □

लालसा लाल रंग, गढ़हरा, बेगूसराय (बिहार): सभी कहानियों में पृथक-पृथक धरती के तथ्य सिमटे मिले. आंचलिकता की वस्तुगत स्थिति एवं हिंदी साहित्य के लिए इसकी आवश्यकता का सामान्य बोध तो इस अंक में होता ही है. कच्छ के सूखे वातावरण में शबनमी धरातल की आहें, गुजराती दर्दों, दलित एवं पिछड़े आदमियों की प्रतिच्छाया, कच्छी संस्कृति तथा जनजीवन का स्पष्ट रेखांकन, इंसानों के जीवन-मूल्यों का विशुद्ध चित्रण तथा आम आदमी की मुहरों का दर्पण स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ है. लोककथाएं भी सत्य को परिभाषित करती हैं. अच्छा होता, इसी प्रकार अन्य प्रांतों की आंचलिकता से भी परिचित कराते. □

अनिलचंद्र ठाकुर, समेली, कटिहार (बिहार) : 'सारिका' सस्ती है, परंतु महंगी सामग्री देती है. साथ ही विश्व-साहित्य की कहानियों तक सेतु कायम करने में यह जो परिश्रम कर रही है, हिंदी साहित्य के लिए अविस्मरणीय और प्रशंसनीय है. □

प्रा. विजय शर्मा, जालना (महाराष्ट्र) : कच्छी जनजीवन को अभिव्यक्ति देने वाली बकुलेश, जयंत खत्री, तरला माटिया, सरोज पाठक आदि की कहानियां कथ्य की दृष्टि से बिलकुल ही कमजोर लगीं. ये तथ्य का उद्घाटन भले ही करती हों. परंतु इनमें कहानीपन का अभाव खटकता है. अच्छी लगनेवाली कहानियां हैं : **'बेकाबू' 'घर बाहर'** और **'लास्ट प्रापर्टी'**. कच्छ की मान्यताओं और जीवन-पद्धति का सशक्त कथ्य अपनी संपूर्ण ईमानदारी के साथ **'घर-बाहर'** में मुखरित हुआ है. किंतु कच्छी सभ्यता के प्रति भी कुछ शंकाओं की जमीन यह कहानी बनाती है. मुझे नहीं लगता किसी वर्ग सभ्यता में किसी बुजुर्ग को प्रणाम कहे जाने पर वह भी उत्तर में प्रणाम कहेगा और अधिक उम्रवाला पुरुष अपने से कम उम्र की कन्या के पैर छूकर ही रहेगा.

'सुधाकर, दिल्ली : **'लास्ट प्रापर्टी**, **'१५ डाउन'**, और **'धरती का कलंक'** के साथ **'प्रतीक्षा'** ने भी जगह पायी है, यह आश्चर्य

जुलाई और अगस्त अंक टटका फूल नियर हाथ में आइल. महक चारों ओर छितराइल. कुछ कहानी करेजा के भक् से छू गइल, लेकिन कुछ कहानी ओस बनके रह गइल अउर घाम लागते हवा हो गइल. गांव के किताब के थोड़ा अउर रसगर बनाई. परनाम !

—प्रमोद लोहिया
बक्सर (भोजपुर)

की बात, कम से कम मेरे लिए जरूर है. कच्छी लोककथाएं कथाएं आश्चर्यचकित करने वाली लोककथाएं हैं.

प्रेम नारायण, पटना : समांतर कच्छी साहित्य का कहानियों और सामान्य जनजीवन में कोई फर्क नजर नहीं आया. जहां मानव की **'लास्ट प्रापर्टी'** सचमुच परमेश्वर के दरबार में खोजी नहीं जा सकती, वहीं जीवन के नाटक को कहानियों की प्रांपटिंग के जरिये समझने में 'सारिका' का मासिक टूर स्मिता की **'प्रतीक्षा'** जैसी घुटनभरी और निरर्थक नहीं होती है. मन की अकुलाहट को भरी दोपहर में फूटे रोदन ने **'धरती का कलंक'** में दिलोदिमाग के वार पर चढ़ा दिया, पर **'बेकाबू'** के हुसैन की बेचैनी की मिजाज पुरसी **'लाल पसीना'** में रंगभेदीय अन्याय के दर्द से तड़पते कुंदन की आजीवन कैद से सहज मुक्ति की मुसकान के द्वारा हो गयी. **'गर्दिश के दिन'** में अजित पुष्कल के जीवन विकास की प्रक्रिया उनके संघर्षजन्य अनुभवों से बखूबी अभिव्यक्त हुई है. □

विमल झा, गोरखपुर (उ.प्र.) **लास्ट प्रापर्टी,** काफी आकर्षक महसूस हुई. एक सामान्य धरातल पर, संवादों से सजी यह कहानी काफी अंदर तक झकझोर गयी, बौखला गयी मुझे, और अंत में प्रश्न-चिह्न बन कर प्रस्तुत हो गयी मेरे सामने. **'लाल आंखें! लाल रत्तियां! लाल गेरुं!'**, **'भरी दोपहर'**, **'घर बाहर'**, **'१५ डाउन'** भी काफी पसंद आयीं. वास्तविकता तक इनकी पहुंच रही. □

चौधरी राजेंद्र सिंह, धनपुरी (म. प्र.): 'सारिका' जैसी स्तरीय पत्रिकाओं के पाठकों के सिवा अन्य 'पढ़े-लिखे लोगों' में से अधिकांश तो 'आज के आम जीवन (चर्चा)' से जुड़ी कहानियों को कहानी मानते ही नहीं. और ये वे लोग हैं जो नियमित रूप से समाचारपत्र पढ़ते हैं, क्लब जाया करते हैं और फिल्मों पर भी अच्छी बहस किया करते हैं, यानी जो अपने आपको आधुनिक कहलाना पसंद करते हैं, वे कहते हैं कि हीरो-हीरोइन (और विलेन) की स्टोरी न हो तो कहानी कैसी? ये पढ़े-लिखे लोग **'दरिंदे'** के सुनील और **'दमन-चक्र'** के दामू को नायक मान ही नहीं सकते.

कहीं यह समस्याग्रस्त जीवन-संग्राम से बौद्धिक पलायन तो नहीं? □

(नोट : इस पर हम अपने सुधी पाठकों के विचार आमंत्रित करते हैं—सं.)

रतन बहन शाह, जालना (महाराष्ट्र): तीन तरफ से समुद्र और एक ओर से रेगिस्तान से घिरे कच्छ को किसी एक प्रांत से नहीं, बल्कि राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीयता से जोड़ दिया है, और ऐसा पुल बना है जो सिर्फ दो स्थानों को जोड़नेवाला नहीं, बल्कि मानव से मानव को मिलाने वाला है. कच्छ की गाथा और संपूर्ण परिचय को जन-जन तक पहुंचाने का ऐतिहासिक कार्य स्वतंत्रता के बाद पहली बार शायद 'सारिका' के द्वारा संपन्न हुआ है.

मुझे विश्वास है कि देश-विदेश में बसते कच्छी 'सारिका' पढ़ कर छूटे वतन के एक टुकड़े को पाने की अनुभूति करेंगे और यह उनकी चेतना को गति दे कर अपने वतन के विकास के प्रति क्रियात्मक होने को प्रवृत्त करेगी. □

सत्यप्रिय शर्मा, उदगीर (महाराष्ट्र) : **'घर बाहर'** विशेष उल्लेखनीय है, इसके बाद **'भरी दोपहर'** और **'धरती का कलंक'**. लोककथाओं में **'शिकारी या पुजारी'**, **'अतिथि सत्कार'**, **'विश्वास का व्यापारी'**, **'क्षत्राणी का स्वाभिमान'**, तथा **'जब्बर काका'** बहुत पसंद आयीं.

'बेकाबू' सचमुच एक वास्तविक परिस्थिति तथा प्राणिमात्र की निसर्ग-प्रवृत्ति का चित्रण है. जहां **'प्रतीक्षा'** पाठक को अंत में थोड़ा-सा धक्का देती है, वहां **'लास्ट प्रापर्टी'** अनेक सामाजिक तथा व्यक्तिगत पहलुओं पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है. अजित पुष्कल के आत्मकथ्य से मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है : आगे बढ़ो! □

गत मई से थाइसिस ग्रस्त हो कर शैय्याग्रस्त हूं. पढ़ाई-लिखाई पर सख्त प्रतिबंध है. लेकिन 'सारिका' का हर अंक इस प्रतिबंध को तोड़ देता है. शायद भीतर ही भीतर कोई राहत मिलती है. तभी तो 'सारिका' का प्रयोग स्ट्रेप्टोमाइसिन के इंजेक्शन की तरह नियमित करने को बाध्य महसूसता हूं. दवाएं तो 'टाइम-बार्ड' भी हो जाती हैं, 'सारिका' कभी 'टाइम-बार्ड' नहीं होती.

जुलाई अंक में मनुभाई पांधी का लेख कच्छ-जनजीवन एवं कच्छ-संस्कृति को उभारता है. **प्रतीक्षा** एवं **क्षत्राणी का स्वाभिमान** बहुत पसंद आयीं.

—श्रीकुमार
संपादक, 'तीर' त्रैमासिक
गोडडा, संथाल परगना
(बिहार) □

ए. कुमार 'अनु' मेरठ (उ.प्र.): तरला माटिया की **'प्रतीक्षा'** पढ़ी. उसके अंत को पढ़ कर ऐसा लगा जैसे बिजली का करंट छू लिया हो.

बृज कुमार गांधी : मेरठ (उ. प्र.) : बंबई दूरदर्शन पर समांतर फिल्मों के विषय में जानकर हार्दिक संतोष मिला है. समांतरी पक्ष का यह एक सशक्त एवं विस्तृत पक्ष होगा, और इसके लिए **'समांतरी पत्रिका'** बधाई की पात्र है. यह बात कितनी सटीक है कि इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है.

(संचयन और संयोजन : रामगोपाल इमलासिया)

अविश्वास

• मुद्राराक्षस

उसका चेहरा बारिश में भीगे जूते की तरह चिप-चिपा हो आया और बांहें थोड़ी छोटी-छोटी-सी लगने लगीं. लगा अगर वह इसी तरह ज्यादा देर भावुक रहा तो उसके हाथ छोटे होकर गायब ही न हो जायें. अपनी बात को विश्वसनीय बनाने में वह कुछ हास्यास्पद-सा ही होता जा रहा था. मैं जानता हूं —— मुझे यकीन है कि आपको मैं अपनी बात सही तरह नहीं समझा पा रहा हूं लेकिन आप कल्पना कीजिए उसकी खूनी आंखें —— मैं, सिर्फ मैं ही महसूस कर सकता हूं कि वह किसी भी वक्त मेरा खून कर सकता है —— और फिर जनाब आप देखिए किस बदतमीजी से वह थूकता है.

समझ रहा हूं —— रावल ने मुनमुनाते हुए कहा, हालांकि वह बराबर उससे आंखें चुरा रहा था. गोकि वह निरंतर आनंद के प्रति अपनी सहानुभूति जाहिर करता जा रहा था लेकिन इतनी देर में उसे खुद अपनी सहानुभूति भी एक माफीनामा जैसी लगने लगी थी. इतनी देर के बाद उसे यह भी लगने लगा था कि आनंद से ज्यादा सहानुभूति की जरूरत उसे खुद हो आयी थी.

आनंद पूरे सवा घंटे से लगातार एक पांव फुटपाथ पर चढ़ाए हुए बोलता जा रहा था और रावल की बांह पर अपना कांपता हुआ पंजा, पसीने से चिपकाता जा रहा था, न जाने अपनी बातों के प्रति विश्वास की याद दिलाने के लिए या सहारे के लिए .

रावल उससे थोड़ा हट कर खड़ा होना चाहता था लेकिन उसे डर था कि आनंद अगली बार पंजा बढ़ाने पर उसे वहां न पाकर शायद भरभरा कर गिर ही जायगा. एक परेशानी और थी. रावल को महसूस हो रहा था कि आनंद के मन में उसकी सहानुभूति के प्रति शायद अविश्वास भी होने लगा था. बीच-बीच में आनंद शिकायत भी करता था कि रावल उसकी बात ध्यान से नहीं सुन रहा . इससे रावल थोड़ा हड़बड़ा जाता था और अक्सर या तो आनंद की बातों का संदर्भ ही भूल जाता था या फिर सुनी हुई बातों का सिलसिला ही गड़-बड़ा जाता था.

आनंद की बातों से अपरिचित वह कतई नहीं था. वही क्या, आनंद का शायद ही कोई परिचित हो जिसने आनंद और उसके पड़ोसी के इस झगड़े का किस्सा न सुना हो और कई लोग ऐसे भी थे जिन्होंनें लिहाज में आकर कई-कई बार सुना था. किस्सा कुछ अजीब ही था. जिस किस्से का अंत 'उसने मुझे खूनी आंखों से घूरा' जैसे निरामिष वाक्य से होता है, उसे सुनाने में या सुनने में आम तौर पर चार, साढ़े चार घंटे का समय लगता था.

उस झगड़े का किस्सा आनंद अक्सर यों शुरू करता था— इस किस्से की शुरुआत जिस हादसे से होती है, उसका बयान करने से पहले मैं एक ऐसे किर्दार यानी करेक्टर का मुख्तसर-सा खाका देना चाहूंगा जो मुझसे पहली बार सन् उन्नीस सौ तिरेपन में सितंबर की तेईस तारीख की सुबह नौ बजकर अठ्ठाइस मिनट पर मिला था और उस वक्त मैं एक इस कदर बदइख्लाक आदमी से मिल-कर आ रहा था जिसके बाद डायलाग्ज जो जाहिर हैं बाकी डायलाग्ज के आखिर में बोले गए थे, कुछ इस तरह मुझ पर पटके गए थे ——

इसके बाद आनंद की उस कहानी का या उसकी मुसीबत की दास्तान का वह हिस्सा शुरू होता था जो चार या सवा चार घंटे बाद अनवर नाम के एक ऐसे प्राणी पर जा सिमटता था जो इत्तफाक से आनंद का पड़ोसी था.

आनंद की आदत से रावल अपरिचित कतई नहीं था.

रावल ने अपना पूरा जोर लगा कर कहा—लेकिन भाई जहां तक मैं समझता हूं, ऐसे वक्त में आदमी को धीरज नहीं खोना चाहिए.

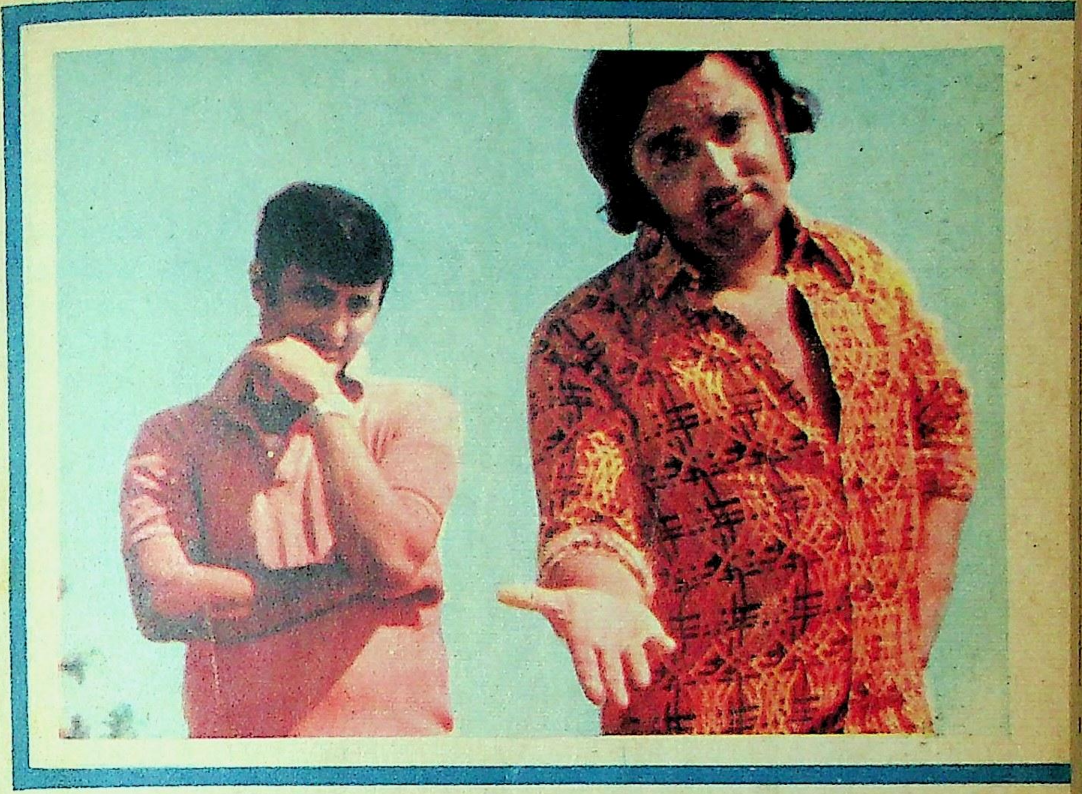
एक क्षण के लिए ऐसा लगा जैसे आनंद उसकी बात समझा नहीं लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आंखें फैल गयीं. वे अचानक इतनी ज्यादा फैल सकती हैं, यह रावल ने सोचा भी नहीं था.

वैसे आनंद की समस्या इतनी मामूली भी नहीं थी. वह निजामुद्दीन जैसी उम्दा जगह पर रहता था लेकिन वहां एक बेहद "पाजी" किस्म का आदमी आ गया था और कुछ दिनों से वह आनंद के पीछे हाथ धोकर पड़ गया था. इस आदमी से अपनी जान को खतरा है, यह बात आनंद कई रोज से अलग-अलग आदमियों को समझा चुका था. उसने अपना बयान इतनी मेहनत से तैयार किया था कि किसी भी वक्त, कहीं भी उसमें न तो शब्दों का क्रम बदलता था, न शब्दों की सूची. बल्कि एक सांस में वाली जाने पर वह विपत्ति-गाथा अच्छी-खासी, छपी-छपाई किताब लगती थी. कभी-कभी तो सुनने वाले को यह शक होने लगता था कि वह अचानक ही बोल पड़ेगा —— छपाई साफ-सुथरी और गेटप अच्छा है.

★ ★

कल रात जो घटना हुई, वह आनंद के विचार से और ज्यादा खतरनाक थी. वह रात के कोई ग्यारह बजे कनाट प्लेस की टेढ़ी-मेढ़ी, जलकुंभियों से पटी हुई झील के किनारे एक घंटा गुजारने के बाद घर लौट रहा था. चूंकि उसने अलग-अलग यात्री बिठाने वाली टैक्सी पकड़ी थी इसलिए बड़े चौराहे से घर तक का रास्ता पैदल ही तय करना था.

आनंद को खयाल भी नहीं था कि उसका पीछा किया जा रहा था. मगर यह सच था. सड़क पर दूर तक एक कतार में भूरी रोशनी वाले खंबे लगे हुए थे. जिस वक्त वह रोशनी में आता, उसका पीछा करने वाला अंधेरे में होता और जिस वक्त वह उजाले में चल रहा



होता, आनंद अंधेरे में चल रहा होता था.

आनंद को एक अजीब बात महसूस हुई. उसे लगा, गालीनुमा मदमदी-सी आवाज के साथ जूते बजाता हुआ वह आदमी उसका पीछा कर रहा है. अगर आनंद अपने कानों पर विश्वास कर सकता था तो निश्चय ही वह आवाज उससे एक निश्चित दूरी बनाए रखने की कोशिश कर रही थी.

इस बेहूदगी पर आनंद को थोड़ा गुस्सा आया. अपनी चाल को पीछा करने वाले आदमी से अलग करने के लिए उसने जानबूझ कर अपनी गति बारी-बारी से धीमी या तेज की. उसके पीछे की वह आवाज भी उसी क्रम से धीमी या तेज हो गयी.

इस तरह तो वह आदमी और शह पा जायगा — आनंद ने सोचा. लिहाजा अपने आपको लापरवाह बनाते हुए उसने एक खंभे के करीब रुक कर अपने जूते का तस्मा बांधने की कोशिश शुरू कर दी.

पीछा करने वाले की आवाज नजदीक आ गयी और फिर आनंद को लगभग कंपाती हुई, ठहर गयी. आनंद को लगा, हो सकता है वह मक्कार आदमी भी शायद अपने जूते का तस्मा बांधने लगा हो क्योंकि उसके रुकने के बाद कई पल और कुछ नहीं हुआ. आनंद तस्मा छोड़ कर फुर्ती से उसकी ओर घूम गया. चूंकि पीछा करने वाले आदमी ने रोशनी के दायरे में पूरी तरह प्रवेश नहीं किया था इसलिए वह एकदम काला और बेडौल लग रहा था.

आनंद ने अंधेरे के बावजूद उसे पहचानने की कोशिश की. साफ कुछ नहीं दिखा लेकिन उसने अनुमान लगाया कि वह काफी भद्दा होगा. शायद खूंखार और रोएंदार भी हो. उसे ताज्जुब हुआ कि ऐसे मौके पर उसे कुछ चीजें धुंधली क्यों दीखती हैं और कानों में सुरसुराहट-सी क्यों होने लगती है. आनंद को सुनाई कुछ नहीं दिया लेकिन उसे लगा कि उस शख्स ने मुरमुरी-सी आवाज में कुछ कहा.

— जनाब मैं अपने जूते के तस्मे बांध रहा था. आनंद ने किसी कदर क्षोभ से हकलाते हुए कहा, और जनाब तस्मा खुल जाना कोई अजीब बात तो है नहीं. और फिर जनाब अगर किसी के जूते का तस्मा सड़क पर खुल जाय तो क्या वह उसे घर ही जाकर बांधे?

इन असंबद्ध वाक्यों को सुनकर सामने वाला आदमी इस तरह खड़ा रहा जैसे उसे कुछ भी सुनाई न दिया हो. इस बात ने आनंद को और ज्यादा डरा दिया. उसे पता था कि अपराधी तर्क नहीं सुनता, आनंद अभी सोच ही रहा था कि वह आदमी हिला, हिलने के बाद उसने अपने अगले दांत चमकाए जैसे कोई घोड़ा हंसने की कोशिश कर रहा हो. दांत चमकाने के बाद वह आदमी मुड़ा और सड़क पर उतर गया. उसके बाद लापरवाही से चलता हुआ दूसरी ओर के अंधेरे में गायब हो गया.

आनंद जैसे नींद से जागा. उसने सबसे पहले अपनी घबराहट पर काबू पाना चाहा लेकिन यह आसान नहीं था.

अगर आनंद को इस घटना के एक दूसरे पहलू ने यकायक न घेरा होता तो निश्चय ही वह काफी देर इसी बात को लेकर परेशान होता रहता कि अब उसे अपने दांतों के अलावा इन अजनबी दांतों की देखभाल भी करनी पड़ेगी.

वह सचमुच डर गया था. वह आदमी भले ही छुरा

न मारता लेकिन मारपीट में लगी चोट की तकलीफों से वह अपरिचित नहीं था. अगर उस आदमी ने वैसी कोशिश की होती तो आनंद को शायद अपने आपको ठीक तरह से बचाना भी नहीं आता था और इस तरह असहाय होकर पिटना निश्चय ही अपमानजनक था.

वह दिन सचमुच ही खराब था. ऊपर की मंजिल पर जंगले से घिरी, लंबी-चौड़ी छत वाले अपने कमरे में वह पहुंचा तो उसने पाया, वह फिर वहीं बैठा हुआ था, स्थिर, जैसे माफी-सी मांगता हुआ.

इस बार उसकी मौजूदगी पर आनंद यकायक गुस्सा नहीं हो पाया. बल्कि वह हताश हो गया. हल्के हरे रंग की साफ-सुथरी दीवार पर आनंद ने कभी एक कील लगायी थी. उसी कील के माथे पर बड़े इत्मीनान के साथ हमेशा की ही तरह वह नन्हा-सा मच्छर बैठा था. वह नन्हा-सा मच्छर पिछले कुछ दिनों से एक और समस्या बन गया था.

आनंद का मकान, यों तो काफी होशियारी से बनाया गया था. बल्कि कहा जा सकता है कि ऐसी घटनाओं के प्रति सावधानी बरतने का खासा खयाल रखा गया था दरवाजे और खिड़कियों में दुहरे पल्ले लगे हुए थे जिनमें से एक में बारीक जाली थी जिससे हवा तो अंदर आ सकती थी लेकिन मच्छर नहीं आ सकता था. जालीदार पल्लों के साथ स्प्रिंग भी थे ताकि असावधानी से खुले छोड़ देने पर भी वे खुद-ब-खुद बंद हो जायं. ऐसी हालत में कोई बहुत ही फुर्तीला और चालाक मच्छर ही अंदर आ सकता था. वह भी सिर्फ इस शर्त पर कि वह अंदर आने की घात में काफी देर से वहीं डटा रहा हो.

आनंद अगर इस बात पर विश्वास कर भी लेता कि वह मच्छर उसके साथ ही साथ चालाकी से अंदर आया है तो इस बात पर यकीन करना मुश्किल होता कि इतनी जल्दी वह अंदर आने के बाद कील खोज कर उस पर बैठ भी गया.ऊंघने भी लगा.

आनंद को उसकी इस मक्कारी से जबर्दस्त चिढ़ थी. आनंद को पता था कि वह ऊंघ नहीं रहा था बल्कि निश्चय ही वह कोलतार की नहीं-नन्हीं बूंदों जैसी चिपचिपी आंखों से आनंद की एक एक हरकत पर गौर कर रहा होगा. और बेहूदगी यह कि बैठने के लिए वह इतने बड़े कमरे में सिर्फ वह कील ही चुनता था.

मच्छर मारने के लिए आनंद एक बार लंबी मूठ-वाला कड़छीनुमा, प्लास्टिक का हथियार भी खरीद लाया था लेकिन कील के ऊपर बैठे उस मच्छर को इस हथियार से मारना आसान नहीं था. इस कोशिश में एक बार वह हथियार में छेद भी कर बैठा था.

यों उस बदतमीज कीड़े में धीरज की भी इन्तहा थी. वह तब तक इंतजार कर सकता था जब तक कि आनंद कपड़े बदल कर सोने से पहले कुछ पढ़े, बत्ती बुझाए, लेट कर ऊंघे और फिर सो जाय. ठीक पहली नींद आने के बाद ही शायद वह धूर्तता के साथ मुस्कराता होगा और कील से उतर कर आनंद की ओर चल देता होगा. अक्सर वह उसके बदन के किसी न किसी हिस्से में काटने में सफल हो ही जाता था.

आनंद और उस नन्हें-से कीड़े की लड़ाई काफी अरसे से चली आ रही थी. वह छोटी-सी लड़ाई कितनी कुशलता और सूझबूझ से लड़ी जाती थी, इसका एहसास सिर्फ छापामार युद्ध देखकर ही हो सकता है.

कभी-कभी नींद में मच्छर के निकट आने पर किसी छोटे-मोटे हवाई जहाज की-सी भिनभिनाहट सुनाई पड़ जाती तो उसकी नींद खुल जाती थी. उसकी हथेली इस बात के लिए तैयार हो जाती थी कि वह कान के पास बैठे और हथेली वहां जा टकराए.

मच्छर के बैठते ही हथेली मार बैठने पर चालाक मच्छर बिना कोई नुकसान उठाए भाग खड़ा होता था. इसलिए आनंद अक्सर इस बात का इंतजार करता था कि वह वहां बैठे और बाकायदा डंक जमा दे.

लेकिन मच्छर को भी उसकी चालाकियों का पता चल गया था. अक्सर डंक जमाने के बावजूद थप्पड़ वहां पहुंचने से ठीक एक पल पहले वह उड़ लेता था. और ऐसे कई झूठ बोलने के बाद वह मच्छर यकायक आनंद के शरीर पर किसी ऐसी जगह काट लेता था जहां उसे गुमान भी न हो सके.

ऐसी हालत में तिलमिलाता हुआ आनंद उठ कर बत्ती जलाता था और कड़छी जैसा प्लास्टिक का हथियार उठा लेता था. उसके बाद मच्छर की भागदौड़ लगभग दयनीय ही होती थी. कड़छी नुमा हथियार आखिरकार कहीं न कहीं उसे दबोच ही लेता था. आनंद जिस वक्त मच्छर की लाश नजदीक से देखता था, उसे एक अलौकिक सुख मिलता था.

इसके बाद उसे बहुत अच्छी नींद आती थीं. यह दूसरी बात है कि अगले रोज ठीक उसी जगह वैसा ही एक और मच्छर बैठा मिलता था.

लेकिन वह दिन यों भी खराब था कि कमरे में घुसते ही सबसे पहली चीज उसे जो दिखी, वह थी वही मच्छर.

* *

आनंद निश्चय ही इस वक्त इस दूसरी लड़ाई के लिए तैयार नहीं था. बल्कि पिछली थोड़ी देर में ही थकने के बाद इतनी प्यास लग रही थी कि वह खासी कमजोरी महसूस कर रहा था. ऐसे वक्त में उसे यह भी डर हुआ कि शायद इस बार यह मच्छर खुद भी लड़ाई में उसका साथ नहीं देगा बल्कि उसी रहस्यमय आदमी की तरह लिजलिजे दांत चमका कर एक ओर चल दिया.

आनंद ने घबरा कर बत्ती बुझा दी और तेजी से कमरे से बाहर आया गया.

उस सोई हुई बस्ती में काफी सन्नाटा था. बहुत दूर कोई जिद्दी कुत्ता रुक-रुक कर भौंक देता था. इसी लापरवाही भरी खामोशी में एक आवाज गूंजी, किसी के हंसने की.

आनंद ने घूम कर देखा. वही थे. वही तीनों. अनवर और उसके दो घटिया दोस्त. काफी फासलों पर

अपनी छत पर पीली रोशनी वाले बल्ब के नीचे कतार में खड़े थे. वे फिर हंसे और इस बार एक साथ मिल कर हंसे.

इसके आगे आनंद कुछ भी बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था. वह सब कुछ उसके व्यक्तित्वमात्र को एक चुनौती था. लगातार होती जा रही ज्यादतियों के खिलाफ यकायक उसने एक फैसला कर लिया —— अब वह प्रतिरोध करेगा, जरूर करेगा, पूरे जोर से करेगा.

हां, यह दूसरी बात है कि इस फैसले को हाथ में पकड़ने के बाद वह थोड़ा बेढंगा-सा हो आया क्योंकि शायद वह किसी तरह के फैसले के लिए बना ही नहीं था. वह इस तरह डगमगाने लगा जैसे उसने अपने से कहीं ज्यादा वजनी कोई चीज बलात उठा ली हो.

कमरे के दरवाजे के बाहर खुली छत को घेर कर जो जंगला खड़ा हुआ था, उसे आगे बढ़ कर उसने थाम लिया और आगे की ओर झुक गया. दूसरी तरफ की छत पर उजाले की गुफा में वे तीनों अभी हंसे जा रहे थे.

आनंद पसलियों का पूरा जोर लगा कर ऊंची आवाज में कुछ बोला. उसने जो कुछ कहा वह लगभग इस तरह था ——जनाब, आप दूसरों के लिए परेशानी पैदा करने वाली यह बत्ती बंद कीजिए.

उजाले की उस गुफा में खड़े लोगों की हंसी यकायक रुक गयी. आनंद ने और अधिक उत्तेजित हो कर वही बात फिर दुहराई. इस बार वे तीनों हिले और बड़े इत्मीनान से वहां पड़ी कुर्सियों पर जा बैठे.

बोलते-बोलते उसका गला खुश्क हो गया और आंखें इस कदर सुर्ख हो गयीं कि खून टपकने को हो आया. पसलियों की जड़ों में तीखी चुभन महसूस होने लगी और होठों के सिरों पर लंबी दौड़ से थके घोड़े की तरह झाग निकलने लगा. पसलियों के तीखे दर्द पर काबू पाने की भरपूर कोशिश करते हुए एक आखिरी वाक्य उसने बोला —— और जनाब बेहूदगी घुसेड़ कर रख दूंगा हां, घुसेड़ कर. समझ में आया, घुसेड़ कर. . .

आनंद ने लगभग बेचारगीभरी आवाज में रावल को बताया था कि इतना बोलने के बाद वह बेहोश हो गया और जंगले के पास ही गिर गया.

——हो जाता है. अक्सर ऐसा हो जाता है, रावल ने उसे सांत्वना देते हुए अपनी आवाज को भरसक भारी बना कर कहा, बात ये है कि आदमी को गुस्सा ज्यादा आ जाय तो समझो गुस्से से ही काफी दबाव पड़ता है और गुस्से में बोलने से तो पेट में गैस भी बनने लगती है.

आनंद इस बात से संतुष्ट नहीं हो सका, यह रावल ने महसूस किया. निराशा के साथ आनंद ने अपने दोनों बाजू लाचारी की तरह नीचे लटका लिये, बिल्कुल ढीले, जरा-सी आहट पर झड़ कर गिर पड़ने को तैयार. □□□

द्वारा श्री शिवचरणलाल,
७८, दुर्विजय गंज,
लखनऊ.

कच्छी लोककथा

राजकुमार लाखा

राजकुमार लाखा प्रातः दातून कर रहे थे कि उनकी भाभियों ने उन्हें रंग से सराबोर कर दिया. पांचों रानियों में से एक सोढ़ारानी को यह तनिक भी अच्छा न लगा कि उसके अपने पुत्र पर किसी भाभी ने रंग नहीं डाला. उसने रंग का भरा एक घड़ा लाखा के पास पहुंचाया और उसे उसकाया कि वह भी भाभियों पर रंग डाले. जब लाखा पर दुबारा रंग की बौछार होने लगी तो उसने भी पिचकारी से भाभियों को रंग दिया. दुर्भाग्यवश उस रंग से सोढ़ारानी भी जो जानबूझ कर कपड़े बदल कर मुंह छुपा कर उस झुंड में खड़ी थी, रंग से सराबोर हो गयी. इस पर वह क्रोधित हो गयी और जामफूल के पास शिकायत ले गयी.

उसकी इस हरकत से जामफूल भी नाराज हो उठे और उसे देश-निकाला दे दिया. लाखा ने पिता के आदेश का पालन किया किंतु जाते-जाते कह गया कि जो कोई जामफूल के स्वर्ग जाने अथवा शीणाय सरोवर के सूखने का समाचार मेरे पास सर्वप्रथम लायेगा, उसका सिर मैं धड़ से अलग किये बिना न रहूंगा.

और लाखा ने अनहिलपुर-पाटण में जा कर वहां के शासक सामंत सिंह के यहां शरण ली. वह राजकाज संबंधी उसके गुणों पर इतना मुग्ध हुआ कि उसने अपनी पुत्री का ब्याह लाखा से कर दिया.

उधर लाखाकुमार के कच्छ छोड़ते ही वर्षा ने भी वहां से विदा ले ली. अकाल पड़ गया. जामफूल और उसकी एक रानी भी संतप्त हो चल बसे. प्रजा लाखा की वापसी के लिए बेचैन हो उठी. ऐसे में बचपन में लाखा के साथ खेली हुई डाही कुमारी तानपुरा ले, छद्मवेष में घूमती-फिरती मध्यरात्रि के समय अनहिलपुर-पाटण पहुंच लाखा कुमार के शयन-गृह के नीचे आ पहुंची. स्वदेश के मधुर संगीत को सुनकर वह उठ बैठा. उसने झरोखे में से पूछा——मुझे स्वदेश लौटने की मांग करनेवाले तुम्हारे दुखी हृदय को किसी ने ठेस पहुंचायी है?

चतुर डाही ने लाखा की आवाज पहचान ली और बोली——फूल तो अब बगीचे में ही दिखलाई पड़ता है. शीणाय सरोवर की शोभा जाती रही. यह सुन लाखा को बड़ा आघात पहुंचा. प्रातः होते ही वह सामंत सिंह से आज्ञा लेकर दलबल सहित स्वदेश कच्छ को लौट चला. और कच्छ की भूमि पर उसके चरण पड़ते ही वहां मूसलाधार वृष्टि होने लगी. □□□

अपना-अपना महाभारत

• जवाहर सिंह

बुटाई ने चाय का एक हल्का-सा घूंट ले कर कुछ अजीब ढंग से मुंह सिकोड़ा और गिलास को जोर से पटक दिया—साला, यह चाह है या शरबत ...लीकर का कुछ पता ही नहीं चलता ...

कांच का गिलास बांस के खंभे से टकरा कर चूर-चूर हो गया.

रामराज, धनपत और खोमारी होठों से चाय का गिलास लगाये भौंचक्के-से बुटाई के चेहरे की ओर देखने लगे. बुटाई की नाराजगी का काई कारण उनकी समझ में नहीं आया. ...इतनी बढ़िया... मीठी चाय बुटाई ने क्यों फेंक दी ... और केवल चाय ही नहीं फेंकी, शीशे का गिलास भी फोड़ दिया—साला, पगला गया है क्या ...! दो साल पर कलकत्ते से लौटा है ...तो इसके दिमाग का कोई थाह-पता ही नहीं मिलता ...

—माय...! यह चाह बनी है या लस्सी ! ... फिर पानी गरम करने को बोल दो, मैं खुद बनाऊंगा ... वह बाहर से ही इतने जोर से चिल्लाकर बोला कि आंगन में उसकी पत्नी भी आवाज सुन ले.

बहू ने अपनी सास की ओर आश्चर्य से देखा—माईजी, अभी तो एक लोटा चाह बनी है ... फिर काहे को पानी गरम होगा ...!

बुढिया ने हाथ के हुक्के को दीवाल से टिकाया और दोनों घुटनों पर हाथ रख कर 'हाय...राम' कर के उठी. दरवाजे पर आकर बोली—किसुना की माय पूछ रही है कि अब पानी गरम करके का होगा ..!

—उसका कपार होगा ...! कान में क्या ठूसा है—केला ...! सुनती नहीं, फिर चाह बनेगी ...! बुटाई ने पैंट की जेब से चार मीनार की डिब्बी निकालते हुए तमक कर कहा.

धनपत गिलास के पेंदे में बची चाय की अंतिम किस्त को जोर से सुड़कते हुए बोला—क्यों बुटाई माय, चाह तो फसट किलास बनी है ...तुमको काहे नहीं अच्छी लगी?

तब तक बुटाई ने डिब्बी से एक सिगरेट निकाल ली थी. उसका एक सिरा डिब्बी पर ठोकता हुआ लापरवाही से हंसकर बोला—तुम लोग ठहरे साल-छह महीने पर कहीं मेले-ठेले में चाह पीनेवाले मनई ...शरबत की तरह मीठी चाह गटर-गटर पी लोगे और होंठ चाटते हुए कहोगे कि 'हाई किलास' की चाह है. लेकिन यहां तो सिगरेट और चाह पर ही जिंदगी चलती है... होटल का काम तो बिना सिगरेट-चाह के होगा ही नहीं. दिन भर चाह और सिगरेट ...चाह और सिगरेट, एक घंटा भी न मिले तो मेरा माथा दुखने लगता है.

उसने होठों के बीच सिगरेट को तिरछे दबाया और लाइटर जला कर एक गहरा कश लिया. होठों के बिलकुल दूसरे किनारे से धीरे-धीरे धुआं निकालते हुए बोला—असल में धनपत भाई, बंगालियों के साथ रहते-रहते मुझे भी बंगला चाह पीने की आदत हो गयी है ...खूब कड़ी लीकरवाली चाह.

...इस्स ! साला, सिगरेट भी बंगालियों की ही तरह पीना सीख गया है ...! खोमारी ने मन ही मन कहा—बलौक के डाकदर दासबाबू भी तो ऐसे ही मुंह में एक किनारे सिगरेट दबाये रोगियों का हाल-चाल पूछते रहते हैं ...की रे, पेट में दोरद होता हाय ... कोल में किया-किया खाया रिहा ....खोमारी को हंसी आ गयी.

—यों हंसते हो खोमारी भाय ...! बुटाई को लगा कि उसका सिगरेट पीना देखकर ही खोमारी हंसा है.

—किसुना का माय कहती है कि अब दूध कहां है कि फिर चाह बनेगी ... बुढ़िया फिर दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी थी.

—माईजी, बोल दीजिये कि बटोरन काका की गाय एक घंटा के बाद लगेगी, तो वह दूध देने को बोले है. बुटाई की पत्नी सास की ओट में पीछे खड़ी सकुचातेशरमाते बोली.

—उसी समय क्यों नहीं बोली ...? ...मुंह में क्या भरा था—कद्दू! आंखें तरेरकर पत्नी की ओर घूरते हुए बुटाई चीखा. मेरे सूटकेस में 'बिलैती' दूध का डब्बा है, निकाल लेना. साला बुटाई किसी की गाय-भैंस के दूध के आसरे चाह नहीं पीता है ...सारा सामान सूटकेस में बंद कर कलकत्ते से ही चला है.

उसकी पत्नी दौड़ती हुई आंगन की ओर भागी, जैसे बुटाई की तनी हुई भौंहें उसे धक्का मार कर घर की ओर ठेलती जा रही हों.

बुटाई ने अपने साथियों की ओर हिकारत से देखा. उनके चेहरों पर उसका रोब चिपका हुआ था. उसे प्रसन्नता हुई ...एक गहरा संतोष. गांव में पहली विजय तो उसे मिल गयी ...साथियों पर धाक जम गयी थी. लेकिन अब देखें ...आगे का प्रोग्राम कैसा होता है, असली लड़ाई तो वहीं है ... गांव में भी शायद रेडियोवाली खबर लोगों को मालूम हो गयी होगी ... बाबू टोले में कई लोगों के पास रेडियो हैं. नंदलाल सिंह ने जब सुना होगा कि सरकार ने कानून बनाकर हरिजनों और गरीब लोगों के सारे कर्ज माफ कर दिये, और उनकी बंधक पड़ी जमीन बिना पैसा दिये ही लौटवा रही है, तब तो उस मुच्छर राम ने अन्न-पानी सब छोड़

दिया होगा.

अपने मालिक नंदलाल सिंह का नाम बुटाई ने मुच्छर राम रख दिया था. गिलहरी की पूंछ की तरह बेतरतीब फैली उनकी मूंछें कुछ अजीब घिनौनी-सी लगती भी थीं. एक क्षण के लिए नंदलाल सिंह का वह मूंछयुक्त बदसूरत चेहरा उसकी आंखों में कौंध गया. दो साल पहले की वह घटना. पांच ही दिन पहले वह गौना करा कर गंगौलीवाली को घर लाया था. शादी के समय तो वह दुबली-पतली नन्हीं-सी बच्ची थी. देख कर उसका मन न जाने कैसा-कैसा हो गया था. लेकिन पांच साल के बाद जब गौना करा कर ले आया, तो सुनयनी को देख कर वह पहचान भी न सका था. उसका तो जैसे चोला ही बदल गया था. अंग-अंग से जवानी गामा से धान की बालियों की तरह फूट-फूट कर निकल रही थी. इन्हीं बालियों को सहेजने-संवारने में वह इतना व्यस्त हो गया था कि मालिक के खेत में हल चलाने की बात भी उसे याद न रही थी.

और तभी एक दिन पौ फटने के पहले ही आकर बाबू नंदलाल सिंह ने उसकी झोपड़ी के दरवाजे पर इतनी जोर से लात मारी थी कि उसे लगा था, भूकंप आ गया. बांस के फट्ठों से बनीं झोंपड़ी की दीवारें बड़े जोर से हिल उठी थीं और सारा घर चरमरा उठा था. वह हड़बड़ाकर चारपाई पर से कूद कर दरवाजे की ओर भागा था. पर दरवाजा खोलते समय उसे अपनी पत्नी का ख्याल हो आया था. अस्त-व्यस्त कपड़ों में सुनयनी अब भी बेखबर पड़ी थी. उसका हाथ पकड़ झकझोरते हुए उसने उठाया था—उठ सुनयनी, जल्दी भाग . . . धरती डोल रही है . . . भाग. . . भाग. . .

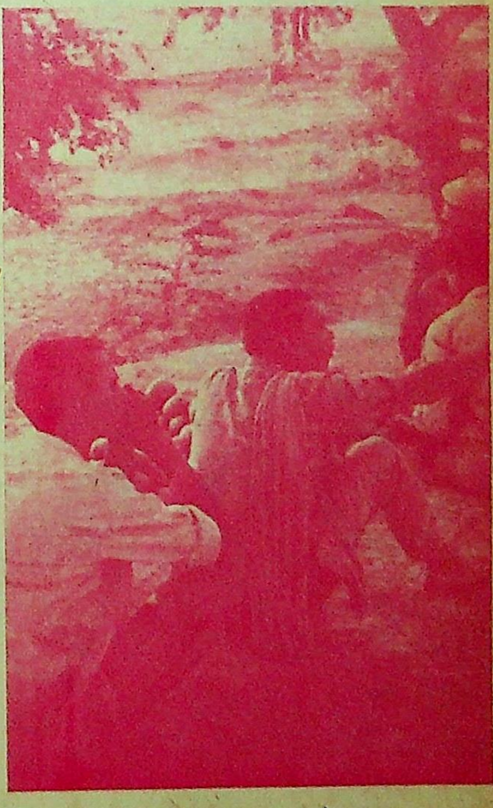
लेकिन दरवाजा खोला, तो मालिक नंदलाल सिंह भूकंप के रूप में खड़े मिले थे. वह बेतरह सिटपिटा गया था. नंदलाल सिंह की आंखें उस पर नहीं, कमरे के भीतर अपने कपड़े संभालती सुनयनी पर गिद्ध की तरह टिकी हुई थीं. क्यों रे बुटइया, तू यहां मेहरी की टांग पर टांग चढ़ा कर मस्ती काट रहा है और उधर मेरा खेत परती पड़ रहा है . . . ! नंदलाल सिंह ने सुनयनी पर आंखें बिछाये होंठों पर जीभ फेरते हुए कहा था— तू तो मेहरी का रूप चाट कर जी लेगा . . . पर मेरी गृहस्थी नहीं हुई तो मैं क्या तुम्हारी . . . मार कर जीऊंगा . . . ! . . .साला देहचोर, पहले मेरा कर्जा चुका दे . . . फिर बीवी को गोद में लेकर आराम से सो रह . . .हां. मैं उसी रुपये से दूसरा हलवाहा ठीक कर लूंगा . . . नमकहराम. . . बेईमान . . . !

एक ही सांस में वह सब कुछ बक गये थे. बुटाई को लगा था कि तब नहीं, तो अब भूकंप जरूर आ गया है . . . . खून खौलकर रह गया था उसका. और उसी खौलते खून का उबाल उसके मुंह से आग की तरह निकल पड़ा था—बाबू साहब, कौन अपनी मेहरी के साथ नहीं सोता . . . ! क्या आप नहीं सोते . . . गांव के और लोग नहीं सोते . . . . ? हम गरीब हैं . . .हरिजन हैं . . .आपके कर्जदार हैं . . .तो क्या हमारी इज्जत नहीं है . . . . ! नयी दुल्हन के सामने आप ऐसी-ऐसी बेपर्द बातें बोल रहे हैं . . . गालियां दे रहे हैं . . . आखिर गरीब की भी अपनी एक इज्जत होती है . . .

——अरे वाह रे इज्जतवाले . . . ! नंदलाल सिंह ने मुंह ऐंठ कर कहा था, देखूं तो तेरी इज्जत कितनी बड़ी है . . . ! अपने दादा का खाया कर्ज तो अभी चुका नहीं पाया . . .जिस जमीन पर खड़ा हो कर अपनी इज्जत दिखा रहा है, वह भी तो बीस वर्षों से मेरे यहां बंधक पड़ी हुई है . . . और बन रहा है इज्जतदार . . ! हरामखोर साला, मुझसे जबान लड़ाता है . . . !

बुटाई को लगा था कि उसे गांव की पंचायत में नंगा कर के चूतड़ पर जूते लगाये जा रहे हैं . . . काश, यह धरती फट जाती और वह उसमें डूब जाता!

सिर झुकाये ही वह बोला था—केवल अस्सी रुपये ही तो मेरे बाबा ने किसी जमाने में आपसे लिये थे . . . . ! उसी के एवज में वह आपका हल चलाते-चलाते खुद भी चले गये . . . मेरा बाप जिंदगी भर आपके खेतों में बैल की तरह खटता रहा और बीमार होकर बिना दवा-दारू के भरी जवानी में मर गया, सात वर्ष की उम्र से मैं आप की भैंसों की चरवाही करता रहा और पंद्रह लगते-लगते आपने हल की मूंठ मुझे पकड़वा दी. दस बरस हो गये मुझे भी आपका हल चलाते . . . क्या अब भी आपके अस्सी रुपयों की सधान न हो सकी . . . ? मेरे बाप की शादी में पचास रुपये दे कर आपने इस घर की जमीन केवाला लिखवा ली थी, तब से सैकड़ों रुपये आपको मेरे बाप ने दिये . . . मैंने भी पचास रुपये दिये हैं लेकिन आप



• फो. सक्सेना


उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से
NESCAFE
instant coffee
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १०० % शुद्ध कॉफी से
बनी है
दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी
NSC-2/76 HIN

जमीन का कागज नहीं लौटा रहे हैं, तो हम क्या करें...?

—जरा सुनो तो इसकी बातें...! नंदलाल सिंह बेशर्मी से हंसे थे, बुटाई की मां, जरा अपने बेटे का कानून बघारना तो सुनो....! साला, सबेरे-सबेरे ताड़ी-दारू पी आया है क्या...! तुम लोगों ने मेरे खेत में मजदूरी की, तो उसके बदले में दो सेर अनाज और 'जलखई' भी तो देता रहा हूं.....तुम लोगों का मन सुराज होने के बाद बहुत चढ़ गया...तभी तो इतनी लंबी-लंबी बातें निकल रही हैं तुम्हारे मुंह से. असल बाप का बेटा है, तो मेरे सारे रुपये अभी लौटा दे...मैं ढूंढ़ लूंगा दूसरा हरवाहा.

ठेस लगने से चोट तो सबको लगती है...पक्की सिलाई वाले मजबूत से मजबूत जूते का मुंह भी ठोकर लगने से कभी-कभी बेतरह खुल जाता है. बुटाई भी इस करारी चोट को बर्दाश्त नहीं कर सका था. उसका मुंह फटे जूते-सा बेबाक खुल गया था—ठीक है बाबू सा'ब, आपके रुपये मिल जायेंगे...पाई-पाई का हिसाब मिल जायेगा. एक साल के अंदर-अंदर अगर सारे रुपये आपके मुंह पर बुटाई ने नहीं फेंक दिये...तो.... अपने बाप की बूंद का नहीं...!

पार्थ-प्रतिज्ञा...! जयद्रथ-वध की पार्थ प्रतिज्ञा.. गांव में एक बार तिरहुतिया नौटंकी पार्टीवालों ने 'पार्थ-प्रतिज्ञा' नाटक किया था....तड़-तड़...तड़... धराम...धराम..नगारे की चोट पर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी ...सूर्यास्त के पूर्व अगर...लेकिन परिणाम की कल्पनाकर बुटाई का कलेजा कांप गया था! ...कहां है कृष्ण जैसा मायावी कोई सहायक उसका जो चक्र सुदर्शन से सूरज को छिपा दे.... समय के रथ को रोक दे...समय के रथ को...

और उसी दिन अपनी पत्नी की हंसुली बीस रुपये में ठाकुर साह के यहां बेंच कर वह रात की गाड़ी से कलकत्ता के लिए चल पड़ा था. महाभारत युद्ध शुरू हो गया था...निहत्था पार्थ...बंधु-बांधवहीन पार्थ ..अपना रथ भी स्वयं चलाना और दुश्मनों से युद्ध भी करना...! कलकत्ते की बेशुमार भीड़वाली गलियों में जब वह अकेला ही ठेला खींचता हुआ गुजरता, तो कभी-कभी उसे नौटंकी वाले उस अर्जुन का चेहरा याद हो आता. सूरज को डूबता हुआ देख कर अर्जुन कितना घबड़ा गया था ...चेहरा पसीना-पसीना हो गया था. और बुटाई अपने चेहरे का पसीना गमछे से पोंछ कर मुस्करा पड़ता.

लेकिन समय का रथ उसके रोकने से नहीं रुक सका था. देखते-देखते दो वर्ष बीत गये पर कहां मार सका वह जयद्रथ को ...अपने पिता के हत्यारे जयद्रथ को ...! इस बीच कई बार वह घायल हुआ... लहू-लुहान हुआ...थक कर फुटपाथ पर बेहोश हो गिरा भी ...लेकिन प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सका. एक बार ढाई सौ रुपये जमा भी हो चुके थे कि पुलिस-वालों ने ओवर लोडिंग के केस में चालान कर दिया—अकेला ठेलावाला पांच बोरे से अधिक लाद कर नहीं ढो सकता, उसके ठेले पर सात बोरे थे. जान छुड़ाते-छुड़ाते सारी जमापूंजी समाप्त. फिर होटल की नौकरी में आ गया था.

महीने में सौ रुपल्ली! बेयरे तो दस-बीस रुपये रोज 'टिप' से ही कमा लेते हैं पर यहां तो उसी सौ रुपये में अंगा-धोती भी...बीड़ी-तंबाकू भी...क्या बचा पायेगा आदमी...! हर महीने घर पर कुछ न भेजूं तो यहां का काम ही न चले.

—बेटा, पानी गरम हो गया, किसुना की माय पूछती है कि बिलैती दूध कैसे डाला जायेगा...? बुढ़िया ने फिर दरवाजे पर प्रकट होकर कहा तो युद्ध के मैदान में दौड़ते हुए पार्थ के रथ के दोनों चक्के जैसे अचानक ही गहरे कीचड़ में धंस कर सहसा रुक गये.

—बिलकुल जाहिलों से पाला पड़ा है...! बुटाई झल्ला उठा, अब चाय में दूध डालना भी बुटाई ही सिखायेगा...एकदम जाहिल-चपाट औरत...देहाती

★ ★

वह उठकर अंदर चला गया .कुछ देर बाद लौटा तो उसके हाथ में चाय का गिलास था. थोड़ी देर तक मित्रों से इधर-उधर की बातें होती रहीं...कलकत्ते की रंगीन जिंदगी की बातें...हंसी-मजाक की कहानियां. फिर धनपत और रामराज चले गये. खोभारी बैठा रहा 'कलकतिया बीड़ी' के लालच में.

खोभारी को कलकतिया बीड़ी के बदले चार मीनार सिगरेट जब मिल गया, तब बुटाई भैया के प्रति उसकी कृतज्ञता कंठ फोड़कर निकल पड़ी—भैया. नंदलाल सिंह वाला रुपया तो इस बार दे ही दोगे... किसी तरह जान छुड़ा लो उस कसाई जोंक से. हरामी बुड्ढा उसी रुपये के बहाने सांझ-सबेरे तुम्हारे घर का चक्कर लगाया करता था...कभी-कभी तो आधी रात तक यहां बैठा रहता था. भौजी से काई बार बोला कि दुख-तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं है किसुना की मां, बुटाई नहीं है तो क्या हुआ, मैं तो हूं. जिस चीज की जरुरत पड़े, मुझसे मांग लिया करना...खदुका-महाजन में तो लेन-देन चलता ही रहता है. लेकिन वाह रे भौजी, कभी उस बुड्ढे से भर मुंह बात भी नहीं की...घूंघट उठाकर कभी उसकी ओर देखा तक नहीं...फिर भी साले टोले—मुहल्लेवाले तरह-तरह की बातें उड़ाने से बाज नहीं आये...! अब तो सब सुनोगे ही. लेकिन भैया, काली माता की कसम खाकर कहता हूं, गंगोली वाली जैसी सती औरत इस पूरे गांव में कोई नहीं है...तुम किसी की बात पर विश्वास मत करना ...हां.

बुटाई को लगा, जैसे आग का कोई जलता हुआ गोला उसके कंठ से नाभि की ओर धीरे-धीरे उतरता जा रहा है. तेजाब की तरह सब कुछ जलता हुआ... फूंकता हुआ.

गौना के पांच दिनों के बाद ही वह कलकत्ता चला गया था. फिर कई महीनों के बाद उसे चिट्ठी मिली थी


लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम
रूप रंग की
छटा बिखेरे
कौन न
उस को
प्यार से छेड़े
Lakmé
VANISHING CREAM
आप पर लोगों की निगाहें पड़ीं कि रुकी रह गईं. इस मनोरम सौंदर्य और रूप की उज्ज्वलता का रहस्य है लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम. हल्का-फुल्का और बिल्कुल प्राकृतिक, श्रेष्ठ मेक-अप का आदर्श आधार— लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम.
सब कुछ रूपरंग के
लॅक्मे


लॅक्मे लैवेण्डर टैल्क
अनोखी फ्रेंच सुगंध का चमत्कार: बिंध गया फ्रांसिसी हुआ शिकार
लक्मे लैवेण्डर टैल्क छिड़किए इसकी निराली मन-मोहनी सुगंध से लोग मंत्र-मुग्ध हो जायंगे. असली फ्रांसिसी खुशबू... बिल्कुल यही, बिल्कुल सही।
Lakmé
dCA/L-VC-LT/1H HIN.

कि उसे बेटा हुआ है. मैया ने ही किसी से चिट्ठी लिखवायी थी कि बचवा का नाम सिरीकिसुना जी रखा गया है. . . .किसुन भगवान की ही तरह सांवला-सलोना है. . .सुंदर है.

बुटाई मन ही मन अंगुलियों पर गिन कर कोई हिसाब लगाता रहा. . .सावन में वह घर से गया था. . . सावन-एक . . . भादों-दो. . .आसिन-तीन. . . बेटा होने की चिट्ठी पहुंची थी, फागुन में. . .नहीं. . .नहीं, होली के बाद ही तो राम प्रसाद घर से कलकत्ता गया था, तो चिट्ठी ले गया था. . .चैत में किसुना पैदा हुआ था. . .हिसाब तो ठीक ही आता है. . .लेकिन. . . लेकिन. .

वह चौकी पर से उठा और तेजी से आंगन की ओर चला पर दो-चार कदम चलकर ही उसके कदम रुक गये. थोड़ी देर तक वह बुत की तरह चुपचाप खड़ा रहा फिर धीरे-धीरे लौट कर उसी जगह बैठ गया. . .गुमसुम. . .

खोमारी को मन ही मन बात कचोटने लगी. . . बेकार ही वह बात मैंने कह दी! बेचारा अभी-अभी तो दो साल के बाद घर लौटा है. . .धीरे-धीरे सारी बातें उसे मालूम हो ही जातीं. . .अभी ही कह देने की क्या जरूरत थी. . .क्या! खोमारी ने अंधकार में ही टटोलकर अपने दोनों कान पकड़ लिये. . .उन्हें जोर से ऐंठा –– नहीं, अब ऐसी गलती वह जिंदगी में कभी नहीं करेगा. . . कभी नहीं. उसे एक अपूर्व शांति-सी मिली. . .दिल हलका हो गया.

––कितने दिनों की छुट्टी में आये हो मैया?. . . एक-दो महीना तो रहोगे ही. . .बुटाई का मन दूसरी ओर फेरने के लिए खोमारी ने विषय बदल दिया.

––समझो कि अब सदा के लिए ही छुट्टी लेकर आ गया हूं. . .बुटाई ने एक फीकी हंसी हंसकर कहा, अब गांव में ही रहने का विचार है. . .परदेश का मजा बहुत लूट लिया. सब जगह पैसे वालों का ही जमाना है. . . उन्हीं के लिए सारे सुख-आराम और भोग-विलास हैं. गरीब के लिए गांव ही ठीक है. . .अब तो सरकार ने कानून भी बना दिया है कि खेतों में काम करनेवाले मजदूरों को भी पांच रुपये रोजाना से कम मजदूरी नहीं मिलेगी. गांव में रहकर अगर महीने में सौ-सवा सौ भी मजदूरी मिल जाये तो कलकत्ता के चार सौ रुपये के बराबर समझो. अभी-अभी सरकार ने कानून बनाया है कि जिसको घर बनाने के लिए जमीन नहीं होगी, उसे सरकार मुफ्त जमीन देगी. . .खेती के लिए भी हरिजनों को जमीन दी जा रही है.

––अच्छा. . .! यह कानून कब पास हुआ मैया. . .? खोमारी खुशी से ताली पीटते हुए बोला, तब तो मजा आ जायेगा मैया. . .एकदम चकाचक हो जायेगा. . .

––और केवल इतना ही नहीं, असली चीज तो अभी मैंने सुनायी ही नहीं. . .बुटाई भी उत्साहित हो गया था. बोला, अब किसी साले सूबेदार-महाजन को एक पैसा भी लौटाने की जरूरत नहीं है. . .सरकार ने सारा कर्ज माफ कर दिया. बहुत दिनों से बंधक पड़ी जमीन भी बिना भरना दिये जमीनवालों को लौटा दी जायेगी. . .एक अधेला भी नहीं देना होगा.

––ऐसा. . .! तब तो हद हो गयी. . .एकदम जुलुम. . . खोमारी चौकी पर से उठकर नाचने लगा, बुटाई मैया, कहीं झूठ तो नहीं बोल रहे हो! . . .डिल्ली-कलकत्ता के शहरू लोग बड़ा झूठ भी तो बोलते हैं. चुनाव के समय हर बार तो लोग यही सब कहकर जाते हैं और फिर बाद में. . .

––अरे नहीं रे. मैं अपने कान से रेडियो की खबर सुन चुका हूं. रेडियो तो कभी झूठ नहीं बोलेगा.

––लेकिन महाजन लोग क्या ऐसे ही छोड़ देंगे. . .? खोमारी को अब भी इन सारी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था. .

––छोड़ना पड़ेगा! . . .सरकार के कानून से तो महाजन लोग बड़े नहीं हैं, बुटाई दृढ़ता से बोला, डोरीगंज के जमींदार पदारथ साह को कैसे अपनी चार लाख की जमींदारी छोड़ देनी पड़ी, वैसे ही महाजनों को भी छोड़ना पड़ेगा. . .सालों ने कम तंग नहीं किया है. . . जोंक की तरह सारा लहू पी गये हैं सब. लेकिन इसके लिए एक ही बात का ख्याल रखना पड़ेगा कि हम गरीबों में आपसी मेल रहे. . .फुटमत होगा, तो ये जमीन और पैसेवाले महाजन लोग सरकार की भी एक न चलने देंगे. पांच रुपये मजदूरी वाली बात भी गांव के बाबू लोगों को माननी पड़ेगी. अगर हम सभी मजदूर एक साथ मिलकर रहें. सुबह से शाम तक ये लोग खेतों में हल-कुदाल चलवायेंगे और मजदूरों देंगे डेढ़ कीलो अनाज. . .! और आनाज भी वही देंगे जो बाजार में सबसे सस्ता हो. . .जो जानवरों को खिलाया जाता हो. . .! बहुत सताया है इन लोगों ने. . .

––अब हम लोग सतायेंगे उन्हें. . .! खोमारी चहक कर बोला.

––नहीं, इसमें किसी को सताने की क्या बात है. . .! यह तो न्याय का मामला है. . .हम काम करेंगे, तो उचित मजदूरी हमें मिलनी ही चाहिये. बैल हल-गाड़ी खींचता है, तो उसको भी भरपेट खुराक मिलती है, हम तो आदमी हैं. . .

––बुटाई बेटा, रसोई बन गयी है. . .आकर खा लो. बुटाई की मां ने आंगन से ही आवाज लगायी.

––हां मैया, अब खा-पीकर आराम करो. . .भौजी थाली परोसकर कब से बैठी होगी. खोमारी ने चौकी से उठते हुए हंसकर कहा, गरमा-गर्म खाना ही अच्छा होता है.

बुटाई के होठों पर भी मुसकान आयी पर दूसरे ही पल लोप हो गयी. एक अजीब कड़वाहट से उसका मुंह भर गया.

★ ★

बुटाई अभी थाली पर बैठा ही था कि बाहर से आवाज आयी ––बुटाई बेटा, कलकत्ते की सारी मिठाई अपने ही दोनों प्राणी मिलकर न खा जाना. . .दरवाजे पर मैं भी खड़ा हूं.

आवाज बाबू नंदलाल सिंह की थी, बुटाई को पहचानते देर न लगी. उसकी इच्छा हुई कि खाना छोड़-

कर पहले उसी मुच्छर राम से निबट आये. रुपये पाने की उम्मीद में कैसी मधुरी वाणी बोल रहा है बुड्ढा!... सूदखोर...हरामी आज बेटा का नाता जोड़ रहा है...!

—पहले भरपेट भोजन कर लो, तब बाहर जाना. सुनयनी ने पत्नी के अधिकार भाव से कहा. यह बुड्ढा तो रुपयों के लिए दरवाजे की मिट्टी खोदकर खा गया.

बुटाई ने पत्नी के चेहरे पर ध्यान से देखा. उसके मन में आया कि पूछे क्या बुढ्ढा केवल रुपयों के लिए ही दरवाजे की मिट्टी खोद रहा है या कुछ और के लिए भी... पर वह कुछ बोला नहीं. क्षण भर के लिए उसका मुंह चलाना बंद हो गया और वह कहीं और खो-सा गया.

—बुटाई अभी खाने के लिए बैठा है बाबूजी... थोड़ी देर दरवाजे पर ही बैठ जाइये. बुटाई की मां ने भीतर से ही जवाब दे दिया.

—अच्छा...अच्छा...! खूब आराम से खाये... खूब प्रेम से चभुलाये...आज किसुना की मां मन से खिलायेगी भी तो. . नंदलाल सिंह खोखली-सी हंसी हंसते रहे लेकिन मुझे भी कलकत्ते की कालीजी का प्रसाद जरूर मिलना चाहिये. दो साल से आस लगाये बैठा हूं.

—आप आस लगाये बैठे रहिये. . .आस पूरी होने वाली नहीं है... बुटाई खाना खाकर गमछे में हाथ पोंछता हुआ बाहर निकलते ही बोला.

नंदलाल सिंह को जैसे लकवा मार गया...न सलाम ...न प्रणाम ...न हाथ जोड़ना. . .यह तो सीधे लाठी की तरह तनकर सामने खड़ा हो गया...और बंदूक की तरह ठांय-ठांय फायर करने लगा! कुछ क्षणों तक वह हतप्रभ से चुपचाप खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उनके राजपूती खून में कुछ उबाल-सा आने लगा, पर दूसरे ही क्षण उनकी खानदानी साहुकारी प्रवृत्ति ने उस उबाल को फूंक मार कर ठंडा कर दिया. उन्हें अपने पिता की कही हुई बात याद हो आयी, अपना काम निकालने के लिए गदहे को जीजाजी भी कहना पड़े तो शरमाना नहीं चाहिये बेटा!

—हें...हें...हें...शरीर तो खूब आबाद है बुटाई...! नंदलाल सिंह ने तुरत पैंतरा बदलकर घोड़े की तरह हिनहिनाते हुए कहा, होटल के बैरा की नौकरी अच्छी होती है...तभी तो एकदम बंगाली बाबू की तरह लग रहे हो. उनकी आंखें बुटाई की छापवाली चारखाने की लाल लुंगी और छोटे-छोटे छेदों वाली सैंडो बनियान पर टिकी हुई थीं.

बुटाई कुछ न बोला. अपने आप में खोया हुआ-सा चुपचाप खड़ा रहा, जैसे आगे आनेवाले तूफान का सामना करने के लिए भीतर ही भीतर अपने को तौल रहा हो...

—कितना दर माहा मिलता है बुटाई...?

—चार सौ. बुटाई ने जैसे बम-विस्फोट कर दिया.

—वाह...! बहुत बढ़िया. . .खूब अच्छी नौकरी है! खूब फलो-फूलो...सुख-आराम से रहो...उन्नति करो...और...और . . .नंदलाल सिंह को आगे बोलने के लिए कोई शब्द नहीं मिल सका. आज उन्हें अपनी ही आवाज अपरिचित-सी लग रही थी...

—तब. . .बेटा बुटाई, तुम थके-हारे कलकत्ता से आये हो...अभी जाकर आराम करो. कल सबेरे दरवाजे पर आ जाना. . .कागज-पत्तर देख कर मैं हिसाब कर दूंगा. महाजन का रुपया जितना जल्द दे दिया जाये, वही अच्छा . . .मुरई-पलानी वाले घर में रुपये रखना भी ठीक नहीं होता है. शादी कमाई का पैसा कोई चोर-चुहार उठा ले जायेगा तो रो-कलप कर रह जाओगे... आ जाना कल खूब सबेरे. . .हिसाब-किताब साफ कर लेना.

—मेरा हिसाब-किताब तो साफ हो चुका है बाबू सा'ब. आखिर बुटाई के गले में देर से फंसा हुआ बलगम बाहर निकल ही गया, तीन पुश्तों से हम लोग आपके घर बेगारी करते रहे हैं...बीच-बीच में कई बार दस-बीस रुपये करके देते भी रहे हैं. फिर भी क्या आपके अस्सी रुपयों का हिसाब-किताब बाकी ही रहा...?

—अरे बुटाई बेटा! हंसी-मजाक करने के लिए अब क्या मैं ही बच गया हूं...! नंदलाल सिंह ने गले के थूक को गटक कर सूखी हंसी हंसते हुए कहा, अभी जाओ आराम करो. . .किसुना की माई से जरा ठंडा तेल सिर में मलवा लेना, गर्मी उतर जायेगी. कोई जल्दबाजी नहीं है...सबेरे टाइम न मिले तो शाम को ही आ जाना...या फिर मैं ही आ जाऊंगा..

—मैं कह चुका हूं कि मेरी ओर से आपका हिसाब बिलकुल साफ हो चुका है...अब मुझे एक भी पैसा नहीं देना है...लाल पैसा भी नहीं. बुटाई ने थोड़ा तैश में आकर कहा और अपने आंगन की ओर लौट पड़ा.

★ ★

नंदलाल सिंह कई क्षणों तक हक्का-बक्का-सा खड़े के खड़े रह गये. जब बुटाई आंखों से ओझल हो गया तब एक-ब-एक उनकी चेतना लौटी. दो कदम आगे बढ़ कर वह आंगन के दरवाजे पर से दहाड़ कर बोले—कान खोल कर सुन ले धनपत का बेटा, नंदलाल सिंह का रुपया कोई झींगी मछली नहीं है कि बिना चबाये ही निगल जाओगे. . .एक-एक पाई वसूल करके छोड़ूंगा. . .हां!. . .तुमको कलकत्ते की हवा लगी है, तो मैं हवा-बयार को फूंक मार कर उड़ा दूंगा...

—यह बंगाल और कलकत्ते की ही हवा नहीं है बाबू साब! बुटाई फिर आंगन से बाहर निकल आया, यह हवा जमाने की हवा है...सारे देश की हवा है... अपनी सरकार की हवा है...आपके फूंक मारने से नहीं उड़ेगी. समझ गये न...!

—मान लो, आज तुमने मेरे रुपये मार लिये...लेकिन कल तुम्हें किसी काम के लिए कर्ज लेने की जरूरत पड़ गयी, तो गांव में कौन तुम्हें रुपये देगा! इस बात पर भी कभी कुछ विचार किया

है. . .? नंदलाल सिंह का स्वर अपने आप ही फटे हारमोनियम की तरह धीरे-धीरे मंद पड़ता गया.

—अब जरूरत पड़ने पर कर्ज सरकार देगी. . . सरकारी बैंक से रुपये मिलेंगे. .

—अरे, देख लेंगे कि सरकार और बैंक तुम लोगों को कितने रुपये देता है. . .बैंक से कर्ज लेना. क्या हंसी-ठट्ठा है!. . .जिसके पास जमीन-जायदाद है, उसको तो बैंक से कर्ज लेने में साल-छह महीने लग जाते हैं. . .तुम जैसों मुफलिसों को तो बैंक वाले दरवाजे पर से ही गर्दन में हाथ डाल कर भगा देंगे.

—भगा देंगे, तो भाग आयेंगे. . .लेकिन आपके दरवाजे पर अब कर्ज लेने नहीं जायेंगे. बुटाई ने दृढ़ता से कहा.

नंदलाल सिंह उसकी ओर देखते रहे. . .समझौते की अब कोई राह उन्हें दिखाई नहीं दे रही थी. सहसा एक पतली-सी गली दिखाई पड़ गयी. बोले—क्या बैंक और सरकार अपने कर्जों का सूद तुमसे नहीं लेगी. . ?

—लेगी, लेकिन आप की तरह गर्दन तो नहीं काटेगी. . . जोंक की तरह सारी जिंदगी खून तो नहीं पीती रहेगी. . . .

—अच्छा. . .अच्छा. . .! यह भी देख लेंगे. . .सरकार को बहुत बार देखा है. . .! नंदलाल सिंह मुड़ कर दो कदम चले, फिर रुक कर बोले. याद रखो बुटाई, जो बादल बहुत गरजता है, वह बरसता नहीं. सरकार केवल गरजती है. . .उसी से यह मत समझ लेना कि यह बरसेगी भी. . . और वह कुछ बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ गये.

★ ★

बुटाई ने एक लंबी सांस ली और धीरे-धीरे छोड़ता रहा. यह राहत की सांस थी. . . क्षणिक अंधकार समाप्त हो गया था और सूरज का गोला क्षितिज पर फिर सहसा दिखाई पड़ने लगा था. . .जयद्रथ-वध का सुयोग . . .अच्छा. . .! देखें, आगे क्या होता है. . .जयद्रथ मारा जाता है या नहीं. . .बुटाई ने जैसे अपने आप से ही कहा और अंदर चला गया.

सुनयनी गौनेवाली लाल साड़ी पहने चारपायी पर बैठी थी. किसुना शायद दूध-पीते पीते उसकी छाती से चिपका सो गया था. कमरे में बुटाई के पहुंचते ही उसने बच्चे को खाट पर सुला दिया और सिर झुकाकर एक तरफ खड़ी हो गयी. बुटाई को गौने के बाद वाली पहली रात याद हो आयी. . .ठीक ऐसे ही . . .इसी साड़ी में उस रात भी तो यह खड़ी थी. उस रात घूंघट कुछ अधिक लंबा था. . .शरीर कुछ अधिक सिकुड़ा हुआ, बस.

उसकी आंखें बच्चे पर टिक गयीं. वही आग का जलता हुआ गोला फिर कंठ से नाभि तक . . .एक अजीब-सी जलन से वह फड़फड़ा उठा. वह अपने बेटे को पहली बार देख रहा है. . .फिर यह चलन. . .उस साले खोमरिया ने कैसी एक आग भीतर लगा दी. . .; उसकी बेचैन आंखें बड़ी बेसब्री से बच्चे के चेहरे पर कुछ तलाशती-सी रहीं. . .शायद कोई पहचान. . .कोई प्रयत्न! . . . . .यह तो ठीक मेरे ही जैसे है. . .कान. . .नाक. . .आंखें सांवला रंग भी. . .! बचपन में मैं भी ऐसा ही रहा हूंगा. . .ठीक ऐसा ही. . .! बुटाई ने जैसे अपने आपसे ही कहा. . .अपने को ही समझाया. . .पर भीतर का जलता हुआ गोला अब भी कहीं कलेजे में ही अटका-सा रहा. उसकी आंखें कमरे में इधर-उधर कुछ तलाशती रहीं—शीशा ! . . .शीशे में वह अपना चेहरा देख लेना चाहता था! . . .उसे लगा, वह अपना ही चेहरा जैसे भूल गया है. . .एक लंबे अरसे से उसने शीशे में अपने को नहीं देखा है.

—क्या ढूंढ़ रहे हो. . .? सुनयनी ने कुछ परेशान स्वर में पूछा.

—शीशा. . .मुंह देखनेवाला शीशा. . .! बुटाई की आवाज जैसे किसी गहरे कुएं में से निकली. सुनयनी को हंसी आ गयी. मुंह में आंचल ठूंस कर वह हंसी रोकने की चेष्टा करती रही पर अंत में खिलखिलाकर हंस ही पड़ी. हंसते-हंसते ही पति की ओर तिरछी नजरों से देख कर बोली—क्या तुम भी टिकुली-सिंदूर करोगे. . .? रात में शीशा लेकर क्या करोगे. . .?

उसने ताखे से उठाकर शीशा पति के हाथ में दे दिया . इच्छा हुई, सिंदूर की डिबिया भी उठाकर सामने रख दे पर स्वयं ही लजा गयी. खड़ी-खड़ी मुसकराती रही.

बुटाई ने दीपक के पास जाकर शीशे में अपने को देखा . . .देखता रहा. फिर छिपी नजरों से चारपाई पर सोये बच्चे को देखा. उसके होंठों पर एक चटक मुसकान खिल गयी. चारपाई के पास आकर वह बच्चे के चेहरे पर झुका और अपने होंठ उसके मक्खन जैसे गाल पर रख दिये.

सुनयनी देखकर मुसकराती रही. उसके मन में आया, वह भी होंठ बच्चे के दूसरे गाल पर रख कर आंखें बंद कर ले. . .बंद ही रखे.

—आज सोओगे नहीं क्या. . .? सुनयनी ने जंभाई लेते हुए पूछा.

—तुम सुला दो. . .

—हट्. . .! तुम भी क्या कोई बच्चा हो. . .! वह हंसी. वहां कौन सुलाती थी. . .? बुटाई ने तकिये पर सिर रखकर आंखें मूंद लीं. उसे लगा, उसकी बंद आंखों में भी एक अजीब-सी रोशनी झलमला रही है.

—दीया बुझा दूं. . .? सुनयनी उसकी बगल में आकर बोली.

—नहीं, जलने दो. दीया जलता रहता है, तभी अच्छा लगता है. . . . □□□

हिंदी विभाग, राजकीय डी. एम. कालेज
इम्फाल (मणिपुर).

शायद यह अंतहीन

• दिनेश पाठक

वैसे बात यहां से शुरू की जानी चाहिए कि पंडित गोबरधन पांडेयजी का निवासस्थान किस टोले में है? हालांकि पंडितजी के अनुसार इससे क्या फर्क पड़ता है कि कोई किसी भी टोले में रहे? हर कोई अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार किसी न किसी टोले-मुहल्ले में तो रहता ही है. फिर भी यह एक तयशुदा बात है कि जिस टोले में पंडितजी रहते हैं या रहते चले आ रहे हैं, वहां रहे जाने के प्रति शायद ही कभी उनके हृदय ने खुलकर गवाही दी हो. अकसर विपरीत इसके, उन्हें इस टोले में रहे जाने के प्रति जब-तब अपने अन्तस के घोरतम विरोध को सहना पड़ा है. . .लेकिन स्थिति यह है कि आज भी वे इस टोले को नहीं बदल सके हैं.

यह एक निहायत गंदा व बदबू से इस कदर गमकता हुआ टोला है कि यहां किसी भी भद्र पुरुष को जाना स्वीकार्य नहीं होता. यदि किसी को किन्हीं विवशताओं के तहत जाना ही होता है तो बिना नासिकाओं में रूमाल रखे घुस पाना संभव नहीं हो पाता. हालांकि टोले वाले पूरी तरह इस गंदगी व बदबू के आदी हैं, लेकिन पंडित गोबरधन पांडेयजी हैं कि आज भी टोले में घुसते व निकलते समय नाक में धोती का एक सिरा रखना व 'राम-राम' का उच्चारण करना नहीं भूलते.

टोले के बिलकुल दक्षिणी सिरे पर पंडितजी का वह एकमात्र कमरा है जिसमें वे पिछले चौदह वर्षों से सपरिवार रहते चले आ रहे हैं. मेन रोड को छोड़कर जो कि निहायत उबड़-खाबड़ है, एक लंबी कच्ची-सी गली टोले के दक्षिणी सिरे को चली गयी है. यह गली बरसात में घुटनों-घुटनों पानी से भर जाती है. गंदगी का ढेर गली के चारों ओर बिना किसी दुराव के पसरा रहता है. साथ ही इस गली के दोनों सिरे पर आसपास के बच्चे आराम से बैठकर खुले आम पायखाना भी करते रहते हैं. अपने अंतिम सिरे पर जाकर यह गली काफी चौड़ी हो गयी है और उस चौड़े भूभाग में ढेर सारे कच्चे-पक्के मकान बेतरतीबी से बिखरे पड़े हैं. कुछ मकान सीमेंट के हैं जिनका पलस्तर जहां-तहां से उखड़ चुका है व कुछ कच्चे टीन की छतवाले मकान हैं. ऐसे ही टीन के छतवाले एक कच्चे मकान के इकमंजिले कमरे में पंडितजी का भी निवास-स्थान है. टोले की तरह यह मकान भी बेहद जर्जर व गंदा है. जर्जर कुछ इस तरह कि जब भी कोई मकान के दुमंजिले में चलने लगता है तो समूचा मकान ही कुछ इस अंदाज में चरमरा उठता है कि मानो दुमंजिला अब गिरा कि तब. हालांकि दुमंजिला नहीं गिरता पर पंडितजी के कमरे में आकर ढेर-सारी मिट्टी जरूर गिर जाती है. ऐसे अवसरों पर पंडिताइन जोरों से चीख पड़ती हैं—'जरा संभल कर चला करो ऊपरवालो, नीचे भी आदमी रहते हैं. जानवर नहीं. . .'

पंडितजी के उस कमरे तक पहुंचने के लिए इस लंबी गली के अतिरिक्त एक लगभग अंधेरा गलियारा भी पार करना पड़ता है, जिसकी चौड़ाई बमुश्किल २–२ १/२ फुट होगी. इस गलियारे को पंडितजी ने उपगली की संज्ञा से विभूषित किया हुआ है. पंडितजी के कमरे के ठीक बाएं हाथ की ओर पूरे मकान के किरायेदारों के उपयोग के लिए लिए बना हुआ एक लैट्रीनघर है. यद्यपि यह लैट्रीन फ्लश की बनी हुई है तथापि अपने पुरानेपन के कारण इसका फ्लश सिस्टम अकसर बोल जाता है. ऐसे अवसरों पर एक भयावह व असह्य बदबू पंडितजी के कमरे में बेरोक-टोक घुलती रहती है. लैट्रीन के लिए शुरुआत में लगभग हर सुबह मकान में रहनेवाले किराएदारों के बीच एक अच्छी-खासी झड़प हो जाया करती थी. पर इधर कारपोरेशन द्वारा गली के मुहाने पर कुछ सार्वजनिक लैट्रीनघर बना दिये जाने से यह झगड़ा अब लगभग समाप्त हो गया है. लैट्रीनघर के बगल में ही मकान का एकमात्र नल भी है. इस नल को लेकर भी कम झगड़ा नहीं होता रहा है. औरतें पानी को ले कर आपस में इस तरह टूट पड़ती रही हैं है गो कि वे आपस में में ही एक दूसरे की शिकार हों. पर इधर बाहर ट्यूब वेल लग जाने से यह झगड़ा भी स्वयंमेव ही कम हो गया है.

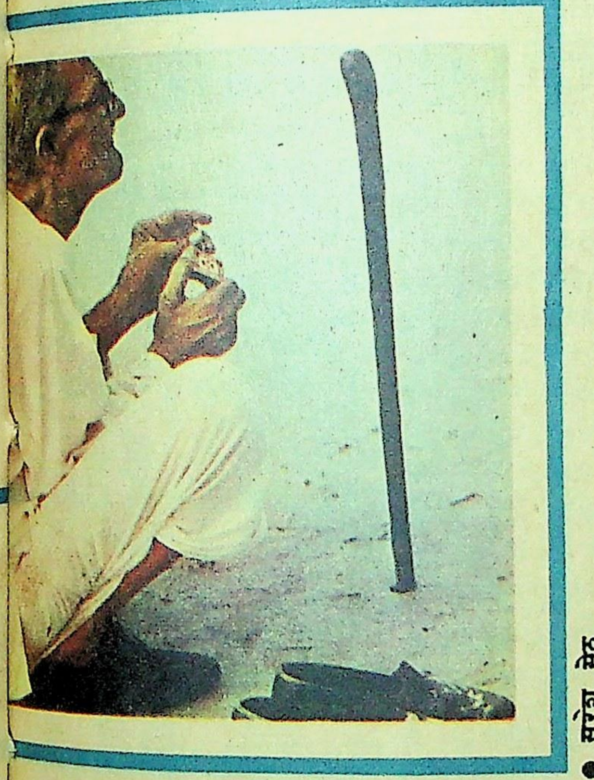
शुरुआत में पंडितजी इस टोले में आने से बेहद खिन्न रहे थे. पंडिताइन अपनी चर्चाओं में आज भी इस बात को अकसर दुहराती रहती हैं कि उनके पंडितजी इस टोले से मानसिक रूप में दिनरात कितना परेशान रहा करते थे. यह भी कि उन्होंने मुहल्ला बदले जाने की कितनी चेष्टा की थी. लेकिन अब इधर उन्हें इस टोले में चौदह वर्ष हो गए हैं और लगता है कि इस स्थिति के प्रति कहीं कोई असंतोष उनके भीतर शेष नहीं रहा है. चर्चा उठने पर वे ज्यादातर अब यही कहते हैं——कहीं न कहीं तो रहना ही हुआ, चलो यहीं सही. . .और फिर टोला -मुहल्ला खराब या गंदा होने से क्या होता है? मनुष्य का अपना हृदय गंदा नहीं होना चाहिए. . .

पर कभी तो वे सही अर्थों में खिन्न हो जाते ह और तब उनकी विवशता एक भयावह कातरता का रूप ले लेती है. बेहद दयनीय स्वर में तब वे कहते हैं—'जीते जी नर्क भुगत रहा हूं, भाई. पता नहीं भगवान भी इतना निर्दयी क्यों है? जब कि रोज नहा-धोकर पूजा पाठ करता हूं. शाम को भी बिना संध्या-पूजा किये कभी नहीं खाता. फिर भी. . .फिर भी. . . कहते-कहते वे क्षण भर के लिए रुक जाते हैं. फिर लगभग रुआंसे होकर कहते हैं— 'यह भी भला कोई रहने

की जगह है? मैं तो कहता हूं, दुष्ट संग जन देहु विधाता. . .किसी को भी नहीं. मेरे तो तीनों बेटे इस सोहबत में बिगड़ते चले जा रहे हैं. सोहबत भी तो यहां लुच्चों-लफंगों की है. कोई सिनेमा के टिकट ब्लैक करता है, कोई छोटी-मोटी चीजों पर हाथ साफ कर लेता है, तो कुछ शराब-वराब का धंधा करते हैं. ऐसे में भला. . .' कहते-कहते वे भीग जाते हैं, और फिर छत की ओर देखने लगते हैं. कुछ इस तरह जैसे उन सारी समस्याओं के समाधान को कमरे की छत में कहीं ढूंढ़ा जा सकता हो.

★ ★

अभी तक पंडितजी का परिवार कुल आठ सदस्यों का है. इस एक कमरे में वे किस प्रकार रहते हैं, यह समझना गणित के किसी कठिन प्रश्न की तरह है.



● सुरेश सेठ

पंडितजी के पास बहुत पुरानी किस्म की जर्जर-सी चार चारपाइयां हैं. कमरे में यूं तो एक ही चारपाई लगी रहती है जिसमें एक पुराना-सा मैला टल्लीदार गद्दा और ऊपर से एक पुरानी लेकिन धुली-सी चादर बिछी रहती है. शेष चारपाइयां अंधेरे गलियारे के बाहर खड़ी रहती हैं. रात का खाना बन-बनाकर जब सारा काम पूरा हो जाता है तो संदूक सहित सारे सामान को मुख्य चारपाई के नीचे डालकर शेष तीनों चारपाइयां कमरे में आड़ी-तिरछी डाल दी जाती हैं. चारों चारपाइयों को लगा दिये जाने के बाद दरवाजा खुल पाना संभव नहीं हो पाता, क्योंकि एक चारपाई दरवाजे से बुरी तरह चिपक जाती है. इसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए पंडितजी के घर का एक नियम है कि जिसे रात सोने में पहले लघुशंका आदि से निबटना हो तो वह चौथी चारपाई के लगने से पहले-पहले हो आए. यही होता भी है.

पंडिताइन बेचारी बहुत सीधी-सादी हैं. जब-तब कुछ न कुछ करती दिखाई देती हैं. ज्यादातर उन्हें फटे कपड़ों को ही सिलते हुए देखा जा सकता है. पंडितजी को पूजा में जो सस्ती-सी सफेद धोतियां प्राप्त होती हैं, उन्हीं को दोनों मिल-बांटकर पहनते हैं. फर्क सिर्फ इतना होता है कि पंडिताइन पहनने से पहले सफेद धोती को हरे या किसी दूसरे रंग में रंग लेती हैं.

पंडितजी की अभी तक कुल छः संतानें हैं. सबसे बड़ी व सबसे छोटी लड़की. और बीच के चारों के चार लड़के हैं. पंडितजी की बहुत इच्छा है कि वे अपने सभी बच्चों को अच्छा-खासा पढ़ा पाते. उनकी ऐसी चेष्टा भी रही है. पर एक ओर टोले की कुछ सोहबत ही ऐसी रही है कि पढ़ने-लिखने में सबके सब बिलकुल सिफर हैं, और दूसरी ओर अच्छे मोहल्ले में जाकर बसने की औकातहीनता उनके आगे खुले हुए आकाश की तरह है. यूं उनके बड़े पुत्र घर से तो रोजाना ही टोले में स्थित कारपोरेशन के मिडिल स्कूल के लिए चलते तो जरूर हैं लेकिन बहुत कम ऐसा होता है कि ये वहां तक पहुंच पाते हों. ज्यादातर उन्हें सिनेमा हाल के इर्द-गिर्द ही टोले के दो-चार छोकरों के साथ चक्कर काटते हुए देखा जा सकता है. कभी-कभी जब कोई पर्व या तीज-त्योहार होता है और पंडितजी को अपने सभी यजमान कवर करने होते हैं तो वे अपने बड़े पुत्र को भी (जिसे वे प्यार से 'बड़के' कहते हैं) अपने साथ जरूर ले लेते हैं. उनका कहना है कि कुछ भी नहीं तो पूजापाठ ही करना सीख लेगा ताकि कम से कम अपनी गुजर-बसर तो कर सके. पर बड़के का मन है कि जजमानिका में भी नहीं रमता. स्वयं पंडित गोबरधन पांडेयजी भी कभी-कभार इस पंडितपने से बेहद खिन्न जाते हैं. खिन्नता की इस स्थिति में वे अकसर यही कहते हैं— 'पूजा पाठ सीखकर भी क्या करना है, भाई? अब तो सबसे ज्यादा दुर्गत पंडितों की ही है. वह जमाना रहा कहां जबकि इस देश में पंडितों की इज्जत-विज्जत हुआ करती थी. अब तो स्थिति यह है कि दुम हिला-हिलाकर खुद ही दस घरों का चक्कर लगाओ तब जाकर कहीं गुजर-बसर हो पाती है. दुनिया के लिए तो महंगी भी बढ़ी लेकिन पंडितों के लिए साली महंगाई नाम की भी कोई चीज नहीं होती. दो घंटा चिल्ला-चिल्लाकर पाठ करो तो आज भी दक्षिणा वही सवा रुपया. . .इस तरह तो यह धरम-करम सारा खत्म हो जाएगा. देखते तो रहिए आप, अगली पीढ़ी में तो चिराग लेकर ढूंढ़ने पर भी कोई पूजापाठ करानेवाला नहीं मिलेगा. भगवान जाने क्या होने जा रहा है. इस हिंदू धर्म का. . .' अपने इस अंतिम वाक्य को अकसर वे इस रूप में चिंतातुर होकर कहते हैं कि सुननेवाले भी उनके साथ उदास हो जाया करते हैं.

बाद के दोनों बेटे भी यूं तो कारपोरेशन के मिडिल स्कूल में ही पढ़ने के लिए जाते हैं पर सही अर्थों में

उन्होंने भी अब धीरे-धीरे बड़के के चरणाचिह्नों का अनुसरण करना शुरू कर दिया है. लेकिन थके-हारे लौटे हुए पंडितजी के कानों में जब कभी अपने लाड़लों की करतूतों की कहानी पड़ती है तो एकाएक ही वे विक्षिप्तों की तरह उबल पड़ते हैं. विक्षिप्तता की ही इस स्थिति में वे सबसे पहले तो अपने लड़कों को कोसते हैं, फिर बेचारी पंडिताइन को और अंत में अपने उजड़े हुए भाग्य को. कभी-कभी तो उन पर उत्तेजना इस कदर हावी हो जाती है कि वे सिवा जोरों से हांफने के और कुछ नहीं कर पाते.

सबसे छोटे ने अभी स्कूल जाना नहीं सीखा है. उसके बाद की जो बिटिया है, उसे अभी दूध पीती ही कहा जा सकता है. लेकिन बड़ी बिटिया ने मिडिल स्कूल तक की मुफ्त शिक्षा तो पास कर ली है, पर आगे को फीस वाले स्कूल में दाखिला देकर पढ़ा पाना पंडितजी के वश की बात नहीं है. वैसे बड़ी बिटिया की बहुत इच्छा है कि वह आगे को पढ़े, लेकिन. . .और इस 'लेकिन' पर झूलते हुए उसे अब पांच वर्ष खो गए हैं.

जाड़ा हो या बरसात पंडित गोबरधन पांडेयजी का नियम है कि वे रोज सुबह चार-साढ़े चार बजे ही उठ जाते हैं. उतने प्रातः ही उच्च स्वर में मंत्रोच्चार करते हुए खुले में ट्यूबवेल के नीचे उन्हें नहाते हुए देखा जा सकता है. नहा-धोकर वे पूजापाठ का नियम पूरा करते हैं. फिर आठ बजते-बजते कपाल पर एक चंदन का लंबा-चौड़ा टीका, शरीर पर एक मटमैली-सी सफेद धोती व पुरानी खद्दर की कमीज उड़ेलकर वे जमानिका की ओर निकल जाते हैं. लगभग साल भर से उनके पास एक सफेद जूता है जिसे वे आज भी पहन रहे हैं. जूते बदले जाने की चर्चा पर एक दिन वे अपनी बिटिया से बोले थे—देखो कहीं कोई तेरहवीं का जुगाड़ बैठ जाय तो शायद. . .

जाते हुए अपने कंधे पर वे एक थैला लटका लेते हैं. उस थैले में मदारी के सामान की तरह कई सारी चीजें हुआ करती हैं. मसलन कुछ एक आवश्यक पूजापाठ की पुस्तकें, कुछ छोटे थैले, कुछ एक कपड़े के टुकड़े, एकाध खाली डब्बा व एकाध खाली शीशी भी. छोटे थैलों में वे दान-पूजा में मिले चावल-दाल आदि अनाज की पोटली बांध लाया करते हैं. पूजा आदि में ही यदि कहीं से डालडा, घी या तेल जैसी कोई चीज मिल जाए तो उसे खाली डिब्बे या शीशी में रखकर ले आते हैं. शेष खाली कपड़े के टुकड़े भी अकसर पोटली बांधने का ही काम दे जाती है.

इस तरह अपने पूरे ताम-झाम के साथ सुबह आठ बजे से ही वे जजमानों के घरों के चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं. तीज-त्योहार ही कुछ ऐसे मौके होते हैं जबकि कुछ मोटी आमदनी हो जाती है. शेष दिनों में छिटपुट पूजा-पाठ का काम भी यदि मिल जाय तो गनीमत है. इसी तरह से पूजापाठ की तलाश में ही वे जजमानों के घरों में दौरे मारते रहते हैं. उन्हें अकसर यह लगता है कि तीज-त्योहार के अतिरिक्त दूसरे दिनों में उन्हें अपने वहां आता देख कर कोई भी जजमान प्रसन्न नहीं होता. वे जैसे पंडितजी को देखकर व्यंग्य के लहजे में मुस्करा दिया करते हों. इस मुस्कराहट को समझते हुए भी पंडितजी ने कुछ ऐसी आदत बना डाली है गोकि वे कुछ भी न समझते हों. भीतर ही भीतर यदा-कदा उनको इतनी जबरदस्त पीड़ा व तिलमिलाहट होती है कि वे रोने-रोने को हो आते हैं.

थके-हारे से रात आठ नौ बजे तक लौटते हैं वे. वैसे लौटते हुए दो-चार पोटलियां उनके थैले में लगभग रोजाना ही बंधी होती हैं. जेब में थोड़ी-बहुत रेजगारी भी खनकती होती है. लेकिन रोज ऐसा हो यह आवश्यक नहीं. कभी-कभी तो लगातार दो चार दिनों तक कुछ भी नहीं मिलता. ऐसी स्थिति में कभी-कभार फाके की नियति भी भोगनी पड़ जाती है. कई बार ऐसा हुआ है कि घर में कुछ भी नहीं था, और पंडिताइन सहित छहों बच्चे रात गए तक पंडितजी की प्रतीक्षा करते रहे थे. . . . लेकिन सबसे अधिक दुर्भाग्य तो तब शुरू होता है जब पंडितजी ऐसी प्रतीक्षारत रातों में भी खाली हाथों ही लौट आने के लिए विवश होते हैं. ऐसे अवसरों पर बच्चे मायूस होकर चुपचाप इधर-उधर लुढ़क जाते हैं और पंडितजी की आंखें असहायता व निरुपायता के भयावह बोध से नम हो आती हैं.

★ ★

पंडितजी आज अभी-अभी लौटे हैं. बड़के भी आज उनके साथ गया था. जाहिर है, आज कोई तीज-त्योहार रहा होगा. क्योंकि बड़के को वे ऐसे ही अवसरों पर अपने साथ ले जाते हैं. अभी जबकि वे दोनों लद कर लौटे हैं. दूर स्थिति मिल ने रात के दस बजे का सायरन बजाया है. पंडितजी के दोनों कंधों में भरे हुए थैले लटके पड़े थे. एक बड़ा-सा भरा हुआ थैला बड़के के कंधे पर भी लटका हुआ था.

दोनों रिक्शे से उतरे हैं. रिक्शे से आने-जाने के पंडितजी के जीवन में बहुत गिने-चुने मौके आए हैं. ऐसा ही एक मौका आया है. उतरते ही दोनों धड़ाधड़ कमरे में घुस आए हैं. कमरे के एक कोने में बैठी पंडिताइन ऊंघ रही हैं. बड़ी बिटिया भी एक ओर बैठी छत की ओर निहारे जा रही है. बीच के दोनों लड़के लालटेन की मंद रोशनी में किताबें खोले ऊंघ रहे हैं. कभी-कभी वे अचकचा कर जग-से जाते हैं और फिर धीरे-धीरे बड़बड़ाने की-सी आवाज में कुछ पढ़ने लगते हैं. सबसे छोटा लड़का व दूध पीती बिटिया चारपाई पर लदे खर्राटे ले रहे हैं. शेष चारपाइयां अभी तक कमरे में नहीं लगी हैं.

दरअसल आज भी फाके का दिन रहा है. सुबह बचे हुए कुछ चावलों का मांड़-भात बना कर जरूर खा लिया गया था. लेकिन इस समय किसी ने कुछ नहीं खाया है. इस समय सब प्रतीक्षारत हैं, और सबको यह विश्वास है कि पंडितजी आज जरूर ही लदे-फदे आएंगे.

पंडितजी व बड़के के घुसते ही निस्तब्ध व सुस्ता रहे कमरे में एकाएक सजगता-सी लौट आयी है. पंडिताइन उठ बैठी हैं और दोनों ऊंघ रहे बेटे भी

तनकर बैठ गए हैं. दोनों को लदा-फदा देखकर सभी लोगों के मुखमंडल पर एक अपूर्व संतोष की लहर दौड़ गयी है. सबने मिलकर पंडितजी व बड़के को घेर लिया है.

पंडितजी आते ही जमीन पर बिछी चारपाई पर पसर गए हैं. उन्होंने अपने हाथपांवों को पूर्ण विश्राम की मुद्रा में फैला दिया है. पंडिताइन थैले खोलने लगी हैं. पहले वाले बड़े थैले में आपुरा चावल की बंधी पोटलियां हैं. साथ में कुछ एक छोटी-सी पोटलियां भी हैं जिनमें कि नमक-मिर्च जैसा कुछ बंधा होगा. दूसरे थैले में लाल-पीले रंग के कुछ वस्त्र व दो सफेद धोती एवं तीन-चार लाल गमछे हैं. एक छोटे-से थैले में डालडा से भरा हुआ डिब्बा व तेल से भरी हुई शीशी भी है. तीसरा बड़ा थैला पकवान, फल व मिठाई से भरा हुआ है. दोनों बीच वाले लड़के उस थैले पर टूट पड़े हैं. लेकिन पंडिताइन उन्हें हलके-से झिड़क देती हैं. बड़ी लड़की राशन-पानी संभालने में मां का हाथ बंटाने लगी है. राशन-पानी को अच्छी प्रकार से एक कोने में संभाल कर पंडिताइन ने भूखे बच्चों के सामने पकवान रखी है.

पंडितजी पूरी तरह सुस्त मुद्रा में लेटे पड़े हैं. अभी-अभी उन्होंने थोड़ा-सा पानी मांगकर पीया है. उनकी आंखें अजीब ढंग से मुंदने लगी हैं. वे बार-बार करवट बदल रहे हैं. बड़का भी उन्हीं की तरह एक ओर जाकर पसर गया है.

पंडिताइन, पंडित गोबरधन पांडेयजी को बार-बार करवट बदलते व पेट पर हाथ फेरते देखकर शायद थोड़ा-सा घबड़ा गयी है. पंडितजी के निकट सरकते हुए पूछा है—क्या बात है? थक गए हैं क्या?

प्रतिक्रिया में पंडितजी ने धीरे से अपनी बंद आंखें खोला हैं, फिर हल्के से मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा है—गले-गले तक भर गया हूं..

पंडिताइन हल्के-से मुस्करायी हैं. ठिठोली की मुद्रा में बोली हैं—इतना ज्यादा क्यों खा लिया फिर? इस बार झल्लाए हैं पंडितजी. झुंझलाकर कहा है—तू रही मूरख की मूरख ही... समझी ना...? अगर पांच-सात जजमानों के वहां भी पूजा कराने के बाद थोड़ा-थोड़ा जीमना पड़ा होगा तो समझ ले कितना हो गया? बिना वाम्हन को अपने सामने खिलाए कोई ससरा मानता भी तो नहीं. जब भोजन जीमो तब जाकर कहीं दक्षिणा मिलती है... कहते-कहते पण्डितजी ने एक जोरदार 'डकार' छोड़ी है.

पंडिताइन चुप हो गयी हैं. पंडितजी ही बोले हैं पुनः—देखो जरा उस पोटली में अज्वाइन बंधी होगी, थोड़ी-सी अज्वाइन व एक गिलास पानी लाकर दे दो... पेट बुरी तरह ठुंस गया है... पंडिताइन ने अज्वाइन व पानी लाकर दे दिया है. अज्वाइन चबाने व पानी पी चुकने के बाद वे पुनः लंबायमान हो गए हैं. जेब से मुड़े-तुड़े नोट व रेजगारी पंडिताइन के हवाले करते हुए वे बोले हैं, देख तो कितने हैं...?

बड़ी बेटी व पंडिताइन रेजगारी व नोट गिनने लगी हैं. इस बीच दोनों बीच वाले बेटों की ललचाई दृष्टि भी उन नोटों व रेजगारियों में आकर पड़ी है. पंडिजी अब भी रुक-रुक कर करवट बदल रहे हैं. चारपाई में लेटे हुए दोनों छोटे एक पुत्र व एक पुत्री अब भी खर्राटे में हैं.

—बावन रुपए...! बड़ी बिटिया ने कहा है.

—बसऽऽ... पंडितजी का बेहद बुझा हुआ स्वर सुनाई दिया है. आठ घरों में पूजा कराने के बाद कुल बावन रुपए...? वे बड़बड़ाए हैं. महंगी स्साली दुनिया को जरूर आयी है. लेकिन वाम्हनों के लिए नहीं.. बहुत खिन्नता की अवस्था में ही उनके मुंह से गाली छूटती है. पंडिताइन बेहद उदासीनता की मुद्रा में उन नोटों व रेजगारियों को ताक रही हैं. गोकि वे नोट न हो कर कोई समस्या हो. अचानक बोली हैं—इस पर्व से तो बहुत कुछ सोचा था...

पंडितजी कुछ नहीं बोले हैं. केवल एक हल्की-सी हुंह उन्होंने भरी है. खिन्न होकर बोले हैं—बनिए के बकाया पचास रुपए तो दे ही दो, कम से कम गाहे-बगाहे फाके से तो बचा जा सकेगा...

—इस माह का मकान किराया भी तो बाकी है. पंडिताइन ने सूचना देने के भाव में कहा है. पंडितजी को लगा है जैसे ऊपर की छत भरभराकर उनपर गिरने ही वाली है. उन्होंने भयग्रस्तता की मुद्रा में आंखें मूंद ली है.

—रमा बिटिया के पास बाहर भीतर जाने के लिए चप्पल नहीं है.. जवान बिटिया है, पंडिताइन फिर फुसफुसाई हैं.

लेकिन बड़ी बिटिया ने तत्काल संभाल लिया है, बोली है—नहीं बाबूजी, चप्पल की कोई खास जरूरत नहीं है. काम चल रहा है.. प्रतिक्रिया में पंडितजी ने बेहद दयनीयता से आखें खोली हैं. लगभग निरुपायता व निस्साहयता के बोध से भर कर करुणामिश्रित आद्रभाव से वे चुपचाप बिटिया की ओर ताकते रहे हैं.

—बनिए का फिर देख लेंगे.. बच्चे ठंड से ठिठुर जा रहे हैं, सो पहले एक रजाई बनवानी जरूरी है. लगभग निर्णायक स्वर में पंडिताइन ने कहा है.

पंडित गोबरधन पांडेयजी बहुत बुरी तरह अनमना गए हैं, बोले हैं—कुछ भी करो... कुछ... बाकी फिर देख लूंगा, ...सबने खाना खा लिया है कि नहीं? पंडितजी को लगा उनका स्वर असामान्य हो आया है.

सबने अब तक खा लिया था. केवल पंडिताइन बची थीं. नोट व रेजगारी को संदूक में रख कर वे चुपचाप कुछ सोचती हुई-सी खाने लगी हैं. पंडितजी बिलकुल चुप हैं. एक गहरे किस्म की सोच की गिरफ्त में वे बहे जा रहे हैं.

अचानक पंतडिजी की तंद्रा टूटी है. लगा है जैसे बाहर से किसी ने 'पांडेयजी' कहकर आवाज लगाई हो. इस समय कौन हो सकता है भला? पंडिताइन ने जल्दी से अपना भोजन चारपाई के नीचे छिपा लिया है. बड़के ने दरवाजा खोलकर देखा है, सामने पंडित त्रिभुवन नारायण तिवारी खड़े हैं.

—आओ भाई तिवारी... पंडितजी ने लेटे-लेटे

ही कहा है, कहीं जजमानिका से आ रहे हो क्या? तिवारी ने उत्तर में हामी भरी है.

पंडित गोबरधन पांडेय व पंडित त्रिभुवन नारायण तिवारी में वाह्य रूप में कोई विशेष अंतर नहीं है. हां, तिवारीजी कद, काठी में अवश्य लंबे हैं. बाकी सब कुछ वैसा ही है. लगभग वही पहनावा—मटमैली-सी धोती, उसी ढंग का लंबा-सा खद्दर का कुर्ता. बगल में वैसा ही पोथी-पत्रों वाला लटकता हुआ एक थैला और कपाल पर पं. गोबरधन पांडेयजी की तरह ही लगा हुआ लंबा-चौड़ा-सा चंदन का टीका—कहो, कैसे आना हुआ पं. गोबरधन पांडेयजी ने लेटते ही पूछा है.

तिवारी ने पहले तो हथेलियों से अपनी आंखें मींचीं हैं, फिर जम्हाई लेते हुए कहा है—तुम्हें ही बुलाने आया था. बात दरअसल यह है कि मेरे दो मारवाड़ी जजमानों ने आज पांच ब्राह्मणों को भोज देने का निश्चय किया है. तीन का जुगाड़ तो बैठ गया है. चौथा मैं स्वयं हुआ ही, सोचा पांचवां तुम्हें ले चलूं. . . .

पंडित गोबरधन पांडेयजी एक क्षण के लिए चुप रहे हैं. पंडिताइन, बड़ी बेटी व बड़के की आंखें पंडितजी के चेहरे पर जाकर टिक गयी हैं. पंडितजी संक्षिप्त मौन. अंतराल के बाद बहुत धीमे स्वर में पंडितजी के स्थान पर पंडिताइन बोली हैं—वे नहीं जा पाएंगे, तिवारी भैया. अभी-अभी तो जजमानिका से लौटे हैं. . . पेट पूरी तरह ठुंसा पड़ा है, ऐसे में . . . .

लेकिन पंडिताइन की बात पूरी हो इससे पहले ही पंडितजी ने बात काट दी है—तू चुप रह. . . फिर पं. तिवारी की ओर उन्मुख होते हुए बोले हैं, दक्षिणा क्या मिलेगी भोज में?

—यही कोई दस-दस रुपया, व एक गमछा मिलना तय हुआ है दोनों जगह से. . पं. तिवारी ने बीड़ी सुलगाते हुए कहा है.

पंडितजी ने आंखें मूंद ली हैं. सोचने लगे हैं, सिर्फ भोज में भाग लेने के बीस रुपए तो बहुत हैं. कम से कम इस माह का मकान का किराया तो उतर ही जाएगा. साले ने कहां से फांस लिये हैं मारवाड़ी जजमान! मारवाड़ी तो केवल अपने क्षेत्रीय ब्राह्मणों को ही पूछते हैं. उन्होंने भी तो चेष्टा की थी दो एक मारवाड़ी जजमानों को फांसने की. लेकिन . .

—क्यों चलना चाहोगे या नहीं. . .? पं.तिवारी ने गोबरधन पांडेयजी को चुप देखकर पूछा है.

पंडित गोबरधन पांडेय जी ने आंखें खोली हैं. फिर जल्दी ही चारपाई के डंडे को पकड़ कर उठ खड़े हुए हैं, एक बार पंडिताइन बड़की बेटी के चेहरे की ओर ताका है, फिर पं. तिवारी की ओर उन्मुख होते हुए बोले हैं—चलता हूं अभी. . बस एक क्षण में आया. . . कहकर सीधे बाहर निकल आए हैं. बाहर सामने से एक गंदी-सी नाली बहती है. उन्होंने क्षण भर के लिए अपने चारों ओर इधर-उधर ताक कर देखा है, और फिर जल्दी से नाली में उकड़ूं बैठते हुए गले के भीतर उंगलियां डाली हैं और कै करने लगे हैं. □□□

मु. पनिया उडियार, रानीधारा, अल्मोड़ा

पचतंत्र की एक कथा

शेर और बढ़ई

एक बढ़ई प्रति दिन भोजन ले कर अपनी पत्नी के साथ लकड़ी काटने एक जंगल में जाया करता था. उसी जंगल में एक शेर अपने दो मांसाहारी पिछलग्गुओं सियार और कौवे के साथ रहा करता था. एक दिन बढ़ई ने ज्यों ही जंगल में प्रवेश किया कि शेर को सामने खड़ा देख कर पहले तो उसके प्राण सूख गये. किंतु अपने को सम्हाल कर वह नम्रता से बोल पड़ा—वनराज, आज आपको मेरा साथ लाया हुआ भोजन करना होगा जिसे मेरी पत्नी अर्थात आपकी बहन ने बनाया है.

—मित्र, वैसे तो मैं शाकाहारी नहीं हूं, फिर भी आज मैं तुम्हारा लाया भोजन चख देखूंगा.

इस पर बढ़ई ने अपने साथ लाये हुए भोजन में कुछ स्वादिष्ट वस्तुएं मिला कर शेर को खाने को दीं. बदले में शेर ने जंगल में उसकी रक्षा का अभय वचन दिया.

अब तो बढ़ई शेर को रोज ही भोजन कराने लगा किंतु एक शर्त पर कि वह अपने साथ किसी अन्य को कभी नहीं लायेगा.

उधर सियार तथा कौवा जो शेर के लाये शिकार पर निर्भर थे, भूखे रहने लगे. उन्होंने शेर से पूछा—स्वामी, आप प्रति दिन कहां जाया करते हैं जो इतने खुश हो कर लौटते हैं?

शेर ने कुछ झिझक के साथ उत्तर दिया—मेरा एक मित्र प्रति दिन जंगल में आता है, उसकी पत्नी रोज मेरे लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार करती है और मैं उनके प्रति स्नेह दिखलाने के लिए रोज भोजन किया करता हूं.

इस पर सियार और कौवे ने सलाह की, क्यों न हम चल कर उसे मार कर मोटे-ताजे बन जायें? शेर ने उनकी यह बात सुन ली और गरजा—मैं इस वन का राजा हूं, मैंने बढ़ई को रक्षा का वचन दिया है. हां, मैं उससे तुम दोनों के लिए भी स्वादिष्ट भोजन देने का आग्रह करूंगा. सभी इस पर सहमत हो गये.

अब तीनों बढ़ई की तलाश में निकले. अभी वे दूर ही थे कि बढ़ई ने शेर और उसके धूर्त साथियों को आते देख लिया और दूसरे ही क्षण वह तथा उसकी पत्नी एक वृक्ष पर जा चढ़े. उन्हें वृक्ष पर चढ़ता देख कर शेर भी तेजी से वृक्ष के नीचे जा पहुंचा और बोला—मित्र, मुझे देख कर तुम वृक्ष पर क्यों चढ़ने लगे? मैं तो तुम्हारा पुराना मित्र हूं.

किंतु बढ़ई वृक्ष पर से नहीं उतरा, वहीं से बोला—तुम्हारे दोनों ही मित्र ऐसे हैं जिन पर विश्वास नहीं किया जा सकता. □□□



ये लोग

● नंदकिशोर अरोड़ा

एक आदमी एक जगह बैठा-बैठा अपना काम कर रहा था. कुछ लोग उधर से निकले, ठिठके, काफी देर तक देखते रहे, फिर उनमें से एक बोला—बताओ, काम कर रहा है.

आदमी ने काम करना बंद कर दिया और देखने लगा. दूसरा बोला—बताओ, देख रहा है.

आदमी उठ कर खड़ा हो गया और देखने लगा. तीसरे ने कहा—बताओ, खड़ा हो गया.

आदमी ने कुछ बोलने की कोशिश की. चौथा बोला—बताओ, बोल रहा है.

आदमी चुप हो गया, तो पांचवा बोला—देखो, चुप हो गया.

आदमी अपने घर के अंदर घुस गया. सब चिल्लाये—बताओ, घर में घुस गया. आदमी नहीं निकला. तब तक कुछ और भीड़ जुट गयी थी और इन लोगों के स्वर में स्वर मिला कर चिल्लाने लगी थी.

वह नहीं निकला. आदमी उसके मकान के सामने जुटते रहे. लोग पत्थर मारते रहे. गालियां देते रहे. ताने कसते रहे, पर वह नहीं निकला. आखिरकार लोगों ने सोचा कि क्यों न दरवाजा तोड़ डाला जाये. हो सकता है, दरवाजा बंद करके काम कर रहा हो.

दरवाजा तोड़ डाला गया. अंदर आदमी की लाश छत से झूल रही थी—बताओ, मर गया. एक आदमी ने कहा और भीड़ वहां से हट गयी. अब सुना है, ऐसी भीड़ किसी दूसरे आदमी के घर के सामने जुट रही है. □

अर्थ का गणित

● मोहरसिंह यादव

वर्तमान काल में प्रतिष्ठित सभी ज्ञान-विज्ञान शाखाओं का जन्म यूनान काल में हो गया था.

एक बार ऐसा ही समय आया जब सारे यूनान में कला और विज्ञान का एक भी प्रेमी न रहा. राजा से ले कर प्रजा तक सभी का दृष्टिकोण गणनात्मक हो गया. व्यक्तिगत संबंधों को भी आर्थिक माप-दंड की तुला पर तौला जाने लगा. जिस काम में तनिक भी नुकसान की संभावना दिखती, उसे शुरू ही नहीं किया जाता था.

उस संक्रांति काल में महान रेखा-गणित यूक्लाइड का जन्म हुआ. उनकी नवीन खोजों व सिद्धांतों से नागरिक प्रभावित होने लगे. दिन प्रति दिन यूक्लाइड के शिष्यों एवं समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी.

तत्कालीन यूनान के महाराजा को जब यूक्लाइड की विद्वत्ता तथा प्रसिद्धि की सूचना मिली तो उनके दिल में भी रेखा गणित संबंधी ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हुई. वे दूसरे ही दिन यूक्लाइड की कुटिया पर जा पहुंचे. यूक्लाइड उस समय अपने शिष्यों के बीच बैठे पढ़ा रहे थे. राजा भी शिष्यों के साथ बैठ कर यूक्लाइड को सुनने लगे.

लगातार सात दिन तक यूक्लाइड की कक्षा में राजा आते रहे. एक रात अपने महल में सोते समय राजा ने रेखा गणित के पढ़ने से होने वाले फायदे के बारे में सोचा, किंतु फायदा एक पैसे का भी न सूझा.

दूसरे दिन राजा ने यूक्लाइड से पूछा—साधु, मैं सात दिन से तुम्हारी कक्षा में रेखा गणित पढ़ रहा हूं, किंतु फायदा एक पैसे का भी न हुआ. अब तुम बताओ, रेखा गणित पढ़ने से क्या फायदा है?

यूक्लाइड ने शांत भाव से पूछा—पहले मुझे यह बताइये, आप कौन हैं? राजा ने गर्व से कहा—अरे, तुम नहीं जानते? मैं यूनान का महाराजा हूं.

यूक्लाइड ने उस समय की प्रचलित मजदूरी चार आना प्रतिदिन के हिसाब से आठ दिन के दो रुपये राजा के हाथ पर रखते हुए कहा—यह लो अपनी आठ दिन की मजदूरी और कल से हमारी कक्षा में मत आना.

राजा बहुत लज्जित हुआ और अपने महल लौट आया. □

अंतर

● शैलेंद्र जॉर्ज

एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के यहां नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति गप्प-शप्प कर रहे थे.

एक सुसज्जित ट्रे में चाय आयी. चाय पीते हुए सभी लोग पुनः गप्प-शप्प में लग गये.

उसी समय उनमें से एक आगंतुक प्रतिष्ठित व्यक्ति के हाथ से कप फिसल कर फर्श पर बिखर गया और नीचे बिछी हुई कीमती विदेशी कालीन गंदी हो गयी.

मेजबान ने नौकर से टूटा कप बाहर फेंक आने तथा एक कप चाय और लाने का आदेश दे कर मुसकराते हुए पुनः गप्प-शप्प में लग गया.

कुछ देर बाद गप्प-शप्प समाप्त हुई. सभी लोग अपने-अपने रास्ते चले गये.

नौकर पुनः आया. सभी खाली कप-प्लेट उठा कर जाने लगा, उसी समय उसके हाथ से एक कप फर्श पर गिर कर टूट गया.

वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बहुत बौखलाया—नौकर को लंबी-चौड़ी डांट पिलायी, अनेक गालियां दीं, तथा नौकरी से निकाल देने की धमकी दी, और बैठक छोड़ कर चला गया. बेचारा नौकर रुआंसा हो पुनः टूटा हुआ कप समेटने में लग गया. □

व्यापारी

दुर्गादत्त दुर्गेश

एक पूंजीपति ने बेहद पैसा लगा कर प्रकाशन प्रतिष्ठान की स्थापना की. धंधा चमक गया. धड़ल्ले से पुस्तकें बिकने लगीं. शुरू-शुरू में काफी लाभ हुआ. अपनी व्यापारिक बुद्धि पर उसे गर्व था. लेकिन कुछ समय बाद उसने देखा कि पुस्तकों की बिक्री के साथ-साथ लेखकों की संख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है. और एक समय आया, जब उसके ग्राहकों की संख्या लेखकों की संख्या से बहुत ही कम रह गयी. व्यापारी भी पूरा व्यापारी था. इस स्थिति से घबराया नहीं. उसने लेखकों से पैसा ले कर पुस्तकें पढ़ने वालों को पारिश्रमिक देना शुरू कर दिया. कुछ समय बाद स्थिति पूर्ववत थी. □

पश्चाताप!

एक ऋषि किसी नगर में से गुजर रहे थे. नगर-निवासी किसी आनंदोत्सव में व्यस्त थे. ऋषि ने एक नगर-निवासी से पूछा —यहां क्या हो रहा है भाई?

—नगरी के राजा के यहां वृद्धावस्था में लड़का पैदा हुआ है. उसी की प्रसन्नता में उत्सव मनाया जा रहा है.

ऋषि राजा के भवन में जा पहुंचे. राजा रास-रंग में मग्न था. ऋषि के आगमन की सूचना पा वह तुरंत उसके स्वागत में पहुंचा.

—राजन्, तुम्हारे यहां लड़का पैदा हुआ है?

—हां, मुनिवर.

—वह लड़का मुझे दे दो, मैं उसे राजनीति में कुशल बना दूंगा.

—ले जाइए मुनिवर. . .

—हां! जब लड़का पढ़-लिख जाये तो उसे वापस बुला लेना.

—जैसी आपकी आज्ञा.

ऋषि लड़का ले कर चले आये.

कुछ वर्ष बाद :

राजा ऋषि के आश्रम में पहुंचा.

—आओ राजन्!, ऋषि ने राजा का सत्कार किया.

—मेरा लड़का. . .राजा ने हिचकिचाते हुए कहना चाहा.

—हिचकिचाओ नहीं राजन्! ऋषि ने उत्साहित किया, तुम्हारा लड़का इसी आश्रम में है. पहचान कर ले जाओ.

राजा कई दिन उस आश्रम में रहा, अंत में खाली हाथ लौट गया.

वह अपने लड़के को न पहचान सका था. □

विचित्र पुरस्कार

एक पापी आदमी को पकड़ कर धर्मराज के सामने लाया गया. धर्मराज ने उसके कार्यों का लेखा-जोखा देखा. विवरण पत्रिका में उसके नाम पर एक भी अच्छा काम लिखित नहीं था. धर्मराज ने उदासी से उस आदमी की ओर देखा और बोले—तुम अति पापी हो, तुम्हारे हिस्से में एक क्षण का भी स्वर्ग नहीं है.

यह सुनते ही पापी क्रुद्ध हो कर बोला—तुम्हारा बही-खाता ही झूठा है.

—वह कैसे?

—मैं कुछ भी नहीं करता रहा.

—तो ये सब बुरे काम किसने किये?

—ये सब काम मुझसे तुमने करवाए हैं.

—वह कैसे?

—ये चांद, सितारे, गर्मी, सर्दी, हवा पानी, सूरज, धरती मेरे बनाए हुए नहीं हैं. इनकी व्यवस्था को मैंने नहीं बनाया. तुम्हारी इस व्यवस्था का कैदी बन कर, परिस्थितिवशात् जो कुछ मैंने उचित समझा, किया. यदि मेरा कोई काम तुम्हें बुरा लगा तो वह बुराई मेरी नहीं, तुम्हारी और तुम्हारी बनायी हुई व्यवस्था की है.

धर्मराज ने उस व्यक्ति की बात पर प्रसन्न हो कर पुरस्कार स्वरूप उसे पत्थर बना दिया. □

(चयन एवं संयोजन : वीरेंद्र जायसवाल)

श्रीमान जी

सुभाष पंत

आप नाक-भौं क्यों सिकोड़ रहे हैं श्रीमान जी? अब वक्त आ गया है जब आपको हमारी बात सुननी ही होगी. आप बहुत दिन रूमानी और मांसल साहित्य के धुंधलके में भटक चुके हैं. अब होश में आइए और ऐसे साहित्य से साक्षात्कार कीजिए जिसमें आज के जलते हुए सवाल हों, जिसका काम आपको गुदगुदाना मात्र न हो, बल्कि समय की बेरहम सच्चाइयों के प्रति सोच पैदा करना हो. मैं आपको एक ऐसी ही बात सुनाने जा रहा हूं. आप इसे कहानी की संज्ञा देना चाहें तो शौक से दे सकते हैं, यूं यह एक हकीकत है.

मैं एक मजदूर हूं या कह लीजिए था. मेरा बाप भी मजदूर है. इस वक्त मुझे मालूम नहीं वह जिंदा है या मर गया है. बाप का बाप भी मजदूर था. इससे पीछे की वंश परंपरा के बारे में मुझे कुछ मालूम नहीं. यूं भी मजदूरों की वंश परंपरा कोई गौरवशाली वंश परंपरा तो होती नहीं, कि इतिहास उन्हें अपने पन्नों में सुरक्षित रखे. पर यह निर्विवाद सत्य है कि वह भी मजदूर रहा होगा क्योंकि यह एकदम स्पष्ट और सार्वभौम सत्य है कि मजदूर का बेटा मजदूर ही होता है.

—आपने क्या पूछा? मेरा नाम.

—जी, नाम कुछ भी हो सकता है. अंतर ही क्या पड़ता है? आप अपनी सुविधानुसार जो नाम चाहें, दे दीजिए. बस खयाल रहे, कोई कलात्मक नाम न हो.

तो किस्सा यूं है.

उन दिनों मैं स्कूल में पढ़ रहा था. मैं कोई जहीन विद्यार्थी तो नहीं था, पर औसत रूप से पढ़ने में अच्छा था. बस गलती यहीं शुरू हो गयी थी. यानी मैंने स्वप्न देखने शुरू कर दिये थे. यह एक खतरनाक बात थी और वक्त के खिलाफ एक गहरी साजिश थी, कि मेरे दो नन्हे डैने निकल आये थे, कि मैं स्वप्नलोक में उड़ने लगा था. श्रीमानजी, स्वप्नों पर आपका और महज आपका अधिकार है. मैंने अतिक्रमण किया था. मैं अपराधी हूं. न जाने क्यों मुझे अहसास हो गया था कि मैं अपने परिवार को इस कलंक से मुक्त कर दूंगा. दरअसल मुझे यह पूरी उम्मीद थी कि मैं मैट्रिक पास करके बाबू बन जाऊंगा.

तभी एक दिन मेरा बाप मेरे सामने खड़ा हो गया. कहने लगा कि घर की हालत एकदम बिगड़ गयी है और मुझे मजदूरी कर लेनी चाहिए. घर की हालत तो सचमुच बिगड़ी हुई थी ही, दो जून सूखी रोटी भी मयस्सर नहीं थी. ऊपर से मां बीमार थी. पर मैं विद्रोह में चीखा — नहीं, अभी मैं पढ़ना चाहता हूं.

बाप ने कोई जवाब नहीं दिया. यूं वह गुस्सा कर सकता था. पर वह खुद भी गहरी मानसिक यंत्रणा से पीड़ित था. उसकी आंखें एक साथ खोखली हो गयीं, चेहरा सैकड़ों-सैकड़ों झुर्रियों से भर गया और वह विकलांग लगने लगा. वह भीतर कहीं बहुत दूर तक टूट गया था. दुनिया का कोई भी आदमी उसे देख कर पिघल सकता था. मैं तो आखिर उसका बेटा ही था.

सहसा मेरे दोनों नन्हे डैने जलने लगे. मैंने पाया अब मैं उड़ नहीं सकता. भविष्य में भी कभी नहीं उड़ पाऊंगा. स्वप्न एकदम धराशायी हो गये. पैरों के नीचे की मिट्टी सख्त हुई और इस्पात में तब्दील हो गयी. मैं गर्दन झुका उसके पीछे चलने लगा. यह वह समय था जब मेरे भीतर एक लावा पिघल रहा था. पर फर्क क्या पड़ता है, लावा किसी मजदूर के बेटे के भीतर ही तो पिघल रहा था. फिर क्या आपने कोई ऐसा मजदूर भी देखा है जिसके भीतर पिघलता हुआ लावा न हो. पर नहीं, आप कभी उसके भीतर झांकने की कोशिश करेंगे ही नहीं. वरना आपको संभ्रांतों की पंक्ति से अलग हटा दिया जायेगा.

बाप आगे था. मैं पीछे. नहीं दो दहकती हुई भट्टियां थीं जो कतारबद्ध आगे-पीछे चल रहीं थीं. हवा थी ही नहीं पर न जाने क्यों किनारे खड़े पेड़ों के पत्ते हिल रहे थे जैसे वे बेहद बेचैन हों. जी हां, सूरज था जो वाहियात तरीके से हंस रहा था और उसकी किरणों ने फंदों की तरह हमारी गर्दनें दबोच रखी थीं. सन्नाटा बहुत खतरनाक ढंग से छाया हुआ था. आसमान एकदम सलेटी था. अक्सर ऐसा आसमान चेतना पर किसी शोकगीत की तरह हावी होने लगता है. ऐसे में मन उदास और बहुत-बहुत उदास हो जाता है.

सहसा आगे चलता मेरा बाप सुबकने लगा.

मैं लपक कर उसके पास पहुंचा. अब वह फूट-फूट कर रोने लगा. यह हार स्वीकार करने की ही नहीं बल्कि एक इन्सान के पूरी तरह खंडित हो जाने की प्रक्रिया है. दरअसल जिस गर्त में वह जिंदगी भर क्षय हुआ था, उसमें मुझे याने अपने बेटे को अपने हाथों धक्का देते हुए उसे घोर परिताप हो रहा था.

मैंने आगे बढ़ कर दोस्ताना लहजे में उसके कंधे पर हाथ रख दिया. मुझे दुख नहीं है. मैं अपनी नियति से समझौता करने को तैयार हूं.

★ ★

उन दिनों यहां एशिया का सबसे बड़ा सिनेमा हाल बन रहा था. इतना विराट और भव्य कि उसके दीर्घाकार पिलर देख कर आदमी को आतंक दबोच लेता था. मेरा बाप उन दिनों वहीं काम करता था. उसे देख कर न जाने मुझे क्यों लगा था कि उसके विशाल पिलर जमीन पर नहीं, मेरी और मेरे बाप की छाती पर उगे हुए हैं. उसकी पहली मंजिल पर, जो तकरीबन पूरी होने वाली थी, पचास-साठ मजदूर काम कर रहे थे. ऊपरी मंजिल पर कोई डेढ़-सौ, दो सौ मजदूर होंगे.

काम रात-दिन चल रहा था, फिर भी कोई उम्मीद नहीं थी कि वह समय पर पूरा हो जायेगा. इसलिए कुछ मजदूरों की और जरूरत थी, कि काम वक्त से पूरा हो जाये.

मेरा बाप मुझे किसी कंट्रेक्टर के मुनीम के पास ले गया था. वह मेज पर कई रजिस्टर सजाये कुर्सी पर दुबका बैठा था, और खुद आदमी कम और रजिस्टर ज्यादा दिख रहा था. उसकी नाक लंबी थी और लगता था कि यह आदमी नाक से भी काट सकता है. यूं उसकी आंखों पर चश्मा था, पर चश्मे के भीतर से उसकी दो खूसट आंखें बदसूरती से झांक रहीं थीं.

मेरे बाप ने कमान की तरह जमीन तक झुक कर उसे नमस्कार किया. उसने कोई जवाब नहीं दिया. परिचय का कोई संकेत उसके चेहरे पर नहीं था, बल्कि एक-अजीब-सी वितृष्णा उसके चेहरे पर आयी और वे तिड़क गये. उसने जेब से एक मुड़ी-तुड़ी-सी सिगरेट निकाल कर अपने होंठों से लगायी, उससे पहले कि वह माचिस ढूंढ कर उसे सुलगाता, मेरे बाप ने फुर्ती से अपनी दियासलाई से उसे जला दिया.

मुझे दुख हुआ कि मेरा बाप छह रुपये रोज पर पूरी तरह बिक चुका है. सिगरेट का धुंआं छोड़ते हुए उसने कहा — तेरा बेटा काम पर लिया जाता है. उसे दूसरी मंजिल पर तसला ढोने के लिए भेज दे.

बाप फिर अदब से झुका और बोला — बड़ी मिहिरबानी सरकार. और मेरा हाथ थाम कर घूम गया.

—ठहर! तभी मुनीम की कड़कती हुई आवाज सुनायी दी. पलट कर देखा. मुझे डर लग रहा था कहीं मुनीम चश्मा उतार कर बात न करने लगे. दरअसल उसकी आंखों की भयानकता से मैं बचना चाहता था.

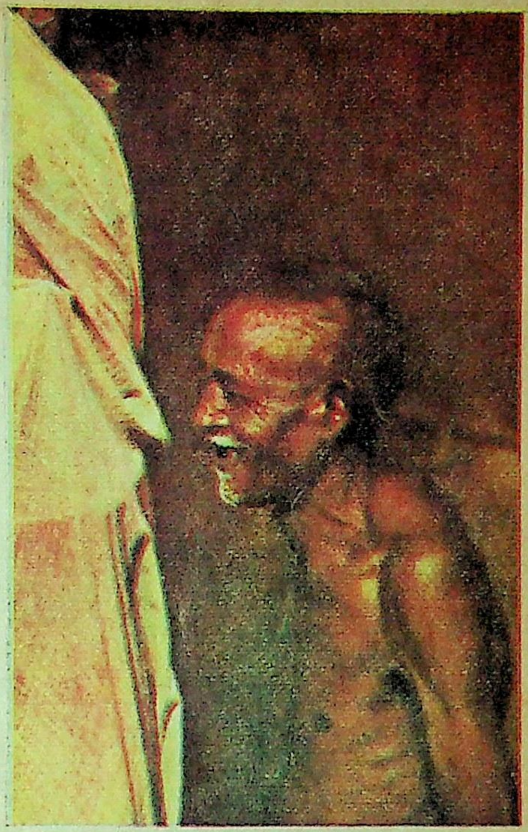
गनीमत थी, उसने चश्मा नहीं उतारा था, पर वह गुर्रा रहा था — तेरे बेटे को स्कूल में सलाम करना नहीं सिखाया गया है.

मैं उसे सलाम नहीं करना चाहता था. पर मैंने पाया कि मेरे हाथ जुड़े थे और मैं कमान की तरह जमीन पर झुका खड़ा था यानी मैं पूरी तरह मजदूर हो चुका था.

—ठीक है, यह अनधिकृत मजदूर की तरह काम करेगा. मस्टर रोल में इसका नाम नहीं लिखा जायेगा और इसे तीन रुपये रोज पगार मिलेगी.

बाप ने विवशता के साथ इसे स्वीकार कर लिया था. अंदर का लावा था जो बेसाख्ता आंखों से टपकने को तैयार था, उसने जबर्दस्ती उस पर काबू पाया और मुझे खींच कर ले गया, कहीं मैं अनाप-शनाप न बकने लगूं.

मैं दूसरी मंजिल पर काम करने लगा था. मेरी तरह वहां और भी कई मजदूर थे जो अनधिकृत थे, जिनका नाम मस्टर रोल में नहीं था और जिन्हें आधी पगार मिलती थी. हम सबको गारा ढोने के काम पर लगाया गया था. और हम सभी यह महसूस कर रहे थे कि हम तसलों में गारा नहीं अपने अरमान ढो रहे हैं, और उन्हीं अरमानों से किसी पूंजीपति के महल की नींवें चिपक और बढ़ रही हैं. दिन भर की जी तोड़ मेहनत के बाद मुझे तीन रुपये मिले थे. मेरी इच्छा हुई थी कि उन्हें फैली हथेली पर टिकाये शहर में जुलूस निकालता हुआ चला जाऊं, कि देखो आदमी का शोषण यहां कैसे होता है. पर बाप ने मेरी हथेली से वे तीन रुपये उठा लिये थे और खिस्से में डाल दिये थे. मुझे खयाल नहीं रुपये उठाते



● सिद्धार्थ पटेल

वक्त उसके हाथ कांपे थे या नहीं. हां, मेरे भीतर जरूर अंदर तक धुआं भरा था.

पांच-छह रोज बाद ही काम में मेरा मन रमने लगा था. समय एक धारा प्रवाह है, डूबते-उतराते आदमी उसमें बहने लगता है. हम कई हमउम्र मजदूर थे. हम गप्पें लड़ाते, हंसी-मजाक करते और हमउम्र मजदूनिरयों को देख कर सीटियां बजाते और भद्दे इशारे करते. जीवन का एक नया और बिल्कुल अछूता अर्थ खुल रहा था. रधिया की आंखें तो हर वक्त मेरे दिमाग में ही छायी रहती थीं. तभी हम जबर्दस्त हादसे के शिकार हो गये.

उस वक्त मेरा बाप साठ-सत्तर मजदूरों के साथ निचले हिस्से में काम कर रहा था और मैं सौ-डेढ़ सौ साथियों के साथ ऊपरी हिस्से में. हम गीत गा रहे थे और काम कर रहे थे. . .

यकायक बिल्डिंग कांपने लगी.

जी नहीं, भूकंप नहीं आया था. पता नहीं कैसे पिलरों पर स्थित गर्डर अपनी जगह से सरकने लगे थे. देखते ही देखते छत बीच से धसकने लगी. सरिये टूट कर गिर रहे थे, ईंट और मलवा तेज आवाज के साथ नीचे छूट रहा था. भगदड़ और चीख-पुकार का कोहराम मच गया. पर इससे पहले कि कोई बच सकता, पूरी की पूरी छत सब मजदूरों को अपने में समेट एक खौफनाक आवाज के साथ नीचे बैठ गयी. पिलर कांपे और चीखते हुए गिर पड़े. इत्तफाक से मैं दो-चार साथियों के साथ उस वक्त छत की मुंडेर पर था. हम प्राण बचाने के लिए सौ-डेढ़ सौ फुट से नीचे कूद पड़े और जमीन पर गिर

कर खील-खील हो गये, सिवा मेरे जो मलवे के ढेर पर सीधा गिरा था और धड़ तक उसमें धंस गया था.

तभी सायरन गूंजने लगे. सुरक्षादल की गाड़ियां एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ने लगीं. पर वे लाचार थीं, क्रेन के सहारे पिलर हटाये बिना किसी भी मजदूर को बचाया जाना नितांत असंभव था. क्रेन वहां नहीं थी यूं भी किसी के जिंदा रहने की उम्मीद काफी कम थी. मैं मलवे में धंसा हाथ पटक रहा था और सहायता के लिए चिल्ला रहा था. मैंने देखा था सामने एक पेड़ की टहनी से मेरे बाप का कोट लटक रहा था और जमीन पर पोटलियों में बंधा हमारा खाना रखा था. मैं सन्न रह गया, मुझे लगा था टहनी पर कोट नहीं, मेरे बाप की लाश लटकी हुई है.

तभी मुझे मुनीम आता दीख गया. उसकी आंख पर चश्मा नहीं था और वह काफी घबराया लग रहा था. उसके साथ दो-चार आदमी और थे. मुझे देख कर उसने उनके कानों में फुसफुसा कर कुछ कहा. आदमियों ने मुझे तुरंत मलवे से खींच लिया.

—इसे तुरंत अस्पताल ले जाओ. उसने कहा और आंख दबायी.

—मेरा बाप. मैं चिल्लाया. मैं दौड़ना चाहता था. पर मेरे पैर पूरी तरह नष्ट हो चुके थे. मैं चीखा, मेरे पैर, और बेहोश हो गया.

जब मेरी आंख खुली उस समय मैं एक हिचकोले खाती गाड़ी में था. गाड़ी उबड़-खाबड़ और वीरान बस्तियों के बीच से गुजर रही थी. मैं कराहा— आप लोग मुझे कहां लिये जा रहे हैं?

ड्राइवर की सीट की बगल में बैठा आदमी हंसने लगा. उसके गॉगल्स में से उसकी दो अंगारों-सी दहकती आंखें झांक रहीं थी. दूसरे ने पीछे घूम कर मुझे आश्वस्त किया— कत्ल करने.

मैं समझा नहीं,पर एक आतंक अंदर तक झिंझोड़ गया. मैंने साहस करके पूछा— आप तो मुझे अस्पताल. . .

दोनों फिर हंसने लगे— हम तुझे कत्ल करने ले जा रहे हैं. तू अनधिकृत मजदूर है. सरकार मजदूरों को मुआवजा दिलवाने की मांग करेगी. अगर तू जिंदा रहा तो कई तरह की परेशानियां पैदा हो सकती हैं. मजदूर जात होती ही बेवफा है. जिस थाली में खाती है, उसी में छेद करती है. स्साली दो-दो गज जुबान निकाल कर मुआवजे की मांग करने लगती है. मस्टर रोल में तेरा नाम नहीं है, कानून की गिरफ्त में हम नहीं फंस सकते.

मैंने निगाह उठा कर विंड-स्क्रीन से बाहर झांका. मेरी निगाहें अस्थिर हो गयी थीं. टुकड़े-टुकड़े, झिलमिलाते पेड़-पौधे और आसमान दिख रहा था. पेड़ गहरे आतंक से लिपटे हुए थे. पूरा शहर कहरों की बस्ती था. यह तो हो ही नहीं सकता था कि मैं दौड़ती गाड़ी से कूद पड़ूं, मेरे पैर पूरी तरह लुंज हो चुके थे. अलबत्ता मैं दर्द से कराह जरूर रहा था. मौत सामने थी, पर मुझे आश्चर्य हुआ, मैं काफी सहज हो गया था. मैं अतीत के किन्हीं सुखद क्षणों की तलाश करने लगा. पर मुझे ऐसा कोई क्षण याद नहीं आया. आपको आश्चर्य हुआ होगा, पर बात एकदम सही है मजदूरों के जीवन में ऐसे क्षण होते ही नहीं जिन्हें स्मृतियों में अंकित रखा जा सके. मैंने मां की, बाप की, रधिया की शक्ल याद करने की कोशिश की, पर कुछ भी उमर नहीं पाया. इसके बाद मैं शायद फिर बेहोश हो गया था.

जब मुझे फिर होश आया तब गाड़ी यमुना के किनारे खड़ी थी. उसका पानी एकदम काला था और क्रुद्ध सिंह की तरह गर्जना करता हुआ किनारों से पछाड़ खा रहा था. उसकी छाती पर झुका आसमान उससे भी ज्यादा काला और डरावना था.

दोनों आदमी गाड़ी से बाहर निकल आये थे और बोनट पर पैर टिकाये इस विचार-विमर्श में लीन थे, कि हत्या कैसे की जाये.

—गोली से. एक ने कहा.

—बेवकूफ हो. दूसरे ने जवाब दिया. पिद्दी न पिद्दी का शोरबा, इस पर गोली खराब नहीं की जा सकती. हत्या छूरे से की जा सकती है.

—बेवकूफी है. गला घोट कर क्यों न मार दें और नदी में फेंक दें.

उन्होंने पिछला दरवाजा खोल कर मुझे खींचने की कोशिश की. मैंने प्रतिरोध करना चाहा, सिमट कर सीट के पिछले हिस्से में दुबक गया और चीखा— मुझ पर रहम कीजिए. मैं विश्वास दिलाता हूं कि मुआवजे की मांग नहीं करूंगा. जीने का हक तो मुझे है. परमात्मा के लिए. . .

प्रत्युत्तर में वे केवल हंसे.

मुझे लगा मेरे सीने में एक नन्हा कबूतर पंख फड़फड़ा रहा है. उन्होंने मुझे खींच कर जमीन पर पटक दिया.

—खड़ा होने की कोशिश कर, एक ने हुक्म दिया.

दोनों हाथ जमीन पर टेक कर मैंने खड़ा होने की कोशिश की, पर मैं उठ नहीं सका, उनके पैरों के पास ही गिर पड़ा. एक ने मुझे कंधों से दबोच लिया दूसरे ने पूरी ताकत से मेरा गला दबा दिया. रिरियाती हुई आवाज निकली. शायद मेरी आंखें फट कर बाहर आ गयी थीं और मैंने ढेर सारा खून उगल दिया, जिससे हत्यारों के हाथ खून से भर गये. मेरी सांस रुक गयी और मैं मर गया. योजना के अनुसार मुझे नदी में फेंक दिया गया.

आपको आश्चर्य हुआ, कि जब मेरी हत्या कर दी गयी है तब मैं आपको अपनी कहानी कैसे सुना रहा हूं?

श्रीमान जी, मेरा विनम्र निवेदन है कि मजदूर कभी नहीं मरता. रामू, श्यामू, पंचम, गुड्डी, हाशिम मर सकते हैं. मजदूर नहीं मर सका. आखिर देश तो उसके कंधों पर ही टिका होता है न! जिस दिन वह मर जायेगा उस दिन देश धड़धड़ा कर गिर पड़ेगा. जी हां, मैं अब भी जिंदा हूं और उन कातिलों को ढूंढ़ रहा हूं, जिन्होंने मेरा कत्ल किया था. पहचान बहुत साफ है, जिन लोगों ने मेरा कत्ल किया है और जो इस साजिश में संलग्न हैं, उनके हाथ अब भी मेरे खून से रंगे हुए हैं.

श्रीमानजी, कृपया झुकिए और अपने हाथ फैला कर देख लीजिए कहीं आपके हाथ पर भी तो खून के दाग नहीं हैं. □□□

१५३, डोभालवाला, देहरादून

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

(१४)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, असमिया और उर्दू की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही है—तमिल की प्रथम मौलिक कहानी. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे—एक कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है, और दो कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

प्रथम मौलिक तमिल कहानी

तालाब के तट पर पीपल का वृक्ष: एक विवेचन

• एस. शिवपाद सुंदरम्

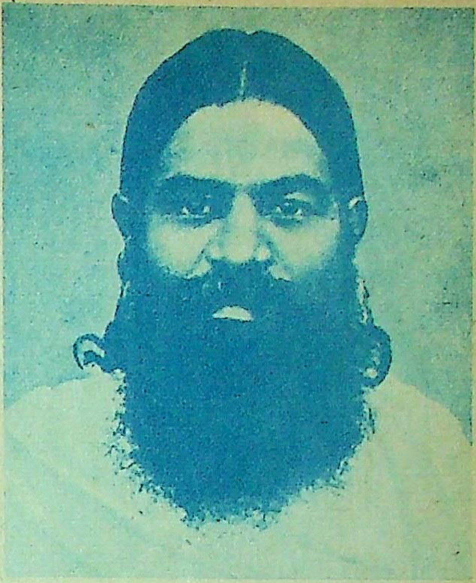
कहानी हमारे लिए नयी चीज नहीं. हजारों-हजारों सालों से मौखिक रूप से कहानियां समस्त भारतीय भाषाओं में प्रचलित रहीं, फिर भी पाश्चात्य देशों से छापाखाने के यंत्र भारत में जब से आये, तब से ही कहानियों को साहित्यक रूप मिला—वह भी अंग्रेजी के ज्ञाता उस भाषा में प्राप्त विभिन्न साहित्यक रचनाओं का रसास्वादन कर सके. उसी प्रणाली को अपनाकर जब से लिखना शुरू किया गया, तभी नॉवेल और 'शॉर्ट स्टोरी' का जन्म हुआ.

तमिल में प्रथम मौलिक कथा कौन-सी है, यह जरा कठिन प्रश्न है. अठारहवीं सदी के मध्य काल में 'वेस्की' नामक एक इतालवी पादरी तमिलनाडु में धर्म-प्रचार करने आये. उन्होंने तमिल भाषा का अध्ययन किया और इतना पांडित्य अर्जित कर लिया कि स्वयं ही कई व्याकरण के ग्रंथों और काव्य ग्रंथों की भी रचना की. यह तो सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है. उनका व्याकरण ग्रंथ तमिल भाषा का एक अमूल्य निधि माना जाता है. उन्होंने सरल, सुबोध शैली में 'परमार्थ गुरु की कथा' के नाम पर एक कहानी लिखी. इस तरह उन्होंने कुल सोलह कहानियां लिखीं. कुछ लोग इसी कहानी को तमिल की पहली कथा मानते हैं. ये कहानियां १९२२ में पुडुच्चेरी के मुत्तुस्वामी पिल्लै द्वारा छपवायी गयीं. यह मानने की बात है कि कथा के रूप में पहले पहल प्रकाशित कहानियों 'वेस्की' की ही हैं. तमिल की गद्य शैली का प्रारंभ भी यही है, ऐसा कह सकते हैं. मात्र इनको साहित्यिक दृष्टि से नावेल या शार्ट स्टोरी के रूप में नहीं ले सकते.

उन्नीसवीं सदी के बीच में अंग्रेजी भाषा के शिक्षण केंद्र, स्कूल और मद्रास के विश्व विद्यालय इत्यादि की संस्थापना के उपरांत जब अंग्रेजी नॉवेल पाठय ग्रंथ में स्थान पाने लगे, तभी तमिल भाषा में भी १८७९ में प्रथम मौलिक उपन्यास लिखा गया. इस उपन्यास का नाम था 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्.' इसके लेखक उस जमाने के डिस्ट्रिक्ट मुंसिफ मायूरम् वेदनायकम् पिल्ले थे.

छापाखाने के प्रचलन के उपरांत तमिल में पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं तो कहानी, लेख, निबंध इत्यादि की मांग हुई. १८५५ में पेरसिवल पादरी द्वारा संपादित 'दिनवर्त्तमानी' नामक साप्ताहिक पत्रिका में वीरासामी चेट्टियार नामक एक लेखक ने कुछ कहानियां लिखीं. १८९२ में 'विवेक चिंतामणी' के नाम पर प्रकाशित साहित्यक मासिक पत्रिका में वि. आर. राजमअय्यर ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'कमलाम्वाल चरित्रम्' को धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया. लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है १८९९ के पहले 'शार्ट स्टोरी' अर्थात कहानी कला की दृष्टि से साहित्यक मान्यता

तमिल के आद्य-कथाकार :
व. वे. सु. अय्यर



तमिल की मौलिक कहानी के जन्मदाता श्री व. वे. सु. अय्यर का जन्म तमिलनाडु के तिरुच्ची जिले के पास वरकनेरी नामक गांव में १८८१ में हुआ था. इन्होंने तिरुच्ची के अर्च. सूचप्पर. कालेज में शिक्षा पायी. तिरुच्ची और बाद में रंगून में वकालत की. कुछ सालों के उपरांत १९०४ में से बैरिस्टरी करने लंदन गये. वहीं पर इंडिया हाउस में वीर सावरकर से उनकी मुलाकात हुई. इस मुलाकात ने उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया. सावरकर, उनके चलाये आंदोलन और उनके क्रांतिकारी साहित्य ने उनको इतना प्रभावित कर दिया कि उन्होंने सावरकर की पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया. यही नहीं, उनके जीवन में एक नया, रोमांचकारी अध्याय भी खुल गया. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रांति का झंडा उठाने वाले विप्लवकारियों में अय्यर एक हो गये. इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी. . आदि देशों में क्रांतिकारी कार्य करते हुए सावरकर के साथ लापता हो गये. कई प्रकार की अमानुषिक यातनाएं और घोर संकटों का सामना करते हुए छद्म वेश में आखिर भारत में फ्रेंच प्रदेश पुदुच्चेरी (जो आजकल पांडिच्चेरी है) आ पहुंचे. यहां पर पहले ही क्रांतिकारी आंदोलन में सफल न हो कर आध्यात्मिक साधना में जुटे अरविंद घोष, कविवर भारती आदि शरण ले चुके थे. व. वे. सु. अय्यर अब उनसे मिल गये और साहित्य साधना में जुट गये.

व. वे. सु. अय्यर बड़े विद्वान व बहुभाषा पंडित थे. उनको अंग्रेजी, तमिल, संस्कृत, लेटिन, फ्रेंच, जर्मन, हिंदी, उर्दू आदि कई भाषाओं का अच्छा खासा ज्ञान था. कम्बरामयण के वे बड़े रसिक और प्रेमी थे. कम्बरामयण के बालकांड को संपादित करके नये ढंग से उसका प्रकाशन किया. 'कम्बन निलयम्' नाम से एक प्रकाशन शुरू किया था. इस प्रकाशन संस्था द्वारा 'तिलक्कुरल' का अंग्रेजी अनुवाद करके १९१६में प्रकाशित किया. एक कहानी संग्रह निकाला जिसका नाम है 'मंगैय्यरक्करस्पियिन काडल' (मंगैय्यरकरसि का प्रेम). इसका पहला संस्करण १९१७ में निकला. दूसरा संस्करण १९२७ में राजाजी की भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ 'कुलत्तंगकरै अरसमरम' (तालाब के किनारे पर का पीपल का वृक्ष) जो तमिल की प्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है.

व. वे. सु. अय्यर प्रथम महायुद्ध के बाद पुदुच्चेरी से मद्रास आये. युद्ध के उपरांत कई राजनैतिक कैदियों को मुक्ति मिली थी. वे भी मुक्त हो 'देश भक्तन' के संपादक के रूप में काम करने लगे. उस समय 'देश भक्तन' में प्रकाशित उनके कुछ लेखकों में राजद्रोह की गंध पा कर सरकार ने उनको फिर कैद कर दिया. 'बेल्लारी' की जेल में उन्होंने अपनी सजा के दिन बिताये. कारावास से छूटते ही उन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की. लौटकर तिरुनेलवेली जिले में ताम्रवणी नदी के सुंदर तट पर 'चेरमादेवी' में उन्होंने अपने गुरुकुल की स्थापना की. यहीं पर उन्होंने 'बाल भारती' नामक साहित्य पत्रिका मुद्रण की.

यदि इस वीर अद्वितीय साहसी पुरुष के जीवन का ऐसा नाटकीय अंत न होता तो तमिलनाडु का भाग्य कुछ और होता. अय्यर अपने विद्यार्थियों को लेकर १९२५ में पापनाशम जल-प्रपात में गये थे. एकाएक अय्यर की इकलौती बेटी झरने के बहाव में बह गयी. बेटी को बचाने हेतु अय्यर प्रवाह में कूद पड़े, निकले नहीं. एक महान व्यक्ति का अंत हो गया और तमिल साहित्य की भारी क्षति हुई.

प्राप्त कहानी लिखी नहीं गयी. १८९९ में ही 'विवेक चिंतामणी' में 'लक्ष्मी' शीर्षक से शिवसाम्बन ने एक कहानी लिखी है. कहानी का कथानक यों है—अंडमान की कैद से भाग आया एक कैदी, बीस साल से बिछुड़ी पत्नी से मिलने आता है. वह सीधा अपना परिचय न देकर ज्योतिषी के छद्मवेष में आता है और पत्नी से कहता है कि उसका बिछुड़ा पति बहुत शीघ्र ही उससे मिलने आ जायगा. बाद में उस दिन के अखबार में जेल से भाग आए उस कैदी का पूरा विवरण पाकर, सब की आंख बचाकर एक निर्जन स्थान पर आत्महत्या कर लेता है. कथानक काफी रोमांचक है. स्वरूप, शिल्प और संयोजना की दृष्टि से यह कलात्मक कहानी है, ऐसा कह सकते हैं. मगर लगता है कि यह 'हार्डी' का छायानुवाद है. अलावा इस कहानी के लेखक का सही विवरण भी हमें नहीं मिल रहा है.

इसके उपरांत कई कहानियां लिखी गयीं. 'विवेक चिंतामणी' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं, फिर भी आलोचना की दृष्टि से चर्चित सबसे प्रथम मौलिक कहानी १९१७ में ही प्रकाशित हुई. इस कहानी के लेखक थे व. वे. सु. अय्यर और कहानी

का नाम है 'कुलत्तंगकरै अरसमरम'. तमिल के प्रथम मौलिक कहानीकार होने का गौरव प्राप्त है श्री वरकनेरी वेंगट सुब्रमणीय अय्यर––व. वे. सु. अय्यर को.

व. वे. सु. अय्यर को अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन लैटिन आदि कई एक विदेशी भाषाओं पर अच्छा पांडित्य था. वे बहुभाषी थे. प्राचीन ग्रीक साहित्य का गहरा परिचय था. तमिल के महाकवि कंबन के बड़े रसिक थे. कंबरामायण और तिरुकुरल का उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद किया है. 'मंगैय्यक्करसियिन कादल' (मंगैय्यरकसि का प्रेम) आदि छह कहानियों को अंग्रेजी शार्ट स्टोरी की स्टाइल में लिखा. ये कहानियां किसी पत्रिका में प्रकाशनार्थ नहीं लिखी गयीं. शार्ट स्टोरी अर्थात कहानी को सुचारु साहित्य का रूप देने के लिए ही लिखी गयीं. अंग्रेजी कहानी कथा को ध्यान में लेकर उसके आदर्श पर अय्यर ने मौलिक कहानियां लिखीं. इस कहानियों का संकलन १९१७ में प्रकाशित हुआ. इसी का दूसरा संस्करण १९२७ में राजाजी की भूमिका के साथ निकला. इन कहानियों में विशेषत: 'कुलत्तंकरै अरसमरम' अय्यर की मौलिक कहानी है. इसके अलावा कहानी कला की दृष्टि से यह उत्तम रचना है.

इस कहानी का प्रयोग नवीन है. एक गांव के तालाब के किनारे पर खड़ा पीपल का वृक्ष अपनी भाषा में कहानी सुनाता है. इस शिल्प में नवीनता है. गांव में रुक्मिणी नामक एक लड़की है. बड़ी सुंदर, सुशील लड़की है. उसकी शादी छुटपन में ही गांव के एक युवक नागराज से हो जाती है. लड़का भी बड़ा सुंदर, नेक और पढ़ा-लिखा है. सास-ससुर भी उससे बड़े प्यार का व्यवहार करते हैं. अचानक लड़की के पिता का सारा धन लुट जाता जाता है कि वे दरिद्र हो जाते हैं. समधिन की यह हालत देखते ही नागराज के मां-बाप का दिल बदल जाता है, अपने बेटे नागराज की दूसरी शादी एक धनी के यहां पक्की कर लेते हैं. नागराज का मन दूसरी शादी करने में नहीं लगता, फिर भी मां-बाप को मजा चखाने के इरादे से वह सहमत हो जाता है. विवाह के मुहूर्त के समय मांग्लमधारण करने से इंकार कर के वह मां-बाप के मुंह पर वह कालिख मलना चाहता था. अपने इस विचार को वह गुप्त रखना चाहता था. इसलिए रात के वक्त तालाब के किनारे रूक्मिणी से भेंट होते वक्त भी इसे प्रकट नहीं करता. रुक्मिणी बेचारी इसे जान नहीं पाती. नागराज शादी करने जा रहा है, यह सोचकर वह आत्महत्या कर लेती है. नागराज अपनी मूर्खता पर पछताता है और संन्यास धारण करके गांव से चला जाता है.

इस कहानी की उन दिनों में विशेष प्रशंसा हुई और आज भी मेरी राय में करुण रस प्रधान यह कहानी उत्कृष्ट है. वरपक्षवालों की दहेज और धन-लालसा ने रुक्मिणी-नागराज जैसे सच्चे प्रेमियों के जीवन को कितना दुखद और अभिशप्त कर दिया, इसे समकालीन भावबोध के साथ चित्रित किया है. आज भी इस समस्या का हल कहां हुआ है? इस कहानी पर अय्यर ने अपनी भूमिका में लिखा है––यह कहानी हमारे गांव के तालाब के किनारे खड़े पीपल के वृक्ष ने सुनायी है. पीपल के वृक्ष ने नन्तूल आदि व्याकरण ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया है. इसलिए उसी की कथित भाषा में (गंवारू भाषा में) लिखा है मैंने. आशा है पाठक इसमें सुसंस्कृत साहित्यिक भाषा की आशा नहीं करेंगे.



एस. शिवपादसुंदरम् का जन्म २७ अगस्त १९१२ को श्रीलंका में हुआ था और वहीं पर उन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की. वे वहीं से प्रकाशित एक तमिल साप्ताहिक 'इल्लाकेसरी' के संपादक थे और बाद में रेडियो सिलोन तथा बी. बी. सी. लंदन से संबद्ध रहे.

इन्हें अपनी तमिल रचनाओं पर मद्रास राज्य सरकार तथा सिलोन सरकार से पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है. आजकल ये आधुनिक तमिल साहित्य का इतिहास लिखने में व्यस्त हैं.

व. वे. सु. अय्यर की कुछ कहानियां ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी काल्पनिक कहानियां हैं. उन्होंने स्वयं लिखा है है: 'मंगैय्यरक्करसियिन कादल' एक हद तक तमिलनाडु की प्राचीन काल की अद्वितीय वीरता, संस्कृति और सभ्यता पर प्रकाश डालती है. 'अकेनलक्के की कहानी' १९१४, १९१५ में महायुद्ध के समय की एक सच्ची घटना पर आधारित है. 'कमल विजयम्' इस युद्ध काल की पृष्ठभूमि पर अंकित काल्पनिक कथा है. एक जगह पर अय्यर ने लिखा है––कहानियों को कवित्व से पूर्ण और रस भावभेदों से युक्त रहना है.

इस कहानी संकलन के दूसरे संस्करण को १९२७ में उनकी भाग्यलक्ष्मी ने प्रकाशित किया है. इसमें अय्यर की दो और कहानियां 'लैला मजनूं' और 'अनारकली' सम्मिलित हैं. इसकी भूमिका में राजाजी ने लिखा है—आशा है व. वे. सु. अय्यर की देशभक्ति और दुर्दमनीय साहस, धैर्य और सत्य प्रेम पर विमुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करने वाला हर कोई उनके कहानी संग्रह को प्रकाशित करनेवाली श्रीमती भाग्यलक्ष्मी अम्याल के प्रति कृतज्ञ होकर उनका उद्देश्य सफल होने में अपना पूरा सहयोग देगा.

व. वे. सु. अय्यर क्रांतिकारी थे. भारत की आजादी के लिए लड़नेवालों में से एक थे. तमिल साहित्य में नवविकास व नवीनता को लाने का श्रेय इनको है. तमिल कहानी के जन्मदाता व. वे. सु. अय्यर कवि भारती के निकटतम मित्र थे. कवि भारती तमिल कविता में विलक्षण नवीनता ले आये तो गल्प के क्षेत्र में व. वे. सु. अय्यर ने नये प्रयोग करके आगे की पीढ़ी का मार्गदर्शन किया. इसमें कोई संदेह नहीं कि व. वे. सु. अय्यर को तमिल साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है. □□□

(अनुवाद : सरस्वती रामनाथ)

प्रथम मौलिक तामिल कहानी

तालाब के तट पर पीपल का वृक्ष

• व. वे. सु. अय्यर

कहने को मैं तो निरा वृक्ष हूं. जड़ हूं. लेकिन अपने दिल की बात सुनाने लगूं तो चौबीस घंटे काफी न होंगे. अब तक मैंने अपनी आंखों से कितनी घटनाएं देखी हैं, कितनी बातें सुनी हैं. आपकी नानी की नानी को घुटनों चलते देखा है. . . हंसिए मत ! एक सौ साल पहले की बात कहता हूं. आप लोगों की दादी, परदादी इसी तालाब के पनघट पर पानी लेने घड़ा ले के आयेंगी. कुछ तो आपने बाल-बच्चों को भी ले के आयेंगी. ओह. . . वे बच्चे. . .कितने सुंदर, कितने प्यारे होंगे ! बच्चों को किनारे पर खेलते छोड़ कर वे अपने सारे कपड़े-लत्ते धो लेंगी, फिर तो हलदी-उबलटन लगा के स्नान करेंगी. उन दिनों में . . .देखा न ! उक्त कोने पर प्रकाल वल्ली का एक पौधा था. अनूठी मोतियों-सी खिली उन कलियों की बहार ! . . . ओह सारा तालाब उन फूलों की सुगंध से महक उठेगा . . . हूं . . .उन दिनों की स्मृतियां कितनी मधुर लगती हैं.

लेकिन . . . अब तो मैं उन दिनों की बीती बातें सुनाना नहीं चाहता. मेरा दिल जब हलका व खुश रहेगा, तब सुनाऊंगा. गत चार-पांच दिनों से मुझे रह-रह कर रुक्मिणी की यादें आती रहती हैं. पंद्रह साल गुजर गये. मगर मुझे लगता है मानो कल की ही बात है. आप लोगों में से किसी ने उसे न देखा होगा, स्वर्ण प्रतिमा-सी लगती थी वह बच्ची. उसका वह हंसता हुआ मुखड़ा याद आते ही लगता है, वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी है. उसके शुभ्र, सुंदर ललाट को देखते आंखें न थकतीं. लंबा कद. कमल के डंठल-सा कोमल हाथ-पांव. नव मल्लिका-सा मृदुल सुडौल शरीर. सारा सौंदर्य मानो उन आंखों में समा गया था. कितनी . . विशाल . .बड़ी-बड़ी स्निग्ध, स्नेहपूर्ण, आंखें थीं वे. उन आंखों को देखते ही नीलोत्पलों से सुशोभित निर्भीक सरोवर की स्मृति आयेगी. सोमवार की अमावस्या के दिन परमात्मा की पूजा करके, मेरी प्रदक्षिणा करती, तब वह स्नेहपूरित दृष्टि से मेरी ओर देखती रहती कि मेरी सूखी शाखाएं भी लहलहा उठतीं. ओह ! मेरी लाड़ली बिटिया रुक्मिणी ! . . . . तुम जैसी बेटी को न जाने कब देख पाऊंगा?

जब बच्ची थी तब से लेकर आखिरी सांस लेने तक वह तालाब पर न आती, ऐसा एक दिन न रहता. नित्य ही मैं उसे देखता रहता. चार-पांच वर्ष की उम्र तक सहेलियों के साथ मेरी ही छाया में खेलती रहती. बच्चों से मुझे बड़ा प्यार है और वह तो रानी बिटिया थी. गांव भर की वह लाड़ली थी. उसे देखते ही मैं अपने को भूल जाता. उस पर थोड़ी-सी भी धूप न लगने देता. वह जरा. . दूर हट के थिरकती रहती तो भी शाखा रूपी हाथ फैलाकर उसे छाया देने के लिए विह्वल हो जाता. भक्तिभाव से अपने प्रियतम सूर्य भगवान का दर्शन लेते ही मुझे रुक्मिणी की याद आ जाती. फिर क्या पलकों का पांवडा बिछा के उसकी राह देखता रहता.

उसके पिता कामेश्वर अय्यर उस वक्त काफी संपन्न दशा में थे. घरबार, धन, दौलत सब कुछ था. बेटी तो उनकी आंखों का तारा थी. फिर क्या कहना, बाजार में कोई भी नयी चीज आये, तो वे अपनी बेटी के लिए लाना न भूलते. हीरे-जवाहरात के आभूषणों से बेटी को लाद दिया था उन्होंने. जब वह दस उम्र की थी 'जोत्रा' के लिए रेशमी घाघ रा और सिल्क की ओढ़नी ले आये थे. 'जोत्रा' के दिन उसके सौंदर्य का क्या कहना! पूनम की रात में, अलंकारभूषिता रुक्मिणी के सुंदर शरीर पर रेशमी का घाघरा और ओढ़नी ने चार चांद लगा दिया था . . .सच कहता हूं. . . मैं आत्म-विस्मृत हो गया था, ओह ! उसके कंठ के बारे में कहना ही भूल गया . . . उसके मधुर कंठध्वनि के समक्ष कोयल आखिर क्या चीज है! सोने के तार-सी लचकती-गमकती आवाज थी उसकी कि सुननेवाले झूम उठते. 'जोत्रा' के दिनों में मैंने उसका गाना सुना है. हां, अब भी उसकी वह मीठी, मधुर, मादक आवाज मेरे कानों में गूंज उठती है.

लड़की बड़ी अच्छी थी. दया व करुणा से भरा हृदय था उसका. हर किसी से प्यार का वर्त्ताव करती. अमीर-गरीब का भेदभाव नहीं उसके मन में. खासकर अभावग्रस्त लोगों के प्रति ही उसे अधिक ममता थी. अंधे, लूले-लंगड़े भिखारियों को देखते ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगता. अधिक क्या कहूं, उसकी याद आते ही, झुलसती घोर गरमी के उपरांत वर्षा की शीतल धारा से प्राप्त आलौकिक आनंद की सरस अनुभूति मिलती है.

ओह! मेरी प्यारी बिटिया. . .की ऐसी दुर्गति क्यों हुई? मुझ भाग्यहीन का सारा मनोरथ मिट्टी में क्यों मिल गया? ब्रह्मदेव अंधा है क्या? ना-ना . . मानव के निर्मम अत्याचार पर भगवान को क्यों दोष दूं?

रुक्मिणी बारह साल की हुई तो उसकी शादी गांव के मणियम (मुखिया) रामस्वामी अय्यर के पुत्र नागराज के साथ हुई. बड़ी धूमधाम से विवाह संपन्न हुआ. सहेलियों के साथ (तोषि पोंगल के दिन), और जुलूस में सर्वालंकार भूषिता रुक्मिणी जब गांव की सड़कों पर आयी, मुझे लगा मेरी दृष्टि ही लग जायेगी सहेलियों

के बीच में आंखों को चौंधिया देनेवाली बिजली की लता-सी...वह दमक रही थी.

कामेश्वर अय्यर ने बेटी को गहने, कपड़े, बरतन-भांडे सब खूब दिया था. रुक्मिणी के सास-ससुर का दिल भर गया. विवाह के बाद उसकी सास अकसर उसे अपने घर पर ले जाती. बड़े प्यार से उसका बाल संवारती, फूलों से सजाती. नाते-रिश्ते के यहां जाते वक्त रुक्मिणी को साथ ले जाना न भूलती. रुक्मिणी का पति नागराज भी सुंदर, सुशील लड़का था. वह मद्रास में पढ़ रहा था. हर किसी के मुंह में यही बात थी... जोड़ी ठीक बैठी है. रूप, सौंदर्य-बुद्धि व धन...सब दृष्टि से एक दूसरे से कम नहीं.

तीन साल गुजर गये. इन तीन सालों में कितना बड़ा हेरफेर हो गया था. कामेश्वर अय्यर की दशा अब शोचनीय हो गयी थी. सुना है आर्थनाट कंपनी में उन्होंने अपनी सारी रकम जमा कर रखी थी. हमारे देशवालों के चार करोड़ रुपयों को उस विलायती कंपनी ने एकाएक डकार लिया...बस...एक ही दिन में लखपति कामेश्वर अय्यर राह के भिखारी बन गये. रुक्मिणी की मां मीनाक्षी के शरीर पर जो कुछ आभरण थे, वही बचे. अपनी पैतृक संपत्ति, घर और जमीन आदि बेच कर ही उनको अपना कर्ज भरना पड़ा. अपना मकान बेच कर, अभी नाले के किनारे पर कुप्पुस्वामी अय्यर रहते हैं न, उसी मकान पर वे आ गये थे. मीनाक्षी भी देखने में महालक्ष्मी-सी लगती. बड़ी शांत स्वभाव की स्त्री थी.

इतनी बड़ी विपत्ति आ गयी, हाय क्या करें, ऐसा वह अकुलायी नहीं. इतने दिन सुख से रहे. भगवान ने इतना सुख-वैभव दिया था, अब उन्हीं ने सब कुछ ले लिया. और क्या? मेरे 'वे' और रुक्मिणी जब तक जीते रहें, मुझे कोई अभाव नहीं, कोई दुख नहीं...पूस महीने में रुक्मिणी का गौना करके ससुराल भेज दें तो फिर हमें क्या चिंता? रूखा-सूखा जो मिले खा के, भगवान के ध्यान में अपना दिन चैन से बिता देंगे... ऐसा कहती रहती रही. लेकिन...बेचारी....भावी को क्या जानती थी?

कामेश्वर अय्यर की सारी संपत्ति लुट गयी, अब कुछ बचने की आशा नहीं, यह जानते ही रामस्वामी अय्यर का सारा स्नेह ठंडा पड़ गया. पहले तो वे अक्सर उनसे मिलने आते, रास्ते में कहीं देखते तो भी दस-पांच मिनट बोलते रहते. लेकिन अब तो कहीं दूर पर उन्हें देखते ही कन्नी काटने लगते जैसे कोई जरूरी काम हो, मुड़कर दूसरी तरफ चले जाते. उनकी पत्नी जानकी ने भी मीनाक्षी से मिलना-जुलना बंद कर दिया. लेकिन मीनाक्षी और कामेश्वर अय्यर ने इसकी परवाह न की. मगर वे लोग रुक्मिणी के प्रति भी विमुखता दिखाने लगे तो वे दोनों बेहद दुखी हो गये. आर्थनाट कंपनी के डूबने के पहले हर शुक्रवार जानकी, रुक्मिणी को ले आने के लिए नौकरानी को भेजना न भूलती. उस दिन बहू को अपने हाथ से साज-संवार कर संध्या को अखिलांडेश्वरी के मंदिर में ले जाती और अगले दिन ही घर भेजती. मगर आर्थनाट कंपनी के डूब जाने की खबर पाते ही उस शुक्रवार को नौकरानी द्वारा उसने खबर भेज दी कि आज घर में बहुत काम है इसलिए अगले शुक्रवार को रुक्मिणी को बुला लूंगी. अगले शुक्रवार न नौकरानी आयी, न कोई खबर. सास के इस व्यवहार पर रुक्मिणी भी दुखी हो गयी.

* *

दिन बीतते रहे. गांव में तरह-तरह की बातें उठती रहीं. सारी गपशप और अफवाहें तालाब के तट पर जोरों से चलतीं. पूरी बातें मेरे कान तक कहां पहुंचती? इधर-उधर से एकाध शब्द सुन लेता...मेरा मन बिल्कुल बेकरार था. लगा—इतनी कानाफूसी और गुप्त बातें अनर्थकारी हैं...मैं आतंकित हो उठा.

आखिर काट-कूट के इधर-उधर की बातें मिला कर देखा तो बात धीरे-धीरे समझ में आने लगी. रामस्वामी अय्यर और जानकी ने अपने बेटे की दूसरी शादी करने का निश्चय कर लिया है. हाय...क्या करूं...मैं एकदम टूट गया. रानी बिटिया रुक्मिणी के जीते जी ऐसा करने का कैसे मन आया उन नराधमों को! हाय री पापिन जानकी! वह बच्ची तुम्हारी जैसी ही एक स्त्री है न? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? उसका मुखड़ा देखते तो पत्थर का हृदय भी पिघल जाता. तुम लोगों का दिल क्या पाषाण से कड़ा है? मेरी ही यह हालत रहे...तो उस मासूम बच्ची व उसके मा-बाप की दशा का क्या कहना?

अब तो केवल नागराज का भरोसा है. वह तो मद्रास में पढ़ रहा था. मार्गशीर्ष महीना आ गया और मैं दिन गिनता रहा...आखिर वह भी आ गया. जिस दिन गांव में आया, उसका चेहरा हमेशा के जैसा प्रफुल्लित था. हंसी-खुशी और मजाक करता रहा. मगर कुछ दिनों में वह बहक गया. लगा...मां-बाप उसका मन बहकाने लग गये. सुनते हैं, पानी के बहते-बहते पत्थर भी घिस जाता है. उसका कसा हुआ चेहरा देखते ही मेरा कलेजा बैठ जाता. मेरी आशा जाती रही. केवल उसी का भरोसा था लेकिन अब तो वह भी...

पूस का महीना आ गया. अब खुलकर बातें होने लगीं. सुना, कोई पूरब की लड़की है. लड़की के पिता के नाम चार लाख संपत्ति है. कोई लड़का नहीं यही एकलौती लड़की, नहीं एक और लड़की भी है. जो भी हो, रामस्वामी अय्यर के परिवार के हिस्से को दो लाख अवश्य आ जाएगा...यह सब बातें मुझे कर्ण-कठोर लगतीं...मगर क्या करता? मेरा वश ही क्या है? सब्र करके सुन लेता.

जब से इस तरह की चर्चाएं उठने लगीं, मीनाक्षी ने दिन में घर से निकलना बंद कर दिया. सूर्योदय के पहले मुंह अंधेरे में ही आ जाती व स्नान करके पानी ले के चली जाती. उसकी सूरत देखते ही मेरे मन में ढेर-सी दया उमड़ आती. खाना-पीना नींद तक हराम हो गयी. इस दुख ने उस के सौंदर्य को मलिन कर दिया. अपना घरबार सोना-चांदी लुट गया, मंगलसूत्र के अलावा

मेरे शरीर पर अब कुछ न रहा . . . ऐसी वह अकुलायी नहीं . . . सोने की चिड़िया-सी बहू के रहते जानकी उस पर तिल भर भी दया न दिखा अपने बेटे की दूसरी शादी का प्रबंध कर रही है न? बस इसी दुख की आग में वह दिनरात जलती रही बेचारी!

बेचारी रुक्मिणी पर क्या बीत रही थी, यह तो मैं नहीं जानता. आखिर मुहूर्त का लग्न निश्चित हो गया. लड़कीवालों ने आकर लग्नपत्रिका दे दी. उस दिन उनके द्वार पर नादस्वर के मंगल बाजे की ध्वनि सुनकर मेरे प्राण कांप उठे. न जाने मीनाक्षी व रुक्मिणी कैसी छटपटाती रहीं.

नागराज की निर्ममता पर मैं आंसू न बहाऊं, ऐसा एक दिन न बीतता. हर क्षण सालता, दुख में तड़पता रहा कि सूखे पर गिरी वर्षा की बूंदों-सी एक खबर आयी कि श्रीनिवास आनेवाला है. श्रीनिवास नागराज का कालेज का साथी है. बीस-तीस मील की दूरी पर उसका गांव है. किसी ने उसे पत्र लिख दिया कि नागराज की दूसरी शादी होनेवाली है. बस तुरंत डाकगाड़ी-सा दौड़ता आ गया. उस दिन शाम को दोनों तालाब के किनारे पर आये. गुप्त रूप से एकांत में दिल खोलकर बातें करना है, तो तालाब का किनारा छोड़ के और जगह कहां है? छूटते ही श्रीनिवास ने पूछ लिया कि जो कुछ मैंने सुना है, वह सब सच है क्या? नागराज बोला—मां-बाप ने बात पक्की कर ली है. अब मेरे कहने से थोड़े ही रुकनेवाली है! सुना है, लड़की बड़ी रूपवती है और उसके पिता ने उसके नाम पर लाख रुपये की संपत्ति लिख रखी है. उनकी मृत्यु के बाद और एक लाख मिलेगा . . . कहो यार! घर आयी लक्ष्मी को क्यों कर दुत्कारें?

यह उत्तर सुनते वक्त श्रीनिवास का चेहरा कितना विवर्ण हो गया था. लगभग आधे घंटे तक वह अपने मित्र को धर्म और न्याय का पक्ष ले कर ऐसी-ऐसी दलीलें पेश करता रहा कि पत्थर का हृदय भी पसीज उठे. बोला—चाहे कितने ही लाख मिलें अग्नि के समक्ष लिए मंत्र-प्रमाण को तिलांजलि दे दोगे? एक मासूम, निर्दोष लड़की के जीवन की बरबादी कर दोगे—ऐसा बहुत कुछ कहा. मैं मन ही मन उसे आशीश देता रहा. अंत में नागराज ने कहा—श्रीनिवास! मैंने केवल तमाशे के लिए ऐसी बातें कहीं . . . क्या मानते हो कि केवल पैसे के लिए मैं इतना नीचतापूर्ण काम काम करूंगा . . . ? मैं तो बात को गुप्त रखना चाहता था लेकिन अब चारा नहीं. बात यहां तक बढ़ गयी तो तुमसे छिपाने से क्या मतलब? लेकिन एक बात है, तुम किसी से न कहना है. ये लोग अपना आर्य संस्कार छोड़कर इतनी नीचता पर उतर गये हैं तो मैं इनके मुंह पर कालिख मलने का निश्चय कर चुका हूं. इसलिए मैं मन्नारकोइल जाता हूं. विवाह की वेदी पर बैठूंगा मगर ऐन वक्त पर मांगल्य धारण करने से इनकार कर दूंगा. अदरख खाये बंदर-सा सब अपना-सा मुंह लिये खड़े रहेंगे . . . और क्या? मित्र तुम मानते हो कि . . . रुक्मिणी के अलावा और किसी का हाथ पकड़ूंगा . . .



लेकिन श्रीनिवास को यह ठीक नहीं जंचा. कहा—तुम मन्नारकोइल चले जाते तो रुक्मिणी और उनके मां-बाप पर क्या बीतेगी, इस पर कभी सोचा है? इस बात पर थोड़ी देर चर्चा करते रहे. मुझे कुछ ठीक सुनाई नहीं दिया. उस दिन रात को मुझे नींद नहीं आयी. अपने को धिक्कारता रहा कि नागराज जैसे सत्पात्र की मैंने कितनी निंदा की. सोचा अब रुक्मिणी को कोई चिंता, कोई अभाव नहीं.

★ ★

शनिवार का दिन है. सारा गांव सो गया. साढ़े नौ बज गया होगा. नागराज अकेले तालाब के किनारे पर आया और नीम के वृक्ष की छाया में बैठा चिंतामग्न हो गया. थोड़ी देर पर दूर से आती हुई एक स्त्री दिखाई पड़ी. वह भी तालाब की ओर ही आ रही थी मगर बार-बार पीछे मुड़कर देखती आ रही थी. आखिर नागराज के पास आ कर खड़ी हुई तो मालूम हुआ कि वह और कोई नहीं रुक्मिणी है. मैं चकित-सा रह गया. आंखें मल कर ध्यान से देखने लगा.

पांच मिनट गुजर गया मगर नागराज का ध्यान उसकी ओर गया ही नहीं. वह तो गहरी चिंता में निमग्न हो गया था. रुक्मिणी भी अचल प्रतिमा-सी खड़ी थी. अचानक उसने सिर उठाया कि सामने रुक्मिणी को पाकर अचकचाकर रह गया. लेकिन तुरंत संभलकर पूछा—रुक्मिणी इतनी रात बीते अकेले यहां . . .

—जहां आप हैं वहां मैं, अकेली कैसी? वह दिन तो अब तक न आया है. इतना कहकर वह मौन हो गयी. दो-तीन मिनट गुजर गये. मगर दोनों न बोले. आखिर वह बोला—इस वक्त हम दोनों को यहां देख कर लोग अनापशनाप बकने लग जाएंगे. आओ, घर चलें. रुक्मिणी बोली—समझ में नहीं आता कि आपसे क्या कहूं? कैसे कहूं? गत तीन महीनों से मुझ पर जो कुछ बीत रहा है, वह देवी अखिलांडेश्वरी ही जानती है. सोचा था, आपके मद्रास से लौटते ही मेरी सारी चिंता दूर हो जाएगी. मामा और मामी चाहे जो कुछ भी करें, आप मेरा साथ न छोड़ेंगे, यही भरोसा था. आप मेरा तिरस्कार कर दें तो मैं किसका सहारा ले के जीऊंगी? मेरा दिल चूर-चूर हो गया है. आप उसे संभालकर न रखें तो बस . . .

कहे देती हूं . . . मेरा निश्चय नहीं. . .इसमें कोई संदेह नहीं, इतना कहते-कहते उसे रोना आ गया. मगर नागराज कुछ न बोला. चुप बैठा था. थोड़ी देर के बाद रुक्मिणी ने पूछा—सुना है, कल बारात रवाना होगी. आप भी जाने वाले हैं?

थोड़ी देर सोचने के बाद नागराज बोला—हां . . . जाने का इरादा है. उसके ये शब्द सुनते ही दुख से रुक्मिणी की छाती फटने लगी. शरीर थरथर कांप उठा. आंखों में पानी उमड़ आया. लेकिन बड़ी मुश्किल से अपने को रोकते हुए उसने कहा—तब तो आपने मेरा तिरस्कार कर दिया?

पर नागराज बोला—तुम्हारा तिरस्कार करता. . . नहीं. कभी नहीं. मगर मां-बाप को तृप्त करना भी मेरा कर्त्तव्य है न? इसीलिए उनकी बात मानकर कल जाता हूं. लेकिन कहे देता हूं, तुम जरा भी चिंता न करना. मैं कभी तुम्हारा तिरस्कार न करूंगा.

रुक्मिणी की सब्र का बांध टूट गया—आप दूसरी शादी कर लें और मैं चिंता न करूं? आप मेरा तिरस्कार न करेंगे मगर मां-बाप की बात रखेंगे. ओह! आगे मेरे कहने को क्या रखा है . . . मेरी अब कोई गति नहीं . . . वह बेचारी हताश हो कर बैठ गयी.

नागराज सोचता रह गया, 'शादी नहीं होगी' इन शब्दों के अलावा और कौन-सी बात है जो उस बेचारी को सांत्वना दे सकती है? लेकिन अभी तो उसे खुलकर कहने को वह तैयार न था. इसलिए बिना कुछ कहे, मौन भाव से अपने दिल में उसके प्रति जो प्रेम व प्यार है, उसे व्यक्त किया. उसके हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर प्रेम से सहलाता रहा जैसे किसी रोती बच्ची को आश्वासन दे रहा हो. बड़े प्यार से उसने पीठ पर हाथ फेरा कि उसके हाथ उसके रूखे केशों में उलझ गये तो हड़बड़ाकर बोला—अरी! तुमने यह क्या कर रखा है? तेरा मुलायम केश . . . कैसे जटा-सा उलझा पड़ा है. . . ओह! तुम्हारी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती. रुक्मिणी! यहां देखो न? तुम्हारा मुंह देख लूं तो सही. हाय! तुम्हारी आंखें कैसी लाल हो गयी हैं! मुख की वह कांति कहां चली गयी? मेरी प्रिये! मुझ पर विश्वास करो. मैं तुम्हें कभी न छोडूंगा. जरा भी न घबराना. हृदयपूर्वक कहता हूं. . . तुम्हारी यह हालत देखकर मेरी छाती फट रही है. सपने में भी न सोचो कि बचपन से लेकर हम दोनों का जो प्यार है, उसे भूल जाऊंगा. . .अच्छा! उठो. . . देर हो गयी न? घर चलें.

रुक्मिणी उठी नहीं. उन्मादिनी-सी बैठी रही. उसे देखते ही नागराज की आंखें भर आयीं. पल भर ख्याल आया कि मन का रहस्य खोल दूं! कह दूं उससे. . .हाय! उसी वक्त कह देता तो कितना अच्छा हुआ होता! लेकिन उस वक्त उसे वह अगले दिन जो चमत्कार दिखाने वाला है, वही सबसे बड़ी व महत्वपूर्ण लग रही थी. रुक्मिणी के कोमल, दुर्बल शरीर को जैसे किसी फूल को सहेज कर उठा रहा हो, धीरे से हाथों में भरकर नागराज ने अपनी छाती से लगा लिया—रुक्मिणी! बोलती क्यों नहीं? कहो न! और क्या चारा है?. . . मैं क्या करूं? उसकी आवाज बड़ी करुणापूर्ण थी. रुक्मिणी ने आंखें उठाकर एक बार उसकी ओर देखा. . .उस दृष्टि में जो कुछ था. . .उसे मैं आपसे कैसे कह पाऊंगा? बात के तेज प्रवाह में असहाय बहनेवाला कहीं दूर पर तैरती लकड़ी को देखकर बड़ी आशा के साथ-साथ हाथ-पांव मारते, डूबते. उतराते उसके पास पहुंचता 'हाय बच गया आखिर. . .' ऐसा मन में आशा बांधता हुआ जब उस पर हाथ लगाता है. . .तो मालूम होता है कि वह लकड़ी नहीं केवल कूड़ा है . . . तब उसकी मनोदशा . . . उसके चेहरे का भाव कैसे होता? वैसी हालत थी रुक्मिणी की थी.

* *

उस मर्माहत दृष्टि में असीम यातना, अपरिमित वेदना, भरी थी. इस पर भी नागराज को मौन खड़ देखकर वह उसके आलिंगन से अपने को छुड़ाती हुई बोली—अब कहने को कुछ नहीं है, मैं मन्नारकोइल न जाऊंगा, ऐसा कहना आप नहीं चाहते. अच्छा यही मेरी नियति है, मेरा प्रारब्ध है. जब आप मुझे इस तरह असहाय छोड़ने को तैयार हो गये, अब मैं किसके लिए किस भरोसे पर जिंदा रहूं! पर मुझे आपसे जरा भी शिकायत नहीं. जानती हूं. . .इस कृत्य पर आपकी सहमति नहीं है. आपका मन ऐसा करने पर सहमत न होगा. लेकिन मेरी विधि—मेरा भाग्य—मेरे मां-बाप के दुर्दिन, आपको ऐसा करने को प्ररित कर रहे हैं. बस, इतना याद रखिए कि रुक्मिणी नामक कोई एक थी जो मुझसे बहुत प्यार करती रही और मरते वक्त भी मेरी ही याद करती रही. रुक्मिणी उसके चरणों में गिरकर, उसका पांव पकड़ कर फफक फफक कर रोने लग गयी.

नागराज ने झट उसे उठाकर कहा— पगली कहीं की! ऐसा-वैसा कुछ न कर बैठना! देखो, बूंदाबूंदी होने लग गयी. . कैसा घटाटोप हो गया. लगता है झड़ी लग जाएगी. आओ, घर चलें. नागराज उसका हाथ पकड़ कर जाने लगा. आकाश पर अब चांद, नक्षत्र कुछ भी दिखाई न पड़ते थे. जहां देखो एकदम अंधकार ही अंधकार है. जैसे कोई बादल पर तलवारों का आघात कर रहा हो, रह-रह कर बिजली की रेखाएं पल भर लपलपाती, भभक उठतीं और अगले क्षण अंधकार और गाढ़ा हो जाता. धरती और आकाश को कंपा देनेवाले गर्जन होते. हवा तूफान-सी चल रही थी. कहीं दूर पर झड़ी लगा कर बरसती वर्षा का शोरगुल आसुरी गति से निकल आता-सा लग रहा था. प्रलय मचायी-सी इस घोर हलचल में रुक्मिणी और नागराज में जो बातें हो रही थीं, उन्हें ठीक तरह से मैं सुन न पाया. वे दोनों तेजी से कदम बढ़ाये जाते दीख पड़े. बिजली की एक चमक में देखा. . . रुक्मिणी घर लौटना नहीं चाहती है मगर नागराज उसे मना करके बरबस लिये जा रहा है. एकाध शब्द चलती हवा में मेरे कानों तक पहुंचे. . . मेरा प्राण न रहेगा. . .मां का दिल तृप्त होगा. . .शुक्रवार सबेरे . . . स्त्रियों का. . .टूट जाएगा. . .ना. . .ना. . .

ऐसा मत कहना. . . जो भाग्य में लिखा है, नहीं मिलेगा न. . . बस. . .कम से कम उस लड़की को सुखी रखना... हृदयपूर्वक अपना आशीर्वाद दे रही हूं. . .ना. . .उस दिन तुमको मालूम होगा कि. . .मेरा अंतिम नमस्कार... तक सब्र करना. . .गरजते बादल और बरसती वर्षा में इतना ही मैं सुन पाया.

अगले दिन पौ फटी. वर्षा थम गयी थी मगर आकाश धुंधला ही रहा. बादलों का घटाटोप अब तक न खुला था. सांत्वना देनेवाला कोई न होने से लगातार बिलखती बच्ची-सी. हवा सिसक रही थी. मेरा मन भी अशांत था. जितना भी अपने आपको संभालने की कोशिश करता रहा, उतना ही मन की बेकरारी बढ़ती जाती. समझ में न आया-कि आज क्यों मेरा मन इतना उदास, इतना बेचैन हो रहा है. दुख क्यों ऐसा उमड़-उमड़ कर आता है, इसका कारण टहोलता ही रहा कि मीना की चीख सुनाई पड़ी—हाय री! यह क्या!. . .कोई साड़ी तैर रही है! झट हड़बड़ाकर उस दिशा की ओर दृष्टि फिरा दी मैंने. अकेले मैं नहीं—तालाब में स्नान करती हर महिला की दृष्टि उस तरफ घूम गयी और वे फुसफुसाने लग गयीं. मेरा दिल धक से रह गया. मां-बाप को रुलाकर रुक्मिणी ने तालाब में डूबकर अपना प्राण दे दिया है. . . .बस. . .मुझे मूर्छा-सी आ गयी.

थोड़ी देर के बाद ही मैं होश में आया तब तक तालाब के आसपास भारी भीड़ लग गयी थी. हर कोई रामस्वामी अय्यर और जानकी को गाली दे रहा था. गांव की सारी शोभा, अपने मां-बाप का प्राण. . .मेरी हंसी-खुशी सब को एक लाथ लुटाके मेरी सोने की बिटिया रुक्मिणी चल बसी. नीचे उसी नवमल्लिका की छाया में उसे लिटाया था. ओह! कितनी बार अपने कमल-से कोमल हाथों से उसने नवमल्लिका की कलियां तोड़ी हैं! उसके मृदु चरणों का स्पर्श न पड़ा हो, ऐसी जगह यहां कहां है! तालाब के आस-पास का ऐसा कौन-सा वृक्ष, कौन-सी लता, पौधा है जिसने उसके स्पर्श का सुख न लिया हो? हाय! मेरा दिल दुर्वह दुख से कलप उठता है. वे सुंदर चरण, कोमल हाथ-पांव; मृदुल शरीर, सब कुछ मुरझा गया है. लेकिन उसके चेहरे का वह गांभीर्य, वह अनूठा सौंदर्य, मात्र वैसे ही उज्ज्वल है. चेहरे पर अब दुख व व्यथा की वह मलिन छाया तक नहीं, उलटे अतिशय विलक्षण. . .असीम शांति है.

इतने में भीड़ में 'नागराज आ रहा है, आ रहा है की हलचल मच गयी. हां. . .वही है. . .बेतहाशा दौड़ा आ रहा है. लो. . .आ गया वह, नवमल्लिका के निकट आते ही न भीड़ का ख्याल किया, न अपने मां-बाप का—रुक्मिणी मेरे प्रिये! यह क्या कर दिया तुमने? ऐसा करुण चीत्कार करता हुआ धड़ाम से गिर गया. भीड़ में एक दम मौन छाया गया. बड़ी देर तक वह उसी हालत में पड़ा रहा. रामस्वामी अय्यर ने घबड़ा कर उसके मुंह पर पानी का छींटा मारा और पंखा किया. आखिर वह होश में आया लेकिन उसने उनसे एक शब्द भी न कहा. रुक्मिणी के निर्जीव शरीर को देखकर बड़बड़ाया—मेरी प्रिये! मेरी सारी आशाओं को मिट्टी में मिला के तुम भी जूलियट-सी उड़ गयीं री! ओह! मुझ अधम के कारण ही तुमने अपना प्राण छोड़ दिया. . .ओह! श्रीनिवास का कथन ही सच निकला! मैं ही हत्यारा हूं. यदि कल तुमसे सच-सच बता दिया होता तो. . . हमारी यह दुर्गति न होती.

—हाय! अब मेरे जीवन में क्या रखा है!. . . रुक्मिणी. . .तुम तो हमेशा के लिए मुझे छोड़ कर चली गयीं. . .अब मुझे सांसारिक जीवन क्यों. . .लो मैं संन्यास लेता हूं. . .ऐसा कहता हुआ किसी के रोकने के पहले उसने धोती और उत्तरीय फाड़ दिया. उसके मां-बाप भौंचक्के-से खड़े थे. उनके कुछ कहने के पहले ही उनके चरणों पर साष्टांग नमस्कार करके कौपीनधारी नागराज तीर-सा वहां से निकल गया.

प्यारे बच्चो. . .यही मेरी बिटिया रुक्मिणी की करुण कथा है. नारी के हृदय को ठेस पहुंचाने की सूझेती तो इस कहानी की याद कर लीजिएगा. कहता हूं. . .सुनो, मेरे बच्चो! खेल-तमाशे के लिए भी नारी का दिल न दुखाइए. □□□

(अनुवाद : सरस्वती रामनाथ)

वर्ग-संघर्ष • धर्मेंद्र चोपड़ा

बस-स्टेशन पहुंचा तो बस चल पड़ी थी. लेकिन रिक्शेवाला चुस्त था. उसने बस भी रुकवा ली और मुझे अटैची सहित अगले दरवाजे से ऊपर भी चढ़ा दिया.

बस में कोई सीट खाली नहीं थी. बहुत से यात्री खड़े थे. मैं भी खड़ा रहा. कंडक्टर ने मेरे चमकदार सूट और टाई को निहार कर मेरा टिकट बनाते कहा—साहब, आप बैठिये नां!

मुझे उसके इस आग्रह से कुछ चिढ़-सी हुई. कुछ रूखे स्वर में बोला—कहां बैठूं?

—जगह अभी हुई जाती है, कह कर वह आगे बढ़ गया.

—उठ रे, चल, पीछे फर्श पर बैठ. यहां कैसा बाबू बना बैठा है! उसने किसी को डांटा.

—हम भी टिकस लिये रहिन. उसने विरोध किया.

—अबे टिकस लिये रहिन, कोट-पतलून तो नहीं सिलाये न ! कंडक्टर ने तर्क किया. चल उठ पीछे चल. आइये बाबू साहब, य्हां बैठिये.

मैंने बैठते समय देखा, एक गंदी धोती, कुरता और फटी पगड़ी वाला किसान अपनी गठरी संभाले पीछे बैठने जा रहा था.

पहले मुझे थोड़ी चिंता हुई. फिर थोड़ा दिमागी हिसाब-किताब करके सोचा—नहीं, यह और कुछ भी हो, कम से कम वर्ग-संघर्ष तो नहीं है. यह सोच कर मैं संतुष्टि से आस-पास के हरे-भरे खेतों और फसलों को देखने लगा.

(चयन और संयोजन : रामगोपाल इगलासिया.)

आहार निद्राभय...

• वल्लभ डोभाल

जाड़े के दिन हैं. प्रायः इन्हीं दिनों गांव के लोग शहरों की तरफ आते हैं . .चंद रोज के लिए. कहते हैं कि आजकल खेती-पाती का काम नहीं है. जिन दिनों खेती पर काम नहीं होता, उन्हीं दिनों कहीं आने-जाने की फुर्सत मिलती है. तफरी के लिए दस-पंद्रह दिन का वक्त काफी है. हवा-पानी बदल हो जाता है. लेकिन हवा-पानी बदल के साथ-साथ ये लोग तो अपनी उस दुनिया को भी बदलने की बात करते हैं—अब गांव रहने के काबिल नहीं रह गये हैं, सब तरह की दिक्कतें वहां भी पैदा हो गयी हैं. खाने-खर्चे की तंगदस्ती बढ़ गयी है. इन लोगों का ख्याल है कि गांव की अपेक्षा अब यही जगह ठीक है. कम से कम राशन-पानी तो वक्त से मिल जाता है.

इन लोगों की यही दुनिया पसंद है. यह भीड़-भाड़ और खाना-पहनना. . .सभी कुछ अच्छा लगता है.

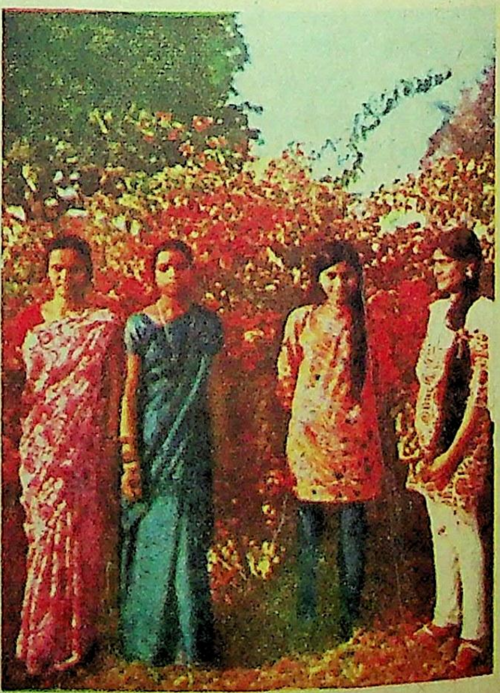
पहाड़ से आये हुए लोग. अपने गांव-घरों के लोग. . . रतन की घरवाली तो पहली बार रजधानी में आयी है. साढ़े तीन वर्ष का बच्चा गोद में है. लंबी उमर वाली सास और गांव के एक दूसरे आदमी को भी साथ लायी है. आसपास के क्वाटरों में इन दिनों खासी भीड़ हो जाती है. सर्दी के दिन हैं. सर्दियों में प्रायः यही होता है. खाने-पीने की तंगदस्ती के साथ सोने की भी. . . छोटे-छोटे कमरे हैं, छोटी रसोइयां हैं. इन छोटे क्वाटरों में दो परिवार सनातन रहते आये हैं. लेकिन शिकायत यही कि खाने-पीने की तंगदस्ती भले हो जाय पर उठने-बैठने के लिए तो खुली जगह चाहिये. सर्दी की ठिठुरती रातें हैं. नींद और दूसरी कई बातें हैं.

तंगदस्ती की बातें फिर-फिर शुरू होती हैं. गांव-वाले अपनी कहानी सुनाते हैं. राजधानी वाले स्पष्ट भले न कहें, तंगदस्ती की झलक उनकी बातों में भी मिलती है. समझ में नहीं आता कि जब दोनों तरफ तंगदस्ती है तो आदमी कहां जाये कोई ऐसी जगह जहां पहुंचने पर तंगदस्ती महसूस न हो.

लोग कहते हैं कि बातों में कुछ है. और नहीं तो बात को बाहर उगलने से मन हल्का जरूर हो जाता है. सुनने से भी मन पर असर पड़ता है. जो लोग कुछ कह नहीं सकते, वे सुनकर ही काम चला रहे हैं. जीवन से जुड़ती हुई हर कथा का श्रीगणेश तंगदस्ती, मंहगाई और अभावों के मंत्रोच्चार से जब शुरू होगा, तभी कोई दूसरा कथानक जम सकता है. कितनी ही बातें सुनकर आदमी हैरत में पड़ जाता है. तब मैं भी इन लोगों से अपनी बात कहना ठीक समझता हूं. इन लोगों से कहता हूं कि यारो! अब जो चीज सामने है, उसके बारे में ज्यादा कुछ नहीं सोचना है. रोजमर्रा जिंदगी के साथ बनी रहनेवाली चीज के बारे में भला क्या सोचना है. तंगदस्तियां तो अनादि काल से रही हैं. गरीबी और तंगदस्ती का नाम ही जीवन है, इसलिए इन बातों को छोड़ो. सोचना उसके लिए है जो कि अपने पास नहीं है. पर नहीं, हम लोगों को तो अपने से बेतरह चिपकी हुई चीजों के बारे में सोचने की आदत पड़ गयी है. सोच-सोचकर अंततः दुख ही हासिल करते हैं. जरा सोचो, तंगदस्ती है तो उसको दोहराने से क्या मिल जायेगा? कभी-कभी उसे भूलना चाहिये. भूलने में सुख है.

कुछ कदर अपने आप को भूलने के लिए ही मैं इन लोगों के बीच बैठता हूं. सोचता हूं, इन्हें जरा जोर देकर समझाऊं. कुछ देर के लिए तंगदस्ती और अभावों की दुनिया में निकाल कर इन्हें गांव की खुली आबादियों तक पहुंचा दूं. लेकिन कहां? वे आबादियां तो इनसे बुरी तरह चिपकी हुई हैं. इनके दिल और दिमाग विस्तार से फैले हुये रेगिस्तान की तरह बन चुके हैं. उस एकांत और अव्यवस्थित फैलाव से ये लोग दुखी हैं, तंग आ चुके हैं इसलिए फैलाव की बात नहीं करते. ये लोग सिमटना चाहते हैं. खुली आबादियों की अपेक्षा यह तंगदस्ती इन्हें ज्यादा पसंद है, रजधानी पसंद है. रजधानी के मुहल्ले-कूचे पसंद हैं. दरारनुमा सिमटी हुई गलियां और गलियों का उबलता हुआ वातावरण पसंद है.

ऐसी तंगदस्ती का भी अपना मजा है. सुबह-शाम जब-तब चाकू-छुरियां तेज करानेवालों की भनभनाती



• के. पी. सक्सेना

आवाज कानों को गर्माती हुई निकल जाती है. गन्ने-गुड़ वाले, मूंगफली, मुरमुरे वाले, रेशम के परांदे, जड़ाऊ हार टिच्च बटन बेचने वालों की लंबी अनुनासिक स्वर-लहरी फिल्मी धुनों को बांटती ही रहती है. रतन की घरवाली को ये धुनें अच्छी लगती हैं, हर चीज को गाकर बेचा जा रहा है. धुन अकेली नहीं है. उसके साथ माल भी है. चूड़ियां, बिंदली हार आदि. हाथ को पिलपिला बना कर चूड़ीवाला कलाइयों में झमाझम चूड़ियां भर जाता है.

बंदरवाला भी गली में आकर क्या कमाल दिखाता है. खेल दिखा चुकने के बाद बंदरिया को सलाम करने के लिए भेजता है. पैसे और आटे के लिए दिन भर घूमता ही रहता है.

जादूगर तो सचमुच जादूगर ही है. उसका जमूरा भी उससे कम चीज नहीं. कमाल यह कि अपनी ही बेटी के पेट में वह छुरा घोंप देता है. लड़की बेहोश होकर गिर पड़ती है. ताजा खून देखकर औरतें चीख उठती हैं. गांव की औरतों ने कब-कब खून देखा है. वे चिल्ला उठती हैं —हा रे . . .क्या कर दिया पापी. . . बिन मांगे ही गांव-घरों से आये हुए लोग चवन्नी-अठन्नी निकाल कर फेंक देते हैं. कटोरा भर आटा लाकर उसकी झोली में डाल देते हैं.

—पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है बेटा! पेट बुरी चीज है. लंबी उम्रवाली बुढ़िया लोगों से कहती है. याऽऽ. . . हम लोग भी गांव में क्या करते हैं! सुबह से लेकर शाम तक हड्डियों का चूरा हो जाता है, फिर भी खाने को भरपेट नहीं मिलता.

खाने-पीने की बात जब कभी चलती है तो साधूराम सबको हड़का देता है. आदमी को सिरफ खाने के लिए थोड़े ही बनाया है? खाने के अलावा दूसरी भी कई बातें हैं.

इस वक्त साधूराम होता तो अपना असलोक सुना कर मजमा बांध देता —अहार निद्रा भय मैथुनं च. . . यानि ये बातें आदमी और पशु में एक बराबर हैं. लेकिन धरम-करम ही एक ऐसी चीज हैं जो आदमी को पशु से अलग करती है और फिर धरम की बात करते-करते वह कहीं से कहीं पहुंच जाता है.

—वा रे साधुरामा! तूने भी धरम के नाम पर खूब जमा रखी है. साथ वाले बिसनसिंह की उससे पट जाती है. कहता तो वह साधूराम को चिढ़ाने के लिए है, पर बात सच्ची करता है. फिर भी सच-झूठ का पता किसे चलता है? पता चलाने की जरूरत क्यों पड़ी है? जिसे जरूरत है, वह अखबार पढ़ ले. अखबार सबके घरों में आते हैं, रेडियो भी लगे हैं. अखबार-रेडियो जो कहते हैं, वही सच है. लेकिन उस सच को सुनने की फुर्सत किसे है.

साधुराम जब कभी आकर बैठता है तो अखबार भी पढ़ा जाता है. रेडियो भी तब बज जाता है. 'विविध भारती लगाओ' 'कश्मीर लगाओ' 'सिरनगर लगाओ'. एक ही चोट में सब लगा दो. तब कहीं न कहीं लगा ही रहता है. जब लगाने वाला कोई घर में नहीं तब बिसन की घरवाली ही मरोड़-तरोड़ करती रहती है. बरामदे में दोनों टांगे फैलाकर बैठी लक्ष्मी धूप सेंकती है. सर्दी के दिनों में धूप अमरित के बराबर है. धूप में बैठ कर साधुराम को ग्यान-ध्यान याद आता है. बड़ा ही गियानी आदमी है. शिव-तांडव की अमरित धुन तो उसके कंठ में बस गयी है. हर वक्त गाता रहता है—स्मरच्छिदम. . .पुरच्छिदम्. . .

ठाकुरों को धूपबत्ती दिखा चुकने के बाद जब उसका दरवाजा खुलता है तो सुगंधित धूप की बासना गली में दूर-दूर तक फैलती है. धूप-बत्ती और सुगंध बासना में गली से लेकर दफ्तर तक की विघनबाधाओं को दूर करने की शक्ति है.

'बिशे बिकार मिटाओ, पाप हरो देवा. . .सरधा भक्ति बढ़ाओ. . .' पक्ति को उच्चरित करता हुआ जब वह सूरज को अरघ चढ़ाने के लिए बरामदे में आता है तो पड़ोस में रहनेवाली मोटी औरत की नाक सिकुड़ जाती है—बड़ा गियानी बणेंता है मरज्जाणें. . .धकच्चिकम् धकच्चिकम्. . .लगा ही रहता है और करम देखो तो.

मोटा आदमी भी किस काम का है!.. साधूराम का हकना है कि मुफ्त में बैठ कर खानेवाले आदमी को ही मुटापा मारता है. दिन भर खाना-सोना और. . . इन लोगों के पास दूसरे काम ही क्या है.

* *

वह समय था जब साधूराम अपने बरामदे में बराबर चारपाई डालकर इस मोटी औरत से बात करता था. देख कर इस तरफ से आने जाने वाले यही समझते थे कि पति-पत्नी दोनों बैठे हैं. लेकिन अब जाने क्या हुआ कि सामने बैठने की हिम्मत नहीं पड़ती . पडोस की एक यही औरत है जिससे साधूराम डर जाता है. जाने क्यों. मोटी औरत को उसके धकच्चिकम् से घृणा है, इसलिए अब वह बरामदे में नहीं है कमरे में बैठकर 'प्रेमसागर' के पन्ने वही पलटता रहता. उसके क्वार्टर में अब नये किरायेदार आ गये हैं. इन लोगों को साल में कभी दस बार भी जगह बदलनी पड़ती है. क्वार्टर मालिक लोग कम से कम छः महीने का एडवांस किराया लेते हैं. फिर ज्यादा बच्चे हुए तो मुश्किल से जगह मिलती है. मकान मालिक इसी में खुश रहते हैं कि किरायेदार के बच्चे न हों. लेकिन यहां तो रोक लगाने पर भी किरायेदारों के बच्चों ने पंगत लगा दी है.

अस्सी रुपया एक कमरे का देकर पति-पत्नी दोनों रह रहे हैं. खाना भी वहीं बनता है, मेहमान सगा-संबंधी आता है तो वह भी वहीं टिकता है. परदा करने की भी गुंजाइश नहीं.

—परदा डालकर क्या करोगे भई? कभी-कभी मौका मिलने पर साधुराम की उनसे बातचीत हो जाती है. परदे से कौन-सी बात छिप जायेगी भाईजान!

आज जब कि इस देस की लाज सब तरफ से उघड़ रही है तो एक तुम्हारे ही परदा डालने से क्या बन जायेगा.

साधूराम की बातें सुनकर किराये दार सकपका जाते हैं. कैसा आदमी है? गली के लोग चाहते हैं कि यह आदमी यहां से हटे. यह आदमी जनता के बीच बैठने के काबिल नहीं है. लोग तो चाहते हैं, पर साधूराम तो तभी हटेगा जब सरकार उसे हटायेगी. जब उसकी नौकरी के दिन पूरे होंगे. नौकरी जब तक है, तब तक तो वह अमरित ही पीता रहेगा.

—अमरित राज सम्मानम्. . . अपने मुंह से वह गिनाता है कि कौन-कौन-सी चीजें अमरित तुल्य हैं. सर्दियों के दिन हो. सरकारी मकान हो और बरामदे में तेज धूप सेंकी जा रही हो तो वह भी अमरित के बराबर है. नौकरी एक तरह का राज-सम्मान ही है. काम-धाम चाहे कुछ नहीं, पर पहली तारीख को जब पैसा हथेली पर आता है तो वह अमरित की तरह लगता है.

साधूराम की बातों में सबको मजा आता है. लंबी उमर वाली बुढ़िया तो साधूराम को उठने नहीं देती—बेटा, कुछ ज्ञान-ध्यान की बात सुना जाया कर, कुछ देस-काल की बात. . .

तब लछमी भी दरवाजे की आड़ में बैठती है. दिन में बरामदे का फर्श तपकर गरम हो जाता है, इसलिए रात की सारी ठंडक और सिकुड़न फर्श पर लंबी टांगें फैलाने से दूर होती है. अब टांगों में जैसे जान आ गयी है और तब वहीं बैठे-बैठे वह बिसन की घरवाली को आवाज देती है — दिदी, जरा सुना दे न! कैसा-कैसा गाता है तुम्हारा टरांजिस्.

बिसन की घरवाली चूल्हा छोड़ उठ खड़ी होती है. चड़ाक् से! जैसे कि बच्चे का कान मरोड़ दिया हो. ट्रांजिस्टर पतली आवाज में चीख उठता है — चिकन ऽ. . चिकन ऽ . . चिकना,

कमल के फूल जैसा, बदन तेरा. . .

वा ऽ! कई दिन से इस गीत को लछमी बराबर सुन रही है, यह गीत उसके तन-मन को गुदगुदा देता है. भीतर ही भीतर अमरित जैसा कुछ पैदा हो रहा है. शरीर के हर अंग से यह अमरित फूटकर बाहर आने को है. कल भी जब बिसन घर आया तो यही गाना बज रहा था. बिसन की घरवाली को उसके टैम-बे-टैम घर आने का पता रहता है. सरकारी नौकरियां तो जिंदगी भर साथ रहेंगी. लेकिन घरवाली का साथ हमेशा कहां मिलता है.

लछमी जब भी अपने आदमी से दिन में घर आने को कहती है तो वह हर बार यही कहता है कि मैं सरकारी नौकर नहीं हूं. सरकार और पराइवेट में यही फर्क है कि पराइवेट को सिर्फ रात की छूट है और सरकारी लोगों को चौबीसों घंटे की. फिर अपनी-अपनी नौकरियां हैं. अपने-अपने रसूक हैं. अपनी सरकार है, यानी हम लोग ही सरकार हैं. अच्छाई-बुराई जो कुछ है, वह हमारे-तुम्हारे ही अंदर है. पर नहीं, गांव के लोग तो समझते हैं कि सरकार हम-तुम से अलग कोई दूसरी चीज है. जिसने गांव के इतने सारे लोगों को नौकरियों में खपा रखा है.

हाय! लछमी तो सरम के मारे सिकुड़ जाती है. कल बिसन के घर आते ही वह बरामदे से उठ गयी. उसके चले जाने का दुख मन ही मन बिसन को हुआ. वह समझ गया था कि गाना सुनने के लिए ही लछमी यहां आकर बैठती है. गांव के सीधे-सादे लोग . . . गांव का जीवन है. पहले तो काम से ही फुर्सत नहीं मिलती. तिस पर भी खाने को भरपेट नहीं. फिर यदि मन में कोई इच्छा जनम लेती है तो साथ ही कई तरह की बातें हैं. सरम सब तरफ से खा जाती है. भय और आशंकाएं ऐसी कि कोई इच्छा मन में टिक ही नहीं पाती. सोचकर बिसन ने आवाज को एकदम ऊंचा उठा दिया. दीवारों को झनकारती हुई आवाज दूर तक जाती है, . . चिकन ऽ चिकन ऽ चिकना — कमल के फूल जैसा. . .

अब लछमी अपनी रसोई में बैठकर ही सारा कुछ सुनती है. गाना खत्म होते ही वह सोचने लगती है — यहां तो दिनरात चिकना-चिकना. . . ही रहता है. गांव में भी अब रेडियो टरांजिस् पहुंच गये हैं. पिछले साल सम्मू दो टरांजिस् ले आया था. सारे गांव वालो को बारी-बारी सुनाया . कैसे-कैसे गाने. . च्छि : !

* *

साधुराम ही ठीक कहता है, दुनिया में सरम नाम की कोई चीज नहीं रह गयी है. सोचती है लछमी – यहां तो चिकना-चिकना खप सकता है, लेकिन गांव में कहां है चिकना-चिकना? वहां तो जिंदगी भर लोगों के हाथ-पांव फटे ही नजर आते हैं. तब-बदन के साथ मन और आत्मा भी फटी-फटी है. लछमी अपने हाथों की तरफ देखती है. इन हाथों का खुरदरापन अभी तक दूर नहीं हो सका. हाथ अगर किसी चिकनी जगह पहुंचते हैं तो लगता है जैसे आरियां चल गयी हैं. सोचती है लछमी. . . चिकना- चिकना तो नहीं, पर यह गाना तो सब जगह पहुंच गया होगा. लछमी को कभी धोखा हो जाता है. दरार में घूमने वाले लोग भी उसी तर्ज में अपनी चीजें बेचते हुए निकल जाते हैं. रेडियो में विविध भारती वाले भी वैसा ही बोलते हैं. गली या आसपास में जब कभी भगवती जागरण होता है तो भजनों की तर्ज भी चिकना. . चिकना की तर्ज पर जमती है. उसकी समझ में नहीं आता कि यह चिकना. . चिकना आखिर है क्या चीज. . ? कौन लोग हैं जो ऐसी तर्जें बनाते हैं?

देखने से भी मन की भूख हटती है. इसी भूख को हटाने के लिए लोग फुर्सत के मौके पर शहरों की तरफ आते हैं. पिछले दिनों ये ही लोग 'विविध भारती' दफ्तर देखने गये. उनकी बातें सुनकर लछमी की भी इच्छा हुई. अपने आदमी से जब उसने फरमाइश की तो वह बोला कि इ ी दूर जाने की क्या जरूरत है. अपनी यह गली ही विविध भारती है. यहां भी तरह-तरह के लोग विराजमान हैं. हर जाति के, हर धरम के लोग. छोटे-बड़े सभी तरह के लोग. . . रतन ठीक कहता है कि देश के हर हिस्से से आकर लोगों ने राजधानी के हर गली-कूचे को

विविध भारती बना दिया है. इन लोगों ने सरकारी क्वाटरों में ही अपने काम चालू कर दिये हैं. किसी ने मुर्गियां पाल रखी हैं तो कोई बकरी और सुअर रखने लगा है. कुत्ते-बिल्ले रखना तो आम हो गया है. तीतर-बटेर और तोते पालने का शौक भी बुरा नहीं. विविध प्रकार के पशुपक्षी और नाना प्रकार के शौक ये लोग रखते हैं. गली में तकरीबन हर आदमी के पास रेडियो-ट्रांजिस्टर हैं. अपने-अपने रेडियो की ऊंची आवाज में जब एक साथ अनेक भाषाओं के लोकगीत और धुनें मुखरित होती हैं तो वहां 'विविध भारती' बन जाता है. तब कानों में कोई चीज साफ नहीं आती. आवाजें मिल-कर ब्रह्मांड में बैठ जाती हैं. बाहर गली में गन्ना-गुड़ बेचने वालों, चारपाई बुनने वालों और जूते गांठने वालों की संगीतात्मक आवाजें उभर कर गूंजती हैं जो कि विविध भारती में विज्ञापन कार्यक्रम को पेश करती हुई लगती हैं. दिन भर यही कार्यक्रम चलता है. चलता ही रहता है. सुबह से शाम तक धुआंधार काले इंजन की तरह तेजी से दौड़ने वाली कोई चीज शरीर के भीतर दौड़ती रहती है. यही दौड़-धाप जीवन को पस्त किये है. लंबी उम्रवाली बुढ़िया जब-तब यही कहती है--बेटा! इस पापी पेट के लिए क्या नहीं करना पड़ता. सब पेट की खातिर हो रहा है.

बुढ़िया तो सिर्फ पेट की ही बात कहती है पर दूसरे लोग कहते हैं कि पेट ही सब कुछ नहीं है. भोजन के साथ नींद भी जरूरी है. नींद न आये तो खाना हजम नहीं होता.

इन लोगों को रात में नींद भी खूब आती है, भूख भी लगती है. आहार, निद्रा आदमी के लिए जरूरी चीजें हैं. लेकिन ये चीजें आसानी से कहां मिलती हैं? खाने-पीने को यदि मिल भी जाता है तो जगह की तंगी के कारण रात में घुटने बांध कर रह जाना पड़ता है. सर्दियों के दिन . . अच्छा होता कि ये लोग राजधानी घूमने का अपना समय बदल देते. अच्छा होता ये बच्चे भी ससुरे पैदा न होते. इस तंगदस्ती में बच्चों का क्या काम? सरकार भी कितनी निर्दय हो गयी है. नौकरी देती है, खाना-कपड़ा सभी कुछ देती है, पर यह नहीं सोचती कि कड़ाके की सर्दी के दिनों में इतनी तंग जगह किस काम की है. इस तरह की तंगियां ही झगड़े की बुनियाद खड़ी करती हैं. रोज ही सुबह-शाम गली में चख-चख बनी रहती है.

अमरित जहर में बदल जाता है. गली में जब चख-चख ज्यादा बढ़ जाती है, तब वह आदमी भी अपने कोने से गालियां फेंकना शुरू करता है--स्साले. . .कुत्तों की औलाद. खूब खा-पी रहे हैं. हाय-तौबा फिर भी मचा रखी है. यह नहीं सोचते कि आज जो मिल रहा है, उसे चुपके से खा लें. कल का देखा जायेगा. लेकिन कहां का कल. . इन लोगों को तो जमा कर रखने की आदत पड़ गयी है. कल के लिए जमा कर रखो, स्साले जानते नहीं कि कल किसका हुआ है. कल की चिंता में स्सालों ने आज को भी लूटा दिया है, परेशानियां पैदा कर रखी हैं.

अपनी औरत से यह आदमी प्रायः कहता है कि जितने दिन आराम से निकल जांय, उतना ही अच्छा. अब चिंता किसी बात की नहीं करनी है. चिंता करने का वक्त निकल गया है. लेकिन औरत भी क्या चीज है. उसके मन में धीरज कभी टिक सका है? साधूराम ठीक कहता है कि सारे झगड़ों की जड़ औरत है--स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः सोचते हुए वह कभी ठिठक जाता है. इस ज्ञान को बघार कर वह घरवाली को नाराज नहीं करना है, चाहता. उसकी नाराजी बहुत कुछ कर सकती और नहीं तो आहार, निद्रा भय . . . आदि से वंचित तो कर ही सकती है. वह सोचने लगा -- ऐसा ज्ञान-ध्यान भी किस काम का है जो आदमी को एकदम निसकाम कर दे, औरत से भी परे कर दे.

सोचते हुए वह धीरे से अपने बरामदे के नुक्कड़ पर बैठ जाता है. गली में चख-चख बदस्तूर चल रही है. ऐसी चख-चख में भी बिसन की घरवाली रेडियो को ऊंचा छोड़ देती है और तब वही गाना सब जगह गूंजता है -- चिकन ऽ चिकन ऽ चिकना - कमल के फूल जैसा!

□□□

६३६, अलीगंज, लोदी कालोनी,
नयी दिल्ली - ३

नटखट बालिका

मैंने केवल इतना कहा--सायंकाल जब पूर्ण चंद्रमा कदंब वृक्ष की डालियों के बीच में फंस जाता है तो क्या कोई उसे पकड़ नहीं सकता?

किंतु दादा मुझ पर हंसने लगे और बोले--बच्ची, तुम्हारी जैसी मूर्ख लड़की मैंने आज तक नहीं देखा. चंद्रमा हमसे इतनी दूर है तो उसे कोई पकड़ कैसे सकता है?

मैंने कहा--दादा, वास्तव में मूर्ख आप हैं! जब मां खिड़की में से मुसकराती हुई बाहर झांकती है और हमें खेलते हुए देखती है, तब हम उसे दूर कहेंगे?

फिर भी दादा ने कहा--तुम नटखट लड़की हो! किंतु यह तो बताओ चंद्रमा को पकड़ने के लिए इतना बड़ा जाल तुम्हें कहां मिलेगा?

मैंने कहा--आप निश्चय ही उसे अपने हाथों से पकड़ सकते हैं!

किंतु दादा हंस कर बोले--तुमसे बढ़कर मूर्ख मैंने आज तक नहीं देखा. पास आने पर तुम देख पाओगी कि वह कितना बड़ा है.

मैंने कहा--दादा, यही व्यर्थ की बातें आपको स्कूल में सिखाई जाती हैं! जब मां हमारा चुंबन लेने के लिए अपना चेहरा नीचे को झुकाती है तो क्या वह बड़ा लगता है?

फिर भी दादा कहते ही रहे--तुम नटखट लड़की हो. □□□

(रवींद्रनाथ ठाकुर की एक लघुकथा का अनुवाद)

डरेवर साहेब

• रवींद्र राजहंस

होठ के पीछे चुटकी से खैनी चुनियाते हुए लखन महतो ने कहा— रामबिरिछ!

—क्या?

—रामबिरिछ! ऐ रामबिरिछ!

—साला खाली नाम पुकारता है. कुछ बोलता क्यों नहीं?

—रिक्शा हाकने वाले को लोग डरेवर साहेब क्यों नहीं कहते?

—चूंकि रिक्शा वाला घोड़ा के गिनती में आता है.

—ऐसा काहे, भाई?

—चूंकि दूनो ज्यादातर सत्तू खाता है, घास-पात चबाता है.

—चोप्प, झुट्ठा कहीं का. रोज रात में नगेसर के होटल में दाल-भात-मछरी खाता है आउर बोलता है वो सत्तू खाता है. लछमिनियां जब पंखा हांक के खिलाती है तो तीन-तीन पलेट खींच जाता है.

—उ खाना भी कोई खाना है. उ त नाद में का सानी-पानी है. इंजन का कोयला-पानी. खाना तो खाता है टैक्सी-ट्रक डरेवर. कलिया रोटी खा के, इंग्लिश दारू पी के जब ट्रक डरेवर रात में चलता है तो फिर देखने ही लायक होता है.

फिर लखन गुनगुनाने लगता है, पहले धीरे-धीरे, फिर बाद में जोर-जोर से, 'परबहु आस हमार, ए भोला बाबा. . . . पुरवहु आस हमार.

—कौन-सी आस?

—अगले जनम में डरेवर साहेब बनने की आस.

—दुत! डरेवर कौन ऐसी चीज है, जिसके लिए भोला बाबा से प्रार्थना करता है.

—चीज कैसे नहीं है. हम तो अगले जन्म में डरेवर होना चाहेंगे— दो नंबर वाले ट्रक या टैक्सी के डरेवर. लाख-लाख रुपयों का सामान लाद कर पंजाब मेल की तरह गाड़ी हांकेंगे. सुनते हैं ऐसे डरेवर से पुलिस वाले भी डरते हैं. एक बार जरनैल सिंह नाम के एक पंजाबी डरेवर को हम रिक्सा पर बैठाये तो अपने साथ बैठे एक दोस्त को अपने लेन की बातें बता रहा था.

—तुमको उसका नाम कैसे मालूम हो गया.

—कोई-कोई पसिंजर सब बात में अपना नाम ले के बोलता है. उ बोलता था जे कि आज तक जरनैल सिंह की बांह कोई भेन. . . सिपाही नहीं पकड़ सका. हर चौकी पर वह शान से, हाथ निकाल कर, नोट का पुलिंदा रोकने वाले को थमा देता है. फिर चौकी का बांस उठा कर उसकी सलामी ठोंकता है, और वह भर. . . कर के वह अपना गाड़ी बढ़ा देता है. और एक ठो हम लोग हैं. जहाजघाट पर लेन में रिक्शा खड़ा करने के लिए भी पुलिस को दस-बीस पैसा सुंघाते रहते हैं. ऊपर से जब-तब हंटर भी खाते हैं. "मामा" को जब मन आता है ठुस-ठुस हवा निकाल देता है हमारी गाड़ी की ट्यूब से.

—लखना, इतना पसंद है तुम्हें का डरेवर होना?

—क्यों नहीं. ट्रक का डरेवर बरखा-बुन्नी में तनिक नहीं भींगता है. और, हम लोग! पसिंजर को पर्दा से झांप कर चलते हैं और खुद बाहर भींगते रहते हैं. पसिंजर साले दुल्हा-कनिया जैसे अंदर बैठते हैं, मजा मारते हैं और हम को वहीं से वे लात से खोदते हैं. कहते हैं— जरा तेज चलाओ, जरा तेज चलाओ. घर पहुंचा देने पर, अक्सर रेट से कम भाड़ा मिलता है.

—भाग साला! तुम्हारे दिमाग पर ट्रक-टैक्सी के डरेवर का भूत है. डरेवर, डरेवर, घड़ी से डरेवर. . .

—नहीं रामबिरिछ! तुम उसका महातम समझो या न समझो, मगर है उ एगो भारी चीज. इसीलिए उसके नाम के साथ साहेब जोड़ना पड़ता है.

—साहेब जोड़ने से क्या होता है. साहेब तो कभी-कभी लोग दूसरों को चूतिया बनाने के लिए भी कह देते हैं जैसे मास्टर साहेब. अब तुम्हीं बताओ गरीब मास्टर कौन बात का साहेब है?

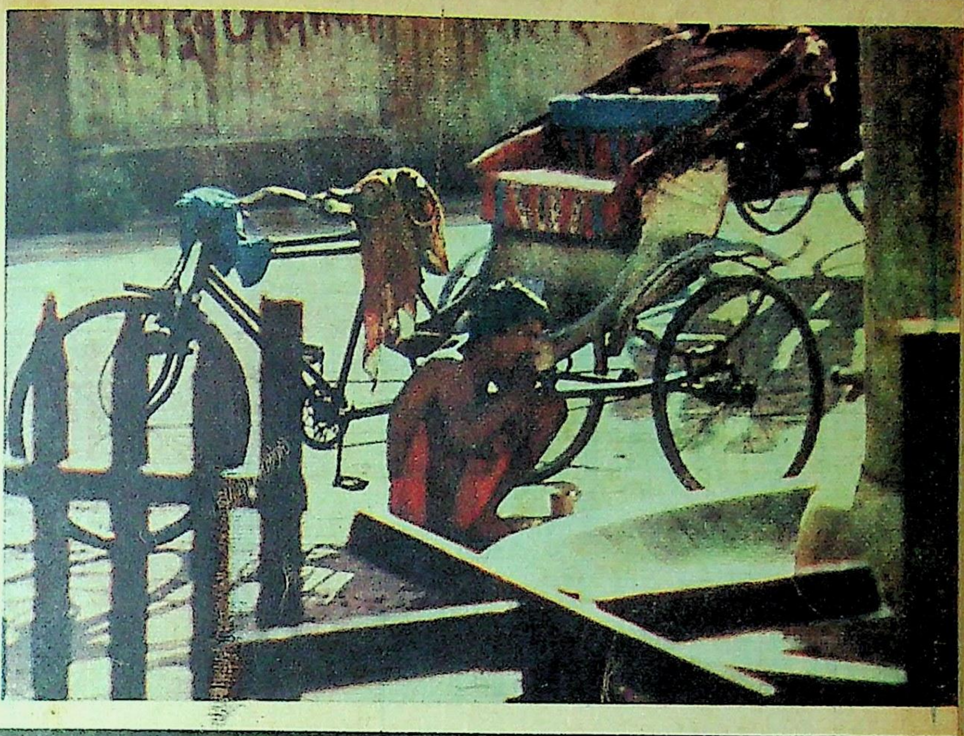
—छोड़ो भाई माट साहब की बात. हम तो डरेवर साहेब बनेंगे, डरेवर साहेब. डरेवर साहेब से रिक्शा-वाला का क्या मुकाबला. आज तक कभी देखा है रामबिरिछ, खून वाले किसी बैंक में किसी ट्रक-टैक्सी डरेवर को अपना खून बेंचते हुए.

—ना, देखा तो मैंने सचमुच नहीं है.

—रामबिरिछ!



रवींद्र राजहंस एक कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं. उनका कहना है कि मेहनतकश लोगों की रोटी कोई और न हड़पे तथा वे आदमी की तरह जी सकें इसलिए हिंदी में लिखता हूं. इन्हें व्यंग्य-लेखन के प्रति आस्था है. अधिकतर व्यंग्य कविताएं लिखी हैं. यह इनकी पहली कहानी है.



• एस. के. उपाध्याय

—अब क्या है रे?

—नींद नहीं आती .

—मालूम है अब तू कहेगा— बहुत मच्छर काटता है, नाली के बगल में सोयेगा तो मच्छर काटेंगे ही.

—रामबिरिछ, इतना बड़ा शहर है. हजारों रिक्शा चढ़ने वाले हैं. फिर किसीको यह चिंता क्यों नहीं सताती कि साला रिक्शा वाला कहां सोता है.

—जो तुम्हारे लिए फिक्र करते हैं, वे रिक्शा पर नहीं चढ़ते.

—रामबिरिछ? हमको एक दिन मुंह धो के कुल्ला करते समय मुंह से खून आ गया था. डर के मारे डागडर से नहीं दिखवाया. जानता हूं बीमारी की "मुंह दिखायी' सोलह रुपये लग जायेंगे. फिर सब तरह की जरूरी-गैरजरूरी जांच करवानी पड़ेगी. उसका फेरा हम खूब जानते हैं. फोटूवाले डागडर साब के पास तो हम खुद ही मरीज बझा कर ले जाते हैं.

—तो किसी एक्सारा वाला डागडर बाबू से कह-सुन कर छाती का फोटू क्यों नहीं करा लेता?

—रामबिरिछ, फोटूवाला डागडर से हम कभी नहीं मिला है. उसका कंपोडर हमको पहचानता है. पैसा-कौड़ी का हिसाब वही करता है.

—उससे एक बार कह के तो देखो. . .

—उससे एक बार मैंने कहा था. मगर उ बोला—देख भाई, मरीज बझा कर के सही में तुम देते हो मगर उसकी जगह पर तो हम तुम्हें कमीशन देते ही हैं. अपने आप को दिखाना है तो वह बात और है. हां, ऐसे तुमको हम दो-चार रुपये कम करवा देंगे. अब तुम ही बोलो रामबिरिछ, हम तो कनसेसन रेट पर भी अपना इलाज नहीं करवा सकते.

—लखना रे, अब तो सो जा. गरीब का तो सबसे बड़ा दोस्त होता है उसकी वह बीमारी जो जल्दी उसे इस दुनिया से छुट्टी दिला दे.

—रामबिरिछ, हम तो जीना चाहते हैं. चार गो बाल-बच्चा है उसको कौन देखेगा.

—कुत्तों के मरने के बाद उसके बच्चे को कौन देखता है?

—तो क्या हम कुत्ते हैं ?

—और नहीं तो क्या. हम सभी कुत्ते हैं.

—तो रामबिरिछ, तो हम भेटनरी अस्पताल में जा कर भरती हो जायं ?

—अबे, जानता है भेटनरी अस्पताल में का डागडर किन लोगों का इलाज करता है ?

—हां, हां, घोड़ों का, बैलों का, भैंसों का—— जानवरों का. तुम्हीं ने तो कहा कि हम सब साले कुत्ते हैं. तुम कभी बोलते हो कि रिक्शेवाले घोड़े होते हैं और कभी बोलते हो कि रिक्शेवाले कुत्ते होते हैं.

—उ तो साला मैंने गुस्से में कहा था.

—गुस्से में बोले थे या फुस्से में, मगर बोले थे सच.

—लखना, दिमाग मत चाट. सो जा. कल खूब सुबह में गाड़ी निकालनी है. बड़े मैदान में अंटीफासिस्ट का मिटिन होने वाला है. खूब सवारी मिलेगी.

—रामबिरिछ, इ अंटीफासिस्ट कौन चीज है? कौन उ अच्छा चीज लगता है!

—चुप साला! हम इतना अंगरेजी समझते तो रिक्शा ही हांकते. □□□

कचहरिया कोठी रामकृष्ण एवेन्यू, पटना ८०००४


पैरों में
मोच?




IODEX
IODINE OINTMENT
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273

विद्यालय • शंकर पुणतांबेकर

अध्यक्ष ने राधाकृष्णजी को बुला भेजा जो उनके विद्यालय के अध्यापक थे. कहा—शिकायत मिली है कि तुम हमारे बच्चे को मारते हो.

—बात यह है श्रीमान, राधाकृष्णजी ने कहा, वह पढ़ाई में बहुत कमजोर है. जब वह गलती करता है तो थोड़ा-बहुत मारना भी पड़ता है.

इस पर अध्यक्ष ने कहा— हमने तुमको क्या कहा था? जब हमारा बच्चा गलती करे तो तुम उसके बगलवाले बच्चे को मारो. इससे डरकर वह आगे गलती नहीं करेगा. . .

—जी, कहा था.

—यही बात तुमको डाक्टर साहब ने, वकील साहब ने, सेठ बनवारीलाल ने और डिप्टी साहब ने भी कही थी. तुम बिलकुल भूल गये और उनके बच्चों को भी तुम मारते हो.

—श्रीमान, यह तो अन्याय है कि गलती आप बड़े लोगों के बच्चे करें और बदले में बेचारे गरीबों के निर्दोष बच्चे पीटे जायें.

लेकिन अध्यक्ष को उनकी यह बात धृष्टतापूर्ण लगी. क्रुद्ध होकर बोले—न्याय-अन्याय की बात करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है. हम तुम्हें जो भी आदेश दें, उसका तुम्हें बराबर पालन करना होगा. जानते हो, हमारा आदेश विद्यालय की व्यवस्था-कमेटी के अध्यक्ष का आदेश है?

राधाकृष्णजी इस पर कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि अध्यक्ष आगे बोले— और तुम जानते हो डाक्टर साहब, वकील साहब, सेठ साहब और डिप्टी साहब, ये सभी व्यवस्था-कमेटी के सदस्य हैं. इनके बच्चों पर भी तुम हाथ नहीं उठाओगे.

अब तक राधाकृष्णजी का मुंह तमतमा उठा था. बोले— क्या आपकी संस्था का नियम है कि व्यवस्था-कमेटी के सदस्यों के बालकों को पीटा न जाये? बदले में निर्दोष बच्चे पिटें?

—मैं कहता हूं, यह मेरा आदेश है.

—यह आदेश नियमबाह्य है.

—इस आदेश को नियम में भी बदल सकता हूं.

—आपके हाथ में डंडा है, आप कुछ भी कर सकते हैं. लेकिन मैं अन्याय की बात कभी नहीं अपनाऊंगा.

दूसरे दिन राधाकृष्णजी को नौकरी से निष्कासित किये जाने के आदेश की सूचना मिली.

राधाकृष्णजी के स्थान पर अब रामप्रसादजी की नियुक्ति हो गयी. अध्यक्ष को इस बात का संतोष था कि रामप्रसाद उनके आदेशों का पालन करेंगे. वे बड़ों के बच्चों की गलती पर छोटों के बच्चों को मारते. . . और डटकर मारते. छोटों के बच्चों को इसमें अन्याय लगा. आखिर एक दिन उनमें से नेकराम नामक बच्चे ने अध्यापकजी से कहा— अध्यापकजी आप दूसरे बच्चों की गलती पर हमे क्यों मारते हैं?

—अपने पेट की खातिर बेटे.

—मैं समझा नहीं अध्यापकजी.

—नहीं समझोगे. अभी तुम छोटे हो, रामप्रसादजी ने कहा, जब बड़े हो जाओगे, आप समझ जाओगे. और बेटे देखो, यह तो परोपकार की बात है कि दूसरों के कष्ट स्वयं झेलो. फिर इनकी वे भूल कभी नहीं करोगे जिनके लिए तुम मार खाते हो. इस तरह तुम दुनिया के अच्छे आदमी बनोगे और अच्छे आदमी ही दुनिया में बड़े बनते हैं. और यह भी सोचो बच्चों, इस विद्यालय में ये हैं इसलिए यह विद्यालय भी है.

यह सुनकर नेकराम चुपचाप अपनी जगह बैठ गया. बड़ों के बच्चों के बदले में गरीबों के बच्चे पिटते रहे और वे एक दिन सचमुच दुनिया के अच्छे मनुष्य बन गये.

अब इस स्कूल में नेकराम अध्यापक है. एक दिन वर्ग में आते ही वह दीवार से अध्यक्ष की फोटो को उतारकर उसके स्थान पर नया फोटो टांगता है. यह नया फोटो अध्यक्ष के बेटे का था जो अपने पिता के बाद इस संस्था का अध्यक्ष बना था. और आज उन बड़ों के बच्चों के बच्चे इस विद्यालय में पढ़ रहे थे. नेकराम ने फोटो टांगने के बाद बच्चों से कहा—इसको प्रणाम करो.

बच्चे उठे और प्रणाम किया. हां, इनमें बड़ों के बच्चे नहीं उठे और न ही उन्होंने प्रणाम किया.

—क्यों, तुमने प्रणाम क्यों नहीं किया, नेकराम ने उन बच्चों से पूछा.

बच्चे कुछ नहीं बोले.

—ठीक है, तुम इस तरह नहीं मानोगे. जब तक तुम्हें भय न बैठे, तुम ऐसे ही बैठे रहोगे.

और इतना कह नेकराम आगे बढ़ा और उनके बगल में बैठे बच्चों को एक-एक तमाचा जड़ दिया. अपनी जगह लौटकर आया नहीं कि चमाचा खाये एक बालक ने उठकर कहा— आप दूसरों की गलती पर हमे क्यों मारते हैं?

सुनकर नेकराम एकदम चौंका. उस बालक की ओर कुछ देर अपलक देखने के बाद बोला— अपने पेट की खातिर बेटे.

—मैं समझा नहीं अध्यापकजी.

—जब बड़े हो जाओगे, आप समझ जाओगे और बेटे देखो, इनकी गलती पर यदि तुम लोग मार खाते भी हो तो परोपकार की बात है. फिर इनकी वे भूलें कभी नहीं करोगे जिनके लिए तुम मार खाते हो. इस तरह तुम दुनिया के अच्छे मनुष्य बनोगे. और अच्छे आदमी ही दुनिया में बड़े बनते हैं. और यह भी सोचो बच्चों, इस विद्यालय में ये हैं, इसलिए यह विद्यालय भी है.

इतना कह नेकराम ने पुस्तक खोली और बच्चों को पढ़ाने में लग गया. □□□

(चयन एवं संयोजन : बीरेंद्र जायसवाल)

सिद्धार्थ का लौटना

• जितेंद्र भाटिया

उसकी सातवें माले की बालकनी से समुद्र दिखायी देता था. नीले पानी का दूर तक फैला विस्तार, जिसके इस ओर लाल पलाश के पेड़ों की कतारें थीं. सुर्ख फूलों से लदे वे लहलहाते पेड़ अकसर उसे रिझाते और न जाने कितनी बार वह भावुकता के आवेग में फैसला करता कि यह सब छोड़-छाड़ कर किसी दिन वह भाग जायेगा—गंगा के किनारे की उस स्वप्निल वादी में पनाह लेने, जहां ठंडी हवा की महक में बसी एक छोटी-सी, साफ-सुथरी जिंदगी बरसों से उसके इंतज़ार में पलकें बिछाये बैठी होगी.

अपने कॉलेज के दिनों से ही उसने उस दृश्य को अपनी कल्पना के इर्द-गिर्द फैले हुए देखा था और अब भी उस खयाली गांव की खयाली जिंदगी किसी प्रेम-प्रसंग की यादों की तरह उसके दिमाग में रह-रह कर ताजा हो जाती थी. एक छोटा-सा कॉटेज, उसके सामने पोखर में बिछे कमल के फूल, सीधे-सादे, अबोध बच्चों-से गांव वाले, चौपाल पर गुड़गुड़ाते हुक्के के स्वर और हवा में यहां से वहां तक फैली शांति—अपार शांति. लेकिन यह सब उसकी कल्पनाओं का संसार था, जिसमें किसी की दिलचस्पी नहीं थी. उसकी बीवी की भी नहीं, जो सिर्फ डरी-डरी आंखें लिये उसकी तमाम बातें सुनती थी और फिर उठ कर दूसरे कमरे में पेशेंस के पत्ते बांटने चली जाती थी. दरअसल उसका अकेलापन इन तमाम बरसों में काफी क्रॉनिक बनता चला गया था, जिसे देख कर कोई सहानुभूति जतलाने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था. और ज्यादातर लोगों को तो उसका यह अलगाव दिखायी ही नहीं देता था. साल-छह महीनों के फासले पर उसके मां-बाप या माई-बहन उससे मिलने उसके पास आते और उसकी 'सुखी' जिंदगी पर संतोष भरी नजरें डाल कर चले जाते.

लेकिन असलियत यह थी कि फांसी का एक सख्त फंदा धीरे-धीरे उसे अपनी गिरफ्त में कसता जा रहा था...

★ ★

आदमी आखिर जिंदगी से क्या चाहता है, या फिर जिंदगी आदमी से क्या चाहती है? वह खाली लम्हों में अकसर अपने आपसे पूछता. लेकिन उसे कभी कोई जवाब नहीं मिलता. उसने सुन रखा था कि महत्वाकांक्षा बहुत खतरनाक चीज होती है. हर मोड़ पर उसने इस खतरे से अपने आपको बचाना चाहा था, लेकिन तरक्की की हर सीढ़ी पर उसके दिमाग में बसे उस छोटे-से गांव की कशिश लगातार बढ़ती चली गयी थी.

यूं देखा जाये तो शिकायत करने जैसा क्या था?—यू हव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव! उसके बॉस ने उसकी मंथली रिपोर्ट देख कर कहा था और वह सुन कर एक फीकी हंसी हंस दिया था. प्रशंसा उसे भीतर तक दहला देती थी. आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव!—उसने घर लौट कर अपने टाइपराइटर पर टाइप किया था. लेकिन न चाहते हुए भी टाइप किये हुए उसके शब्द एक अंतहीन कविता का रूप धरते चले गये थे—

आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव
आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल
आई हैव ऑल दि क्वालिटीज
आई हैव ऑल
आई हैव
आई
.....

उसके बाद क्या था? ... धंटा! उसके दिमाग में फिटर कुलकर्णी का वह प्रिय शब्द किसी धमाके की तरह गूंज गया था ...

★ ★

—माई-बाप, मैं एक स्कूल-टीचर बनना चाहता था, पर मेरे असली बाप ने मुझे अफसर बना दिया! उसके खयाली नाटक की यह पहली दलील थी. और इसके साथ ही उसके दिमाग में उभरने लगते थे, भाप के फुंफकारते बॉयलर, फर्नेस ऑयल का धुआं उगलती भट्ठियां, जलते हुए कार्बन के चमकते, सुर्ख टुकड़े, और उदासी—चुप, बेआवाज उदासी. देखना, एक-न-एक दिन मैं जरूर भाग जाऊंगा! ...हर रोज अपने केबिन की कुर्सी पर बैठे-बैठे वह किसी गुरुमंत्र की तरह दोहराता और फिर बहुत बेमन से ओवरहेड पेमेंट्स के बिल साइन करने में जुट जाता. बस, यही कुल मिला कर उसकी जिंदगी थी. उम्मीदों से भरी, लेकिन फिर भी पस्त और जकड़ी हुई. किसी कलफ लगे कॉलर की तरह सख्त और बार-बार चुभने वाली...

★ ★

एसोसिएटेड कार्बन प्राइवेट लिमिटेड में नौकरी करते हुए उसे पांच साल हुए थे. इन पांच सालों में घुटन और धुएं में बर्बाद हुई सुबहों और शामों का हिसाब लगाने अगर वह बैठता, तो शायद पागल हो जाता. लेकिन उसके दोस्त बताते थे कि इस छोटे-से अरसे में उसकी तरक्की का ग्राफ हैरतअंगेज था.—योर्स हैज बीन ए मीटियॉरिक राइज! उनका प्रिय वाक्य

था. उसके सहयोगियों में बहुत-से ऐसे भी थे, जो उसे ईर्ष्या भरी नजरों से देखते थे. क्लर्कों के साथ उसे राउंड पर जाता देख कर कभी-कभी कोई व्यंग्य भी कस देता कि देखो, कंपनी का अगला पर्सनल मैनेजर जा रहा है! इस तरह की छींटाकशी को निगल पाना उसके लिए बहुत मुश्किल होता था. एक बार क्लब में दो-चार पेग पी कर नशे की हालत में उसने अपने एक दोस्त को अपनी तकलीफ समझानी चाही थी तो वह बड़ी तटस्थता से बोला था—जॉब सैटिस्फैक्शन नहीं है, तो दूसरी नौकरी ढूढ़ लो. और क्या! लेकिन 'जॉब सैटिस्फैक्शन' की असली परिभाषा क्या थी? इनकम टैक्स और पी. एफ. कटने के बाद हर महीने उसके बैंक में जमा हो जाने वाले वे ढाई हजार रुपये, जिनके बूते पर उसकी बीवी महीने में दो बार ताज हेल्थ क्लब जाती थी? या फिर दफ्तर से कार में लौटते हुए सोसायटी के गेट पर गोरखे का वह नपा-तुला सलाम, जो हरशाम उसे बिला नागा मिलता था? क्या थी आखिर संतोष की परिभाषा? और फिर इस बात का क्या यकीन था कि एक नौकरी दूसरी नौकरी से अधिक जानलेवा नहीं होने वाली थी . . . ?

अपनी इस सारी दिमागी कशमकश का हल उसे उस सुदूर गांव में दिखायी देता था, जहां घास के सपाट मैदान और इमली के दरख्त किसी सम्मोहन की तरह बिछे हुए थे. लेकिन उसकी पत्नी उसकी इस सनक को बर्दाश्त नहीं कर पाती थी.—यू ऐंड योर क्रेजी आइडियाज! अकसर झुंझलाते हुए वह उसे डांटती. तुम्हें तो गौतम बुद्ध या किसी साधु-संन्यासी के आश्रम में पैदा होना चाहिए था! . . .

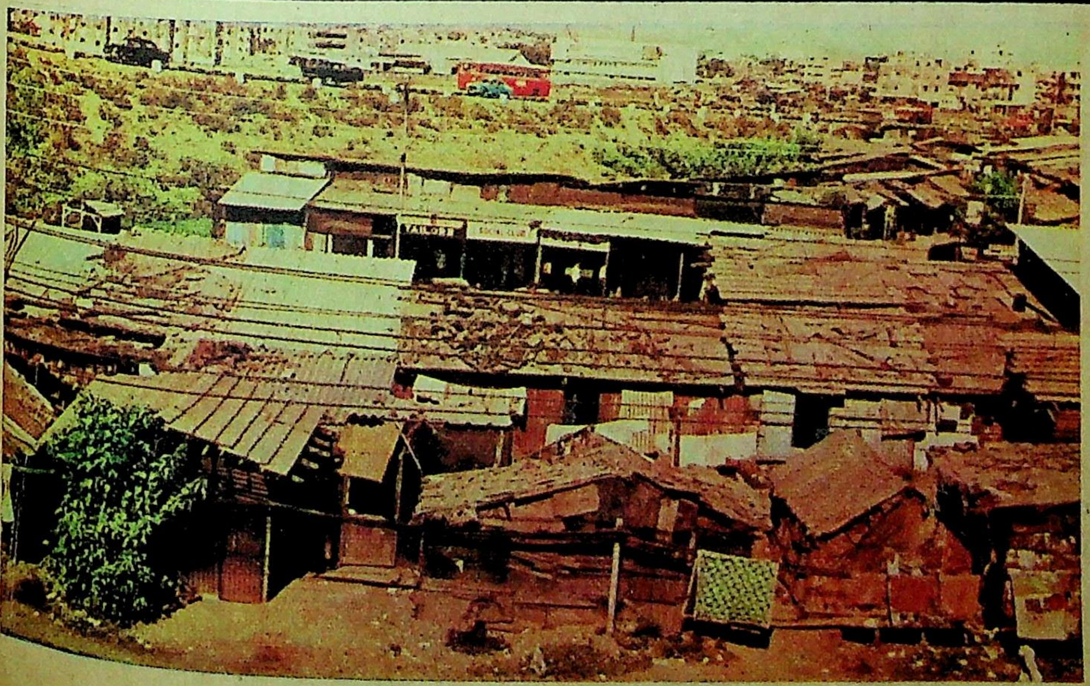
लेकिन दुर्भाग्य से उसका जन्म एक कुलीन परिवार में हो गया था. उसके पिता एक रिटायर्ड अफसर थे और इस कंपनी का एम. डी. उनका पुराना दोस्त था. शायद इसी वजह से उसे एम. ए. करने के तुरंत बाद इस कंपनी में नौकरी मिल गयी थी, हालांकि तब उसकी हैसियत एक छोटे-मोटे क्लर्क से अधिक नहीं थी. यूं भी साहित्य में एम. ए. करने के बाद कालिख बनाने वाली उस कंपनी में नौकरी करने की कोई खास तुक नहीं थी, पर उसने सिर्फ इस उम्मीद पर यह नौकरी मंजूर कर ली थी कि कहीं टीचरी मिलते ही वह सलाम ठोक कर बाहर निकल आयेगा.

. . . लेकिन टीचरी नहीं मिली थी और वह अटका रह गया था—पहले कैंटीन की सख्त टेबलों पर देशपांडे और मल्ला और कुलकर्णी के साथ 'कांदा भजिया' और चटनी खाता, और बाद में साहबों के साथ पिल्सनर बियर के मग हाथ में ले कर 'चीयर्स' करने का स्वांग रचता . . .

उफ! उन साले ढोंगियों की वह नपी-तुली, मेड-इन-कंबाला-हिल हंसी! वह अकसर वितृष्णा से सराबोर हो उठता . . . उस हंसी के मुकाबले कुलकर्णी और इम्तियाज के वे ठहाके कितने जीवंत थे, जिनसे उसका परिचय कैंटीन की उन टेबलों पर पांच साल पहले हुआ था! . . . उस हंसी ने जैसे उसकी सारी जिंदगी का नक्शा बदल दिया था . . .

गुजरा हुआ वह वक्त अकसर उसे कचोटता और तकलीफ देता था. धुएं और धूल भरी उस जिंदगी से लड़ने की ताकत उसे उसी वक्त से मिली थी . . . फैक्टरी के प्लांट की हदों में माचिस या लाइटर्स जलाना मना था और वह उन तमाम लोगों के साथ सिगरेट के कश खींचने की फिराक में बाथरूमों की कतारों के पीछे छिपता फिरता था . . . वे सब ऑपरेटर मिल कर उसका मजाक बनाते थे कि उसे फर्नेस

• शीला इं५



ऑयल की भट्टियों को अंग्रेजी सिखाने के लिए नौकरी पर रखा गया है. उसकी अंग्रेजी साहित्य की डिग्री सारी फैक्टरी में एक चलता-फिरता चुटकुला बन गयी थी और वह स्वयं भी बहुत सहजता के साथ इस मजाक में शरीक हो लेता था . . . लेकिन मजाक की भी अपनी हदें तय थीं और जनरल शिफ्ट खत्म होने के बाद वह खासे मास्टराना अंदाज में कुलकर्णी और उसके साथियों को अंग्रेजी सिखाया करता था. बदले में देशपांडे ने उसे बैग फिल्टर ऑपरेट करने का तरीका समझाना शुरू किया था कि साले सीख ले, क्लर्की चली गयी, तो ऑपरेटर की नौकरी तो मिल जायेगी . . . पेचकसों, पाइप पानों और स्क्रू पानों की वह दुनिया धीरे-धीरे उसे अपनी चपेट में लेती चली गयी थी. कभी-कभी रात में देर हो जाने पर तमाम दोस्तों के साथ वह पाली खत्म होने तक रुकता और फिर उन्हीं के साथ नजदीक के अड्डे पर 'बेवड़ा' मारने भी चल देता. ऑगस्टीन का वह छोटा-सा अड्डा इतनी रात गये भी फैक्टरियों से छूटे मजदूरों से भरा रहता था और जगह पाने के लिए इंतजार करना पड़ता था . . .

देसी दारू का वह तीखा, तल्ख स्वाद अब भी कभी-कभी उसे याद आता था, हालांकि अब उसका कोई फायदा नहीं था. बीवर्स क्लब की संभ्रांत टेबलों पर सिर्फ व्हिस्की या जिन टॉनिक सर्व की जाती थी, जिसे पूरे मुंह में तहजीब के साथ घुमा कर निगलना जरूरी होता था. . . . महीने के महीने इनामदार साहब के टैरेस पर कॉकटेल पार्टियां होती थीं, जिनमें आधे से ज्यादा पुरुष अपनी कमीजें उतार कर नाचने लगते थे और औरतें अपनी लोकट मैक्सीज में फाहशपन की हद तक उतर आती थीं . . . मिस्टर बिंदरा के घर कट थ्रोट या तीन पत्ती के लंबे सेशन होते थे, जिनमें चार-चार हजार तनख्वाह पाने वाले मैनेजर रात के तीसरे पहर में दो-दो रुपयों के लिए जानवरों की तरह झगड़ते थे . . . और एम. जी. की हर विदेश-यात्रा से पहले सांताक्रूज एयरपोर्ट के लाउंच में जमा होने वाली मैनजरों की वह वफादार कतार, जिसके एक कोने में अपनी पत्नी को ढाल बना कर खड़े-खड़े वह अभिवादन में जुड़े अपने दोनों हाथों में एक अजीब-सा शर्मनाक खिंचाव महसूस करने लगता था. लेकिन फिर भी होठों की मुसकराहट थी कि उतरने का नाम ही नहीं लेती थी, जैसे किसी ने उसे कील से वहां ठोक दिया हो. . . . अपनी मोटी खाल पर कभी-कभी उसे स्वयं बहुत आश्चर्य होता था, लेकिन वह हमेशा यह सोच कर अपने आपको बहलाता रहता था कि एक-न एक दिन वह सचमुच सबको चकमा दे कर भाग जायेगा और फिर कोई भी उसे वापस बुला नहीं पायेगा . . .

* *

——क्या तुम मुझसे प्यार करती हो? कभी-कभी वह अपनी पत्नी से पूछता. उसकी पत्नी उत्तर में अपने चेहरे पर एक बहुत सहज-सा भाव ओढ़ लेती.

——सच-सच बताना, क्या तुम मुझसे प्यार करती हो? वह जिद्दी बच्चों की तरह अपना सवाल दोहराता.

——हां बाबा, करती हूं! उसकी पत्नी कुछ खीज कर उत्तर देती.

——सच? वह कुछ अविश्वास भरी नजरों से पत्नी की ओर देखने लगता. फिर अपने सवाल को वह दूसरे ढंग से रख देता.——अच्छा, अगर मैं ए. पी. एम. होने की जगह गांव की पाठशाला में अध्यापक होता, तब भी क्या तुम मुझसे इसी तरह प्यार करतीं?

——तब? उसकी पत्नी की आंखों में शरारत चमकने लगती. तब तो डैडी तुमसे मेरी शादी ही नहीं करते! . . . .

पत्नी की खिलखिलाहट से सारा कमरा भर जाता, लेकिन वह उदास आंखें लिये खामोशी से खिड़की के बाहर देखने लगता. यह सच था कि उस सारे सिलसिले में पत्नी का कोई दोष नहीं था. वह एक वर्ग विशेष से आयी थी और उसकी पूरी जिंदगी में कहीं कोई विरोधाभास नहीं था. उसकी जरूरतें भी बहुत साफ और समझ में आने वाली थीं. दरअसल अगर उस घर में कोई उलझा हुआ व्यक्ति था तो वह स्वयं, जो एकाएक बदबूदार, पथरीली टेबलों से उठ कर बीवर्स क्लब के डाइनिंग हॉल में चला आया था और जिसका मन अब भी किसी तीसरी ही दुनिया में आम और नीम के दरख्तों के बीच लगातार किसी बैताल की तरह भटक रहा था. . . .

* *

उसका अधिकांश कॉलेज-जीवन होस्टल में गुजरा था. शायद यहीं से उसकी जिंदगी मां-बाप और दोस्तों के शब्दों में 'गलत' हो गयी थी. होस्टल में उसके इर्द-गिर्द रहने वाले दोस्तों का घेरा किसी भी लिहाज से संभ्रांत नहीं था. कमरों में फटी हुई लुंगियां या जींस पहने वे सब बैठे-बैठे बीड़ियां सुलगाते थे और ढाबे में जो कुछ अंट-संट मिलता था, खा लेते थे. पढ़ाई से बचने वाले वक्त में या तो वे पैदल लंबी 'हाइक' पर निकल जाते थे, या फिर कमरों में लेटे-अधलेटे किसी अमूर्त-से सवाल पर बहस करते रहते थे. इस अस्त-व्यस्त जिंदगी का वह इस कदर आदी हो गया था कि छुट्टियों में घर जाने पर उसे निपट अकेलापन महसूस होता था. कई बार तो वह छुट्टियां खत्म होने से पहले ही वापस होस्टल लौट जाता.

पढ़ाई पूरी होने के बाद उसने दो-तीन महीने यूं ही बंबई की गर्दिश में गुजारे थे और फिर अंत में वहां एक किराये का कमरा ले लिया था. उन्हीं दिनों घर से उसके पिता का पत्र आया था कि फलां कंपनी का एम. डी. उनका दोस्त है और अगर वह जा कर उनसे मिले तो वह उसके लिए नौकरी का कुछ-न कुछ इंतजाम जरूर कर देंगे. वह पांच-सात दिनों तक रूखेपन से इस बात को टालता रहा था, फिर एक दिन अनिश्चय की उस जिंदगी से तंग आ कर उसने एम. डी. से मिलने का फैसला कर लिया था. एम. डी. ने उसे बहुत प्यार के साथ अपने कमरे में बिठाया था, उसके पिता की सेहत के समाचार पूछे थे और फिर चेहरे

पर मुसकराहट उभार कर उसके हाथों में अपाएंटमेंट लेटर थमा दिया था—इट्स ए मॉडेस्ट जॉब! बट यू विल राइज इफ यू वर्क हार्ड. गुड लक!

और वह अपने पिता की प्रभावशीलता पर ताज्जुब करता एम. डी. के एयर-कंडीशंड कमरे से बाहर निकल आया था. बाहर एम. डी. का पी. ए. हाथ में कागज लिये, उसे काम समझाने के लिए, तैयार खड़ा था. . .

★ ★

—सला, तुम हैंडल मार के इदर आयेला हय, तबी ये हमाली काय को करता हय? कुलकर्णी उसे शाम के वक्त ऑफिस में देख कर काम करते देखता और चिल्लाता—तुमको बड़ा साब काय के वास्ते नई बनाया?

—हैंडल थोड़ा-सा छोटा पड़ गया होगा! वह हंसता और पिछले साल की ऐक्टिविटीज का सिनॉप्सिस बनाने में जुट जाता. लेकिन मशीन की तरह काम में जुटे रहने के बावजूद उस माहौल में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था. . .

कॉलेज के दिनों में एक बार अपने दोस्तों के साथ वह इंदौर के नजदीक के एक छोटे-से गांव में गया था. वहां गुजरे चार दिनों में उसने पेड़ों की छांह में सुस्ताने, रहट पर ताजा गन्ने का रस पीने और खेत से मूलियां तोड़ कर खाने के सिवा कुछ नहीं किया था. पर वे चार दिन उसकी स्मृति में हमेशा के लिए एक सपना बन कर अंकित हो गये थे.— यार कुलकर्णी, यह साली धुएं की जिंदगी अपने बस की नहीं है! वह खाली ऑफिस में टेबल पर पैर रख कर सुस्ताते हुए कुलकर्णी को बताता. . . . मेरा तो मन होता है कि सब कुछ फेंक-फांक कर गांव में खेती शुरू करूं या फिर खुली हवा में पेड़ के नीचे बच्चों का एक छोटा-सा स्कूल बनाऊं. . . .

—सला, तुम तो पिक्चर का डायलाग बोलता हय! गांव में जाने का था तो ये कार्बन मिल में मगजमारी करने काय को आया? कुलकर्णी आश्चर्य से उसके चेहरे की ओर देखता और फिर उसके दराज में से खाली लिफाफे चुराने में व्यस्त हो जाता. वह स्वयं भी सब कुछ भूल कर काम में अपने आपको खपा देने की भरसक कोशिश करता, मगर परछाइयां उसका पीछा नहीं छोड़ती थीं. . . . खासतौर पर नौकरी करने के बाद से वह कॉलेज के उन बेफिक्र दिनों को बार-बार याद करने लगा था. लेकिन अब पीछे के सारे इतिहास पर नजर डालते हुए वह खुद अपने आपको भी बहुत अविश्वास भरी नजरों से देखने लगता था, जैसे वह स्वयं भी किसी दिन यूं ही उस सारी संभ्रांत साजिश का शिकार हो जायेगा.

★ ★

—एई चोपड़ी माष्टर! तुम सच्ची अपना यूनियन का मेंबर बना? देशपांडे और कुलकर्णी ने एक बार उसकी यूनियन की पर्ची को देख कर पूछा था.

—क्या करने का! वह सेक्रेटरी इम्तियाज की ओर आंख मार कर झूठी लाचारी में मुसकराया था. ये सला सेक्रेटरी लोक किदर छोड़ता हय! मेंबर नईं बनेगा तो ये लोक का सूट-पैंट, दारू-पानी का खर्चा किदर से आयेंगा? बोलो?. . . .

—यू सला इंग्लिश लिट्रेचर ब्लाडी. . . ! इम्तियाज पाइप पाना हाथ में ले कर उसकी तरफ दौड़ा था और देशपांडे, कुलकर्णी खड़े-खड़े हंसने लगे थे.

यूनियन के छोटे-मोटे काम को ले कर इम्तियाज उसके पास मदद के लिए आने लगा था. साल के अंत में जमा की जाने वाली सालाना रिपोर्ट, कंपनी को दिये जाने वाले औपचारिक प्रोटेस्ट नोट, या लेबर ऑफिसर के नाम डिमांड्स का पेटीशन, सब की रूप-रेखा वही बनाने लगा था, क्योंकि उसकी अंग्रेजी अच्छी थी और वह लोगों के साथ सलीके से बात भी कर सकता था. एक बार कंपनी के किसी कर्मचारी को जब दो दिन का सस्पेंशन नोटिस मिला था, तो पर्सनल मैनेजर से बात करने के लिए इम्तियाज उसे अपने साथ ले गया था. पर्सनल मैनेजर ने उसे वहां देख कर अपनी त्यौरियां खींची थीं और उसकी ओर सख्त नजरें डालते हुए बोले थे—यू शुड नॉट बी कमिंग हीयर लाइक दिस! इस बात का असली मतलब वह तब समझा था, जब अगले ही दिन एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुलाया था. कुछ चिढ़ी हुई-सी आवाज में उन्होंने उसे यूनियन की गतिविधियों से अलग रहने की सलाह दी थी.—यू आर नॉट वन ऑफ देम! गुस्से में अपनी मुट्ठियां भींचते हुए वह बोले थे. ऐंड आई डोंट वांट यू टू बी आइदर. . . . ! अगर यही सब करना है, तो इसके लिए दूसरी जगहें हैं, दूसरे तरीके हैं.

करीब आधे घंटे तक एम. डी. उसे डांट पिलाते रहे थे. वह अपनी तरफ से बिना कुछ भी कहे चुपचाप सुनता रहा था. जब बाहर निकला था तो पसीना उसकी कनपटियों से चू रहा था—एयर-कंडीशंड कमरे की ठंडी हवा के बावजूद.

. . . . उसी शाम कुलकर्णी के साथ ताड़ी की दुकान पर बैठे-बैठे उसने तय किया था कि नौकरी छोड़ कर वह कहीं दूर निकल जायेगा, कभी वापस न आने के लिए. शायद वह चला भी जाता, लेकिन उसी शाम उसे अपने पिता के बंबई आने की सूचना मिली थी और वह बहुत अनिच्छा से कहीं अटका रह गया था.

पिता स्टेशन से सीधे उसके कमरे पर ही आये थे. लेकिन वहां आ कर शायद वह कुछ बुझ-से गये थे. आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे उन्होंने उसके मामूली कपड़ों, रहने के ढंग, खाने-पीने के स्तर, हर चीज की ओर हिकारत भरी नजरों से देखा था और दूसरे ही दिन कमरा छोड़ कर वह ऐंबेसेडर होटल में चले गये थे, जहां उनसे मिलने वह पांच दिनों तक लगातार हर शाम जाता रहा था. पिता ने इस बीच एम. डी. से भी मुलाकात की थी और उसे शक हुआ था कि उन्होंने उसके पिता को सब कुछ बता दिया है. लेकिन ताज्जुब की बात थी कि पिता ने उससे इस बारे में कुछ भी नहीं कहा था. और इसी तरह एक दिन चुपचाप वह वापस लौट गये थे. . . .

पिता के जाने के बाद वह डावांडोल स्थिति में लावारिसों की तरह घूमता रहा था. कोई भी सीधा निर्णय ले पाने में असमर्थ. इस बीच उसका ज्यादातर वक्त कुलकर्णी और देशपांडे के साथ गप्पें मारते और बेवड़ा पीते हुए गुजरा था और बात ने अपना वह पैनापन खो दिया था. चौथा दिन खत्म होने तक वह काफी शिथिल पड़ चुका था. शहर छोड़ कर चले जाने का खयाल उसे बहुत असुरक्षा भरा लगा था. और इसी तरह धीरे-धीरे वह फिर से दफ्तर के काम की चपेट में आ गया था. . . .

★ ★

. . . यह उन दिनों की बात है जब कंपनी में काम करते हुए उसे तीन साल होने को आये थे और घर से उसके शादी के रिश्ते को ले कर चिट्ठियां आने लगी थीं. इन्हीं दिनों कंपनी में बोनस के सवाल को ले कर हड़ताल भी हुई थी. पिछले साल की शुरुआत में एम. डी. ने मजदूरों से वादा किया था कि यदि साल भर में उत्पादन उम्मीद के अनुसार हुआ तो वह पंद्रह प्रतिशत बोनस का ऐलान करेंगे. उत्पादन की असली हालत यह थी कि भारी मांग के कारण माल के तैयार होने से पहले ही ऑर्डर बुक हो जाते थे. परंतु साल खत्म होने के बाद बोनस को सिर्फ इसलिए रोक दिया गया था, क्योंकि मुनाफे का एक बड़ा हिस्सा नया प्लांट बैठाने में खर्च हो गया था. इस प्लांट के तैयार हो जाने के बाद उत्पादन के डेढ़ गुना हो जाने की आशा थी. यही नहीं, कंपनी के सभी मैनेजरों को साल के अंत में उनकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप दो-दो हजार रुपये 'एक्स ग्रेशिया' दिये गये थे. लेकिन मजदूरों को कुछ नहीं मिला था. . .

मजदूरों की यूनियन ने पहले मैनेजमेंट को चेतावनी का नोटिस दिया था और फिर कोई उत्तर न मिलने पर अचानक हड़ताल हो गयी थी. कंपनी के इतिहास में यह पहली हड़ताल थी. एम. डी. ने सोचा था कि असंतोष की यह भावना शायद कुछ मजदूरों तक ही सीमित है, इसलिए उन्होंने कंपनी के सभी अफसरों, ऐडमिनिस्ट्रेशन कर्मचारियों और 'वफादार' मजदूरों को बंद गाड़ियों में अपने-अपने घरों से कंपनी तक ले जाने की व्यवस्था की थी. यही नहीं, 'वफादार' कर्मचारियों को पैसे का लालच भी दिया गया था. परंतु इस सबके बावजूद अफसरों के अतिरिक्त एक भी कर्मचारी हड़ताल की घोषणा के बाद काम पर नहीं आया था. ऐडमिनिस्ट्रेशन कर्मचारियों में से अधिकांश यूनियन के सदस्य थे. जो नहीं थे, उनमें से कुछेक 'चमचागीरी' की राजनीति में विश्वास रखते थे, पर ये सब भी यूनियन के डर के मारे हड़ताल के दिनों में काम पर नहीं आये थे. हड़ताल के दूसरे दिन से ही इम्तियाज और उसके साथियों ने कंपनी के गेट पर एक छोटा-सा खेमा बना कर वहां नारे लगाने शुरू कर दिये थे. जब किसी अफसर की कार कंपनी के गेट से गुजरती तो नारे लगाने वालों का स्वर कुछ और तेज हो जाता. इन नारे लगाने वालों के गिरोह में वह स्वयं भी शामिल था. बल्कि हड़ताल के सभी अंग्रेजी के पोस्टर उसी के लिखे हुए थे. एक बार शाम के वक्त बाहर निकलते हुए एम. डी. ने अपनी कार में से उसे नारे लगाते देख लिया था. लेकिन उसे देखने के बाद उन्होंने सिर्फ हलके से अपना मुंह बिचकाया था. . .

पांच-छह दिनों के बाद लेबर कोर्ट में हड़ताल के केस की पेशी हुई थी. इस पेशी में विशेष प्रतिनिधि के रूप में इम्तियाज उसे अपने साथ ले गया था. लेबर ऑफिसर के अतिरिक्त वहां कंपनी की तरफ से पर्सनल मैनेजर खन्ना भी उपस्थित थे. उन सबके सामने पूरी हड़ताल को ले कर मजदूरों के पक्ष को स्पष्ट करने की जिम्मेदारी उस पर डाल दी गयी थी. उसने अपने बयान में बोनस की जोरदार मांग करते हुए कहा था कि जहां एक तरफ कंपनी में मजदूरों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा की पूरी व्यवस्था नहीं है, वहीं दूसरी ओर मैनेजमेंट अपना सारा मुनाफा नये प्लांट बनाने में खर्च कर रही है. कार्बन और धूल भरे माहौल में काम करने वाले मजदूरों को दस-बीस रुपये के गैस-मास्क तक नहीं दिये जाते और कालाबाजार में कच्चा माल खरीदने के लिए कंपनी लाखों रुपये खर्च कर देती है. पूरी स्थिति को संक्षेप में रखते हुए उसने कहा था कि कंपनी की एकमात्र रुचि कम-से-कम पैसे खर्च करके अधिक-से-अधिक माल बनाने में है और मजदूरों के हितों की उसे कोई परवाह नहीं है. उसकी जिरह के बाद पर्सनल मैनेजर ने मैनेजमेंट का पक्ष प्रस्तुत किया था, लेकिन लेबर ऑफिसर शायद उसकी दलीलों से इतना प्रभावित हो चुका था कि पर्सनल मैनेजर के भाषण के दौरान वह न जाने कौन-से कागज ढूंढ़ता और उलटता-पलटता रहा था. पर्सनल मैनेजर ने अपने बचाव में वही सब दोहराया था—बढ़ती हुई महंगाई, टाइट क्रेडिट सिचुएशन, मजदूरों का असहानुभूतिपूर्ण रवैया, आदि. लेबर ऑफिसर ने सब कुछ सुन कर तीन दिन बाद फैसला देने का ऐलान किया था और मीटिंग बर्खास्त हो गयी थी. . .

फैसला मजदूरों के हक में आया था. कंपनी ने मजबूरी में सभी कर्मचारियों को बोनस देने का ऐलान किया था और बहुत उत्साहपूर्ण ढंग से हड़ताल खत्म हो गयी थी. हड़ताल के खत्म होने के बाद उसने पाया था कि वह रातोंरात हीरो बन गया है. कंपनी में हर जगह उसी की बातें होने लगी थीं. बहुत-से लोग उसे यूनियन के अगले चुनाव में खड़े होने की सलाह भी देने लगे थे.

. . . . लेकिन वह सारे सिलसिले को इसी सुखद मोड़ पर छोड़ कर कहीं दूर चला जाना चाहता था. इतनी गहमागहमी उससे बर्दाश्त नहीं होती थी. महाराष्ट्र के ही एक गांव में रहने वाले अपने एक समाजसेवक दोस्त से उसने सारी बातें तय भी कर ली थीं, हालांकि वह स्वयं उसके वहां आने के पक्ष में नहीं था.

शायद उसकी योजनाएं कोई निश्चयात्मक मोड़ ले लेतीं, पर हमेशा की तरह एक बार फिर उसकी जिंदगी में एक निर्णायक बिंदु आ गया था. दोपहर के वक्त उसे खबर मिली थी कि एम. डी. किसी खास मसले पर

उससे बातचीत करना चाहते हैं. एम. डी. के कमरे में जाने पर उसने पाया था कि वहां कंपनी के तीन-चार दूसरे अफसर भी बैठे हैं. सब ने बारी-बारी से उसके साथ हाथ मिलाया था और उसके बाद एम. डी. ने मुसकराते हुए उसे सूचना दी थी कि अगले महीने की पहली तारीख से उसे असिस्टेंट पर्सनल मैनेजर के रूप में तरक्की दी जा रही है. . . .

. . . . उसकी सारी दुनिया एक झटके के साथ बदल गयी थी. हालांकि इस बात का एहसास उसे कुछ वक्त बाद ही हुआ था. जिस दिन उसे तरक्की का पत्र मिला था, उसी शाम काम से छूटने के बाद उसने यह खबर कुलकर्णी, इम्तियाज और अपने दूसरे साथियों को बतायी थी. खबर सुनाते वक्त उसने भरसक अपने चेहरे और आवाज के जरिये अपनी मानसिक चिंता उन लोगों तक पहुंचानी चाही थी, पर फिर भी पता नहीं कहां क्या गलत हो गया था. उसकी सारी बातें सुन कर उन सब ने दबे स्वर में उसे बधाई दी थी और फिर बिना कुछ भी कहे, चुपचाप वे वहां से चले गये थे.

उसकी सारी रात करवटों में गुजरी थी. एक क्षण उसके मन में इस सारे सिलसिले के लिए तीखी वितृष्णा उभरती, तो दूसरे की क्षण न चाहते हुए भी वह सोचने लगता कि तरक्की के बाद उसे जो पैसे मिलेंगे, उनसे वह क्या-क्या कर सकता है. एक तरफ उसे एहसास होता कि यह सारी साजिश उसे पालतू बनाने के लिए रची गयी ह, तो दूसरी तरफ उसे यह भी लगता कि नया पद संभालने के बाद वह अपने पुराने साथियों की काफी मदद कर सकता है. बहुत व्यावहारिक हो कर सोचने पर उसे लगा था कि अगर वह उस स्थान को लेने से इनकार करेगा तो शायद उसकी जगह कोई ऐसा व्यक्ति रख लिया जायेगा, जिसका रवैया मजदूरों के पूरी तरह खिलाफ हो. माहौल खराब है तो क्या हुआ, इस नयी जिम्मेदारी को आजमा देखने में क्या हर्ज है? वह मन-ही-मन सोचता चला गया था. उसे महसूस हुआ था कि उस नयी पोस्ट पर वह कुछ ऐसा भी करके दिखा सकता है, जैसा आज तक किसी ने नहीं किया. . . . और इस तरह लंबे मानसिक तर्क-वितर्क के बाद उसने 'फिलहाल' उस नयी जिम्मेदारी को मंजूर कर लेने का फैसला किया था. . . .

और इसी 'फिलहाल' ने उसे कहीं का नहीं छोड़ा था. . . .

★ ★

अगर कभी कार्बन के उस गोदाम में आग लग जाये तो? उसके दिमाग में आग और दुर्घटनाओं की ये संभावनाएं अब लगातार घुमड़ने लगी थीं. वैसे सच पूछा जाये तो उस चहारदीवारी के भीतर उसका सीधा वास्ता सिर्फ लोगों की सामाजिक जिंदगी से था और दुर्घटनाओं का खयाल रखने के लिए तो एक सेफ्टी ऑफिसर अलग से था. लेकिन यह बात उसकी तसल्ली के लिए काफी नहीं थी. . . अगर मैं यह नौकरी छोड़ दूं तो क्या लोगों को यकीन आ जायेगा कि मैं वही हूं, मुझमें कोई बदलाव नहीं आया है? दिमागी सवाल-जवाब के सिलसिले में वह बार-बार अपने आपसे पूछने लगा था. लेकिन कोई साफ उत्तर देने की जगह वह अपने ही मन में अपने लिए फिजूल-से स्पष्टीकरण तैयार करने लगता था. . .

यह सच था कि अपनी खुद की तरफ से उसने चीजों को बदलने न देने की भरसक कोशिश की थी. खासतौर पर ए. पी. एम. का पद संभालने के बाद उसने पुराने रिश्तों को कायम रख सकने के लिए बहुत जोर लगाया था. परंतु धीरे-धीरे, उसके न चाहते हुए भी, न जाने कैसे उसके इर्द-गिर्द एक अजीब-सी प्रतिरोधक दीवार खड़ी होनी शुरू हो गयी थी. उसके साथी मैनेजर इसे 'टेंपररी कल्चरल क्राइसिस' की संज्ञा देते थे, लेकिन वह खुद अपने मन के भीतर जानता था कि उसकी यह छटपटाहट उतनी अस्थायी नहीं है, जितनी उन सब लोगों को लगती है. . . .

पहले वह पब्लिक बस से ऑफिस आया करता था, कुलकर्णी या किसी दूसरे ऑपरेटर के साथ. वे सब उसे नजदीक के रेलवे स्टेशन पर मिल जाते थे. प्रमोशन मिलने के बाद भी उसने उसी तरह बस में आना जारी रखा था, पर अब कोई भी पुराना साथी बस में उसके साथ नहीं बैठता था. कई बार वह गौर करता, बस की क्यू में उसे खड़ा देख कर कुलकर्णी और इम्तियाज जानबूझ कर बस छोड़ देते. कभी-कभार गलती से उसी के साथ बस में चढ़ जाने पर भी वे अपनी दूरी बनाये रखते थे. एक बार उसने पहले की तरह उन लोगों की टिकट भी लेनी चाही थी, पर इससे स्थिति और अजीब हो गयी थी. धीरे-धीरे उसने पाया था कि बस का वह छोटा-सा सफर भी दफ्तर की आठ घंटों की जिंदगी की तरह नकली स्थितियों से भर गया है. और उसने हार कर अपने गिर्द एक मोटा खोल बना लिया था. इसी के कुछ दिनों बाद फैक्टरी मैनेजर ने उसे अपने दफ्तर में बुला कर कहा था कि वह रोज वर्कर्स के साथ बस में यात्रा करता है, यह अच्छी बात नहीं है. साथ ही उन्होंने उसे सूचना दी थी कि कंपनी ने उसके नाम एक ब्याज रहित कर्ज ग्रांट किया है, जिससे वह कार खरीद सकता है. यही नहीं, इसके एक हफ्ते बाद ही कंपनी की एक सैकंडहैंड गाड़ी रियायती दामों पर उसे बेच दी गयी थी और एक दिन अचानक उसने पाया था कि दफ्तर का क्लर्क उसके डेस्क पर कार की चाबियां रख कर चला गया है. . .

कुछ ही दिनों बाद उसे कंपनी का फ्लैट भी मिल गया था. बड़े-बड़े दो बेडरूम, एक लंबा-चौड़ा हॉल और बालकनियां— जिनमें से हरेक के सामने फैला समुद्र दिखायी देता था. क्लब की मेंबरशिप, डॉक्टर और अस्पताल का चुनाव, छुट्टियों में हिलस्टेशन पर होटल की बुकिंग, दोपहर के समय ऑफिसर्स मेस में उपयुक्त खाना— इन सब का इंतजाम भी कंपनी ने उसके लिए कर दिया था. कंपनी के दफ्तर में जिस बाथरूम का इस्तेमाल अब वह करता था, उसके बाहर 'ऑफिसर्स ओनली' का बोर्ड लगा हुआ था. कभी-कभी उसे लगता था कि अब शायद किसी दिन एम. डी.

उसे दफ्तर में बुला कर यह भी बतायेगा कि इन दिनों उसे क्या सोचना चाहिए और क्या नहीं. . .

इस फैशनेबल गुलामी के सबसे तकलीफदेह लम्हे वे होते थे, जब उसे अपने पुराने दोस्तों से मुखातिब होना पड़ता था. पर्सनल मैनेजर के छुट्टी पर चले जाने के बाद उसे अकसर कर्मचारियों की समस्याओं को सुलझाने की जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी. ऐसे में कभी-कभी वह न चाहते हुए भी उन्हीं पुराने चेहरों से सीधे टकरा जाता था.

पर्सनल मैनेजर ने छुट्टी पर जाने से पहले यूनियन के एक सक्रिय कार्यकर्ता पर चोरी का आरोप लगा कर उसे चार्जशीट दी थी. बाद में यह केस उसे सौंप दिया गया था और मजदूरों में एक अफवाह फैल गयी थी कि कुछ दूसरे यूनियन-कार्यकर्ताओं को भी जल्दी ही चार्जशीट दी जाने वाली है. . . . इसी सिलसिले में एक बार चार्जशीटेड कार्यकर्ता सावंत का लिखित उत्तर ले कर आठ-दस मजदूर उसके कैबिन में उससे मिलने आये थे. उनमें इम्तियाज भी था. उन लोगों को इस तरह अपने कमरे में देख कर वह एकबारगी अपराधी हो उठा था. बिल्कुल इसी तरह कुछ दिनों पहले वह इम्तियाज के साथ पर्सनल मैनेजर के दफ्तर में गया था. बिल्कुल इसी मुद्रा में.

—इम्तियाज, सुनो. . . . उसने बुदबुदाने की कोशिश की थी. मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूं, मैं तुम्हारी मदद करना चाहता हूं. लेकिन इम्तियाज सिर्फ पथरीली निगाहों से उसकी ओर घूरता रह गया था. सावंत का लिखित स्पष्टीकरण उसके हाथों में थमा कर वह व्यंग्य से मुसकराया था और फिर मुड़ने से पहले धीरे से बोला था—- सा'ब, तुमको तो सब मालूम हय. . . . चार्जशीट का डर बता के यूनियन बंद होने वाला नईं हय! . . . कायको फिर तकलीफ करता हय? और बोल कर इम्तियाज कमरे से बाहर चला गया था, उसे सोचने के लिए छोड़ कर कि इम्तियाज का उसे 'साहब' कह कर बुलाना एक संस्कारगत कमजोरी थी या फिर उसने जानबूझ कर उसका अपमान करने की कोशिश की थी? . . .

सावंत के स्पष्टीकरण के आधार पर उसने नोट बना कर फैक्टरी मैनेजर को भेज दिया था. नोट में उसने लिखा था कि सावंत की दलीलें अच्छी हैं और कंपनी के पास उस पर लोहे का सामान चुराने का इल्जाम लगाने के लिए पर्याप्त कारण नहीं हैं. यही नहीं, इस तरह की सख्त कार्रवाई से मैनेजमेंट और मजदूरों के बीच तनाव पैदा होने का खतरा बन सकता है, उसने आगे लिखा था. नोट की एक प्रति उसने एम. डी. के पास भी भेज दी थी. दो-तीन दिनों तक कुछ नहीं हुआ था, सिवा इसके कि हर सुबह फैक्टरी के गेट से भीतर घुसते वक्त बहुत-से मजदूर संशय से उसकी ओर देखते रहे थे. चौथे दिन एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुलाया था. उसे बैठने के लिए कहने के बाद उन्होंने एक कागज उसके हाथों में थमा दिया था. वह कागज सावंत के नाम लिखा गया एक छोटा-सा पत्र था, जिसमें कहा गया था कि चोरी की सूचना पुलिस को दी जा रही है और अदालत में फैसला होने तक उसे नौकरी से सस्पेंड किया जाता है. इस कागज को उसके हाथ में थमाने के साथ ही एम. डी. ने टेबल पर से उसका लिखा हुआ नोट भी उठाया था और व्यंग्य से उसकी ओर देखते हुए उसे टुकड़े-टुकड़े करके रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था. . . .

* *

सावंत सस्पेंड हो गया था और कुलकर्णी, इम्तियाज, रानाडे वगैरा सभी ऑपरेटरों के लिए वह मैनेजमेंट की साजिश का जीता-जागता स्वरूप बन गया था. उसके पास से गुजरते समय वे दबे स्वर में एक-दूसरे को संबोधित करके गालियां बुदबुदाते, जिनका असली निशाना वह स्वयं होता था. एक बार गुड्स शेड की दीवार पर उसे अपने नाम के आगे कई गंदे विशेषण लिखे हुए मिले थे. उधर मैनेजमेंट के उसके सहयोगी भी उसकी ओर अजीब हिकारत भरी नजरों से देखने लगे थे. एक बार मंथली मीटिंग के बाद एम. डी. ने उसे अलग बुला कर कहा था कि वह स्टाफ के साथ बहुत नर्मी का बर्ताव कर रहा है और यह उसके कैरियर के लिए अच्छा नहीं है—आई ऐम वेरी लिबरल! उन्होंने सख्त आवाज में ऐलान किया था. बट आई मस्ट गेट लॉयल्टी फ्रॉम माई पीपल!

. . . . और हर तरफ से अपने ऊपर पड़ने वाली संदेह भरी निगाहों को झेलते हुए वह बदहवासी की हालत में सोचता रहा था कि आखिर उसकी वफादारी किसकी तरफ है? कभी-कभी उसके मन में कुलकर्णी, इम्तियाज आदि को अपना पक्ष समझाने की एक बहुत भोली-सी ललक उठती, परंतु इन सख्त निगाहों का सामना करते हुए वह भीतर-ही-भीतर कुछ सहम-सा जाता था.

. . . . जब घुटन बहुत बढ़ गयी थी, तो उसने लंबी छुट्टी के लिए अर्जी दे दी थी. छुट्टियों में वह यहां-वहां अकेला भटकता रहा था. जैसे अपने-आपकी तलाश में अपने आपसे भाग रहा हो. इसी बीच मां-बाप की ओर से शादी का एक सुनिश्चित प्रस्ताव भी उसे मिला था जिसने उसकी उलझनों को और बढ़ा दिया था. जिस लड़की के लिए उसके मां-बाप जोर दे रहे थे, वह समाजशास्त्र में एम. ए. थी और खासी प्रबुद्ध होने का एहसास देती थी. उसने ऊपरी तौर पर मां-बाप के सामने अपनी असहमति जाहिर की थी, पर उसे लगा था कि कहीं किसी भीतरी सतह पर उसका अपना अकेलापन लगातार उस लड़की के पक्ष में उसे कमजोर बनाता जा रहा है. शायद मां-बाप भी उसकी इस कमजोरी को भांप गये थे और दो-चार हफ्तों की मामूली गहमागहमी के बाद उन्होंने उसे राजी कर लिया था. . . .

और इस तरह उसकी शादी भी हो गयी थी. ताजमहल होटल में हुए उसकी शादी के रिसेप्शन में एम डी. भी आये थे. उसके करीब आ कर उसे बधाई देते समय वह एक बहुत कुटिल-सी हंसी हंसे थे और फिर मुड़ कर उसके पिता से बात करने लगे थे

उनकी उस मुसकराहट का मतलब वह उस वक्त नहीं समझ सका था, पर शादी के बाद धीरे-धीरे उसे इसका मतलब समझ में आने लगा था. बीवी के घर में आ जाने के बाद उसके उग्र खयालों पर एक ब्रेक-सा लगता चला गया था और उसकी चिंताएं दोहरी हो गयी थीं. उसकी पत्नी खासे संपन्न परिवार से थी और उसे शुरू से ही आरामतलब जिंदगी बिताने की आदत रही थी. उसकी साहित्यिक अभिरुचि, कलात्मकता और समझ के भी अपने अलग मानदंड थे, जिनमें शरीक होना उसके लिए बेहद मुश्किल था. उसकी घरेलू जिंदगी भी इस तरह धीरे-धीरे दफ्तर में उसके स्तर के ही अनुरूप बनती चली गयी थी और एक दिन इसी तरह उसने गौर किया था कि शादी के बाद के उस एक वर्ष में गांव की तरफ भाग खड़े होने की उसकी पुनर्जीवी ललक पता नहीं किन बोझिल खयालों में दबती चली गयी है.

★ ★

—साब, खाना क्या बनेगा? यह श्रीधर की आवाज थी.

उसने नजरें उठा कर देखा, उसका नौकर दरवाजे में खड़ा बहुत अजीब-अजीब निगाहों से उसकी ओर देख रहा था. शायद ऐसा साहब उसने जिंदगी में कभी नहीं देखा था जो क्लब जाने की जगह सारी शाम अपने कमरे में बैठा जाने क्या-क्या सोचता रहता था.

—मेम साहब कुछ कह कर गयी हैं? उसने टालने के लहजे में नौकर से पूछा.

—नको! नौकर ने शिद्दत के साथ गरदन हिलायी.

उसकी बीवी की अपने ब्यूटी क्लिनिक पर शाम की अपॉइंटमेंट थी और वह उसके आते ही गाड़ी ले कर निकल गयी थी. बीवी के जाने के बाद से वह अपने बिस्तर पर औंधा लेटा था.

—साब, खाने का. . . . श्रीधर उसे आसानी से छोड़ने वाला नहीं था.

—ओ, हां. . . उसने कुछ झुंझलायी हुई नजरों से नौकर की ओर देखा. . . . तुम ऐसा करो, जो मन में आये, बना लो. . . . और पहले जरा मुझे एक कप कॉफी देते जाना. . .

नौकर चला गया और वह उसी तरह बिस्तर पर औंधा पसरा सोचता रहा कि इस घर में आने के बाद वह कितना आलसी और आरामपसंद हो गया है. एक वक्त था, जब उसकी सारी शाम कंपनी में ही बीतती थी, ऑपरेटरों को अंग्रेजी पढ़ाते हुए, उनसे मराठी की चुनिंदा गालियां सीखते हुए और यूं ही इधर-उधर की गप्पें लड़ाते हुए. अब सुविधाओं का रेगिस्तान उसके चारों तरफ बिछा दिया गया था और शामें उससे काटे नहीं कटती थीं. . .

क्या इस जहरीले घेरे से निकल भागने का कोई रास्ता नहीं? उसने फिर वही फिजूल-सा सवाल अपने दिमाग में दोहराया और पैनी निगाहों से छत पर चिपके वॉल-पेपर की ओर देखने लगा. उसके दिमाग में पिछले पंद्रह-बीस दिनों की घटनाएं तेजी से चक्कर लगाने लगी थीं. ये पंद्रह दिन उसके लिए बेहद मुश्किल साबित हुए थे. हर रोज दफ्तर से लौटने के बाद वह अपनी पत्नी से वे चिंताएं छिपाने की कोशिश करता, पर अब शायद पत्नी को भी लगने लगा था कि कहीं कुछ गंभीर रूप से गलत हो गया है. . .

दरअसल कंपनी की मैनेजमेंट ने अब बहुत चालाकी के साथ एक शतरंज के मोहरे की तरह उसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था. खासतौर पर पर्सनल मैनेजर अपने हर साजिश भरे निर्णय की जिम्मेदारी उसके कंधों पर डाल कर तमाशा देखने का आदी हो गया था. इन दिनों इस बात ने गंभीर रुख ले लिया था, क्योंकि यूनियन की गतिविधियां बढ़ गयी थीं और मैनेजमेंट ने इसको तोड़ने के लिए एक लंबी-चौड़ी योजना बनायी थी. और इस योजना का सारा 'श्रेय' उसे दे दिया गया था.

हुआ यूं था कि कंपनी के एक अकाउंट्स क्लर्क ने ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के कर्मचारियों के 'हितों' का खयाल रखने के लिए एक अलग यूनियन बनाने का ऐलान किया था. इससे पहले इनमें से अधिकांश कर्मचारी इम्तियाज की यूनियन के सदस्य थे. इस नयी यूनियन को बनाने के लिए जो पहली सभा हुई थी, उसमें ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के मुश्किल से दस या बारह कर्मचारी उपस्थित रहे होंगे, पर सभी जानते थे कि उन सभी कर्मचारियों की पीठ पर पर्सनल मैनेजर का हाथ है. इस सभा के हो जाने के बाद इम्तियाज ने अलग से उन सब कर्मचारियों को समझाने की कोशिश की थी कि अलग यूनियन बन जाने से मैनेजमेंट के लिए कर्मचारियों पर दबाव डालना बहुत आसान हो जायेगा. वे सब इम्तियाज की बातों से सहमत हुए थे, पर दूसरे ही दिन पर्सनल मैनेजर ने स्वयं ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के हर कर्मचारी के पास जा कर कहा था कि अगर वह इस नयी यूनियन का सदस्य नहीं बनता है, तो उसके प्रमोशन की संभावनाएं काफी कम हो जायेंगी. और इस तरह जोर-जबरदस्ती से इस नयी यूनियन की स्थापना कर दी गयी थी. इस नयी यूनियन के बनने के दो ही तीन दिन बाद मैनेजमेंट ने इसे



● मधु करंदीकर

अपनी औपचारिक स्वीकृति द दी थी. स्वीकृति मिलने के दूसरे ही दिन इम्तियाज एक बार फिर उससे मिलने आया था. उसने कुछ सहमी हुई आवाज में इम्तियाज को समझाना चाहा था कि इस नयी यूनियन को बनाने में उसका कोई हाथ नहीं है, लेकिन इम्तियाज सिर्फ अविश्वास और व्यंग्य भरी आंखें लिये मुसकराता रहा था. —तभी ये क्लर्क लोग क्या अपने-आपसे यूनियन बनाने की बात सोचा?

स्पष्टीकरण देने की जल्दबाजी में वह इम्तियाज के साथ जरूरत से कुछ ज्यादा ही खुल गया और उसने परोक्ष रूप में उसे यह भी बता दिया था कि पर्सनल मैनेजर ने कुछ कर्मचारियों पर दबाव डाल कर उन्हें यूनियन का सदस्य बनाया है. इस बात को सुन कर इम्तियाज कुछ चौंका था, और फिर कुछ ही मिनटों के बाद उसके कैबिन से बाहर चला गया था.

दूसरी सुबह कंपनी के बाहर दीवारों पर जगह-जगह हस्तलिखित पोस्टर लगे हुए मिले थे, जिनमें अन्य बातों के अलावा यह भी कहा गया था कि पर्सनल मैनेजर ने अपने सेक्शन के लोगों पर व्यक्तिगत दबाव डाल कर उन्हें यूनियन का सदस्य बनाया है. इस खबर से सारी फैक्टरी में सनसनी फैल गयी थी और दोनों यूनियनों के बीच काफी तनाव पैदा होने लगा था. दोपहर के खाने के वक्त पर्सनल मैनेजर ने उसकी उपस्थिति में अपने एक साथी मैनेजर से कहा था कि पता नहीं कंपनी की 'टॉप सीक्रेट' गतिविधियों की भी खबर उन मजदूरों को कैसे लग जाती है. और यह कह कर वह बहुत अर्थ भरी नजरों से उसकी ओर देखने लगे थे...

साजिश भरा यह माहौल लगातार उसे अपनी चपेट में लेता चला गया था. इम्तियाज की यूनियन द्वारा मैनेजमेंट के विरुद्ध चलाये गये इस अभियान के दो दिन बाद ही एक और अप्रिय घटना घट गयी थी. शाम की पाली के छूटने के बाद ऐडमिनिस्ट्रेशन की यूनियन के दो सदस्यों के साथ अंधेरे में किसी ने मारपीट की थी और उनकी जेबों से पैसे छीनने की कोशिश की थी. ऐडमिनिस्ट्रेशन के सभी कर्मचारी इस वारदात के बाद इम्तियाज और उसकी यूनियन के खिलाफ हो गये थे, क्योंकि उन्हें शक था कि मारपीट का यह काम इम्तियाज ने ही करवाया है. इम्तियाज सुबह से शाम तक सबके सामने सफाई देता रहा था कि वह गुंडागीरी में विश्वास नहीं रखता, परंतु उसकी दलीलें फिजूल साबित हुई थीं. शाम से पहले ही कंपनी के नोटिसबोर्ड पर पर्सनल मैनेजर का नोटिस लग गया था कि कंपनी हिंसा की इन वारदातों की निंदा करती है और इस तरह की घटनाओं के लिए जिम्मेदार लोगों के साथ कड़ाई का बर्ताव किया जायेगा.

इसी शाम ऑफिस छूटने के बाद एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुला कर पूछा कि बताओ, आखिर तुम्हारा इरादा क्या है? क्यों तुम इस सिस्टम में अपने-आपको नहीं ढाल सकते? वह उत्तर देने की जगह चुपचाप खाली दीवार के पार देखने लगा था, जहां एक बार फिर उसकी आंखों के सामने उस जाने-पहचाने,



● दिलीप बनर्जी तथा एल. जे. उपाध्याय

सुदूर गांव की धुंधली रेखाएं उभरने लगी थीं.

यह उसकी शादी की दूसरी सालगिरह के बाद अभी दो दिन पहले की बात थी और ऐसा इन दो सालों में पहली बार हुआ था...

* *

—तुम अभी यहीं हो? बीवी के सपाट सवाल ने उसे चौंका दिया. उसकी ओर अपनी नजरें उठा कर देखते ही वह समझ गया कि वह हेयरड्रेसर के पास से हो कर लौटी है. उसके जूड़े का स्टाइल बदल गया था.

—तुम्हें यह क्या हो गया है? अंदर आते ही बीवी कोमल स्वर में बोली और पलंग पर उसके पास आ कर बैठ गयी. उसका हाथ अपने हाथों में थाम कर वह बहुत चिंता के साथ उसके पसीने से लथपथ चेहरे की ओर देखने लगी.

पूरा माहौल खामोश था, सिवा खिड़की के बाहर नीचे के फ्लैट में टी. वी. पर चल रही फिल्म की छन कर आती आवाज के. उसका मन हुआ कि बीवी के सामने वह पूरी तरह फूट पड़े. परंतु बीवी का बदला हुआ चेहरा इस आत्मीयता में रुकावट बन रहा था. —कुछ नहीं. ...लंबी चुप्पी के बाद वह बोला. मैं इस जिंदगी से तंग आ गया हूं. मेरा यहां दम घुटता है...

—सब कुछ तो है यहां! तुम्हें कमी किस बात की है? पत्नी का उत्तर हमेशा की तरह ठंडा और बेवकूफी से भरा हुआ था. वह आगे कुछ भी नहीं कह सका. सिर्फ वितृष्णा भरी निगाहों से खिड़की के बाहर समुद्र-तट के करीब टहलते स्त्री-पुरुषों को देखता रहा. पत्नी कुछ देर बाद उठ कर रसोईघर की तरफ चली गयी.

लेकिन खाना खाते समय वह बोझिल-सा एहसास फिर किसी अप्रिय घटना की यादों की तरह उन दोनों के बीच उतर आया. सब कुछ पहले ही की तरह खामोश था. दोनों को खाना खिलाने वाला नौकर श्रीधर चपाती परोसने से पहले हर बार कनखियों से उन दोनों के चेहरों की ओर देखता जा रहा था. खाने के दौरान उन दोनों के आपस में बात न करने की यह स्थिति

उसके लिए काफी परिचित थी.

लेकिन तभी बाहर के दरवाजे की घंटी जोरों से बजी और खामोशी का वह वक्फा एक झटके के साथ टूट गया. नौकर ने हाथ में थमी प्लेट मेज पर रख दी और उलटे पांव दरवाजे की तरफ भागा. उसके जाते-जाते घंटी अधीरता का एहसास देती हुई एक बार फिर बजी. इस बार वह स्वयं भी रोटी का कौर हाथ में पकड़े-पकड़े घूम कर आवाज की दिशा में देखने लगा.

नौकर को दरवाजा खोलने में पांच या दस सैकेंड लगे होंगे. दरवाजा खुलने की आवाज के साथ ही उसे लगा कि भीड़ का एक रेला उसके कमरे में घुस आया है.

वह और उसकी पत्नी लगभग एक साथ बाहर के कमरे की ओर दौड़े. वहां पहुंचने पर उन्होंने पाया कि श्रीधर बमुश्किल अधखुले दरवाजे पर जोर लगाये पंद्रह-बीस आदमियों की भीड़ को बाहर ही रोकने की कोशिश कर रहा है. —जल्दी से दरवाजा बंद करो! उसकी पत्नी चिल्लायी, लेकिन उसने ठहरी हुई आवाज में श्रीधर से कहा कि वह दरवाजे को छोड़ दे. श्रीधर हिचकिचाया हुआ एक तरफ हुआ ही था कि भीड़ में एक हलचल-सी हुई और चेहरों का वह रेला ड्राइंग-रूम में घुसता चला आया. वे सब मजदूर थे और उन्होंने दो लहूलुहान आदमियों को गरदन से पकड़ रखा था. उनमें से एक का होंठ फट गया था और उसमें से लगातार खून बह रहा था.

—वहां नहीं! वहां नहीं! सारी कार्पेट पर गिरेगा! उसकी बीवी उन्हें आगे बढ़ते देख कर पागलों की तरह चिल्लायी. दोनों लहूलुहान आदमियों को घसीट कर आगे लाता गिरोह वहीं ठहर गया. उसने गौर किया, एक कोने में कुलकर्णी भी सहमा हुआ खड़ा था.

—क्या हुआ? क्या बात है?. . .वह कुछ आश्वस्त हो कर ऊंची आवाज में चिल्लाया.

—पूछो स्साले हरामी के पिल्ले से. . .लहूलुहान, लंबे बालों वाले पहले आदमी की नाक पर एक करारा मुक्का जमाते हुए भीड़ का एक चेहरा बोला. खून का एक ताजा फव्वारा उस आदमी की कमीज पर फैलता गया. . .—बोल साले अपने बाप के सामने! किसने दिया पैसा तेरे को. . . .?

वह आदमी घिघियाता हुआ कुछ बोलने को हुआ, परंतु इससे पहले ही एक और करारा झापड़ उसकी गरदन पर पड़ा.—बोल, तुझा आई च्या. . .

—मनेजर खन्ना साहेब! वह आदमी रोते-रोते फट पड़ा. खन्ना साहेब मनेजर मला दोन शे रुपये दिले. . . आय्या! दर्द के बारे उसका बदन दोहरा होने लगा था.

वह पत्थर बना उन लहू-पसीने से सने चेहरों की ओर देखता रह गया.

—ये साला भड़वा जो बोला, उसका साक्षी तुम हय साहेब! एक और चेहरा गुस्से में चिल्लाया. ये माड़े का लोक इम्तियाज को चाकू से मारा . . .उसको कुछ हो जायेगा तो हम साला पूरा कंपनी में आग लगा देगा! और तुमारा सगे वाला वो खन्ना साब. . .

—चाला, सगले जाऊं! इसके साथ ही दूसरी आवाज उभरी. साला लोक को पुलिस टेशन लेके चलने का. . .

भीड़ की गर्मी में से दो-चार भद्दी गालियां और उभरीं और उसके बाद वे उन दोनों की गरदनों पर अपने हाथ कसे पीछे की ओर हटने लगे. भीड़ के दरवाजे से बाहर निकलते-निकलते उसने सुना कि उसके नाम के आगे भी कई तरह की गालियां जोड़ी जा रही हैं.

उसकी नसों में खून जैसे जमने-सा लगा.—कुलकर्णी! भीड़ के आखिरी आदमी के बाहर निकलते-निकलते वह चिल्लाया.—कुलकर्णी! मेरी बात तो सुनो. . . उसकी आवाज टूटने लगी थी. . .इम्तियाज क्या सचमुच. . .

कुलकर्णी आखिरकार ठिठक गया. फिर उसकी ओर बहुत क्रूर नजरों से देखते हुए बोला—नईं, अबी मरा नईं हय. . .! के. ई. एम. हॉस्पिटल लेके गया है. तुमारा मेरबानी होयेंगा तो मर बी सकता हय. . .

व्यंग्य भरी मुसकान बिखेरता हुआ कुलकर्णी चला गया और फर्श पर फैले खून के छींटों को नफरत भरी निगाहों से देखते उसे लगा कि जिस दीवार का सहारा ले कर वह खड़ा है, वह थरथराने लगी है.

—मैं तुम्हें वहां नहीं जाने दूंगी! उसे तेजी से निश्चयात्मक ढंग से पीछे मुड़ता देख कर उसकी पत्नी चिल्लायी. यू आर नॉट गोइंग देयर!

वह उस चेहरे से बेखबर, अंदर कार की चाबियां लाने चला गया. लौटा तो उसकी पत्नी रोने-रोने को थी. —हैव यू गॉन आउट ऑफ योर माइंड? उसे बाहर निकलते देख कर वह चिल्लायी. यह पुलिस केस है, तुम्हें इतना भी नहीं मालूम. . .?

लिफ्ट के आने में देर देख कर वह यूं ही सीढ़ियां फलांगता नीचे उतर गया. . .

* *

के. ई. एम. में इम्तियाज का वार्ड ढूंढ़ने में कुछ वक्त लगा. पूछताछ करता हुआ वह एमरजेंसी वार्ड तक पहुंचा.

दरवाजे से चौथे बेड पर, घिसा हुआ लाल कंबल ओढ़े इम्तियाज बेहोश पड़ा था. शायद उसकी मरहम-पट्टी की जा चुकी थी. इम्तियाज के सिरहाने एक औरत, जो संभवतः उसकी पत्नी थी, खामोश बैठी थी. औरत से सट कर आठ-दस साल की दो बच्चियां खड़ी थीं. बड़ी ने एक बदरंग सलवार-कुर्ता पहन रखा था और छोटी का फ्रॉक सेफ्टी पिनों के सहारे टिका हुआ था. दोनों बच्चियां आतंकित नजरों से इम्तियाज के चेहरे की ओर देख रही थीं.

उसके करीब पहुंचने पर इम्तियाज की बीवी ने सिर्फ एक बार नजर उठा कर उसकी ओर देखा. फिर तरल हो आयी अपनी आंखों को उसने दूसरी तरफ कर लिया. अपनी गरदन झुकाये हुए भी उसे लगा कि वे दोनों बच्चियां कौतुक भरी निगाहों से उसके महंगे जूतों, लापरवाही से मोड़ी गयी कमीज की आस्तीनों और हाथ में बंधी ऑटोमैटिक घड़ी

की ओर देखती जा रही है. . .

अचानक न जाने क्या हुआ कि इम्तियाज ने अपनी आंखें खोल दीं. धुंधले होते हुए उस क्षणांश में उसे लगा कि इम्तियाज ने अपनी फीकी पड़ती हुई आंखों पर जोर डालने की कोशिश की है और पता नहीं कब और कैसे उसे पहचान लिया है. . .सिर्फ एक लम्हे के लिए कंबल के भीतर से ही इम्तियाज का हाथ अभिवादन की मुद्रा में कांपा, उसके होठों पर एक क्षीण-सी व्यंग्य भरी मुसकराहट उभरी और फिर उसने दर्द से कराहते हुए दुबारा अपनी आंखें बंद कर लीं. . . .

उसके लिए सब कुछ बहुत निर्मम और थका देने वाला बनता चला गया था. इम्तियाज की बहुत छोटी-सी लगने वाली उस पत्नी की ओर एक आखिरी अपराधी निगाह डाल कर वह मुड़ा और माथे का पसीना पोंछता हुआ वार्ड से बाहर निकल आया. . . .

घर लौट कर फिर उससे खाना नहीं खाया गया. सारा सिलसिला ही जैसे गलत हो गया था. करीब आधे घंटे के बाद उसे कुलकर्णी का फोन मिला कि उन्होंने उन दोनों आदमियों को पुलिस में दे दिया है और अगली सुबह अगर वह गवाही देने पुलिस-स्टेशन चला जाये तो उसकी बहुत मेहरबानी होगी!

—चलो, यहां से कहीं दूर निकल चलें! उसे इस तरह मनहूसों की तरह सोफे पर बैठा देख कर उसकी बीवी बहुत दबे स्वर में बोली. उसने कुछ आश्चर्य में पड़ कर बीवी के चेहरे की ओर देखा, लेकिन वहां गहरी चिंता के अलावा कुछ नहीं था.—चलो, यहां से चलें! बीवी ने फिर दोहराया. मुझे भी आजकल यहां तुम्हारी वजह से एक अजीब-सा डर लगने लगा है. . .

वह एक ठंडे, विरक्त भाव से कमरे की छत की ओर देखने लगा.

लेकिन तभी फोन की घंटी फिर से बज उठी. सोफे पर बैठे-बैठे ही हाथ बढ़ा कर फोन उठाने पर उसे पता चला कि एम. डी. उससे बात करना चाहते हैं. —हैलो, कांग्रेचुलेशंस! कोई दस सैकेंड बाद एम. डी. की आवाज फोन पर कांपी. आई हैव ए बिग सरप्राइज फॉर यू! . . .हमने तुम्हें कैलकटा ब्रांच का मैनेजर बनाने का फैसला किया है. दिस इज इमीडियेट. . .तुम वहां प्रमोट हो कर जाओगे और सीधे मुझे रिपोर्ट करोगे. तुम्हें परसों सुबह वहां रिपोर्ट करना है और मुझे उम्मीद है कि तुम्हें वहां अच्छा लगेगा. . .मैंने टिकेट्स के लिए कह दिया है, पर तुम कल सुबह रघुनाथन से मिल कर अपनी फ्लाइट कनफर्म करवा लेना. . और हां, मैंने सुना है कि कंपनी के बाहर मारपीट के किसी डिसप्यूट में तुम्हारा नाम लिया गया है. . . मेरी अपनी सलाह है कि पुलिस के चक्कर में मत पड़ो. . .खामख्वाह प्रॉब्लम्स हो जायेंगे और तुम्हारा जाना डिले हो सकता है. . .ओके? . . .गुड लक!

फोन का रिसीवर हाथ में पकड़े-पकड़े उसे चक्कर-सा आने लगा और वह सोफे पर थक कर फैल गया. लेकिन पास ही बैठी अपनी बीवी को जब उसने यह खबर सुनायी थी तो वह खुशी से चहक उठी थी.—देखा, तुम्हारे सितारे कितने बुलंद हैं! वह उससे लिपट गयी थी. तुम यहां से कहीं चले जाना चाहते थे. और तुम्हें यह प्रमोशन मिल गया. . .ओह, आयम सो हैपी! . . .अब सब ठीक हो जायेगा. . .

—हां, सब ठीक हो जायेगा. . .उसने छाती पर एक बोझ-सा महसूस करते हुए उत्तर दिया था और सिगरेट लगा कर बालकनी की तरफ मुड़ गया था.

* *

सारी रात उसकी आंखों में नींद की जगह न जाने क्यों सपनों का वह गांव उभरता रहा था. फूस और खपरैलों से ढंकी झोंपड़ियां, नारियल के पेड़ों के इर्द-गिर्द दौड़ती पगडंडियां, नागफनी की झाड़ियां और लोग—सीधे, सरल, सहज और उसके नितांत अपने लोग. लेकिन न जाने कब और कैसे वे चेहरे विकृत होने लगे थे और उसने पाया था कि उस माहौल में भी कार्बन के धुएं की महक फैल गयी है, दीवारों पर धड़ाधड़ पोस्टर चिपकाये जा रहे हैं. . .अंधेरे के उस सैलाब में उसे बिजली की कौंध की तरह इम्तियाज के चेहरे की वह आखिरी मुसकराहट दिखायी दी थी और फिर जैसे हर चीज पर वह फटा हुआ, फिनाइल की बू में बसा लाल कंबल फैलता चला गया था. . . धुएं में चिनचिनाती आंखों से उसने देखा था कि छोटी लड़की के फ्रॉक में बटन की जगह सेफ्टी पिन लगे हुए थे और बड़ी अपने हाथों में शराब के अद्धे की बोतल में भरा दूध पकड़े निस्तेज नजरों से उसके बांड्ट्रेक्स कॉलर को देखे जा रही थी. . . .

—आई हैव. . .आई हैव. . .आई हैव. . .वह अंधेरे में मुट्ठियां भींच कर वहशियों की तरह चिल्लाता हुआ बिस्तर से उठ खड़ा हुआ था और इसके साथ ही उसके पूरे स्वप्निल गांव का ढांचा किसी स्टूडियो के सेट की तरह भरभराता हुआ जमीन पर आ गिरा था.

* *

सुबह उसकी बीवी का चेहरा बालकनी के बाहर फैले समुद्र की सतह की तरह ही सौम्य और शांत था. उसने गौर किया कि उसकी तिपाई पर बेड टी रखते हुए वह साफ-साफ गुनगुना रही है. उसे नाश्ता देते वक्त भी वह अतिरिक्त सजगता से उसे हर चीज परोसती रही थी. बाद में तैयार हो जाने के बाद वह उसे लिफ्ट तक छोड़ने आयी थी. —जल्दी वापस आना! लिफ्ट के चलते-चलते उसने मुसकरा कर हवा में अपना हाथ हिलाया था. . .उत्तर में वह भी मुसकराया था. उसने भी अपना हाथ हवा में हिलाया था.

. . .दरअसल दांपत्य के उस उजले-उजले एहसास से गुजरते हुए वह अपनी पत्नी को यह बताने का साहस नहीं बटोर पाया था कि कहीं दूर भाग खड़े होने का अपना पुराना इरादा उसने बदल दिया है और वह रघुनाथन के पास फ्लाइट कनफर्म करने नहीं, बल्कि पुलिस स्टेशन बयान देने जा रहा है. . .

□□□

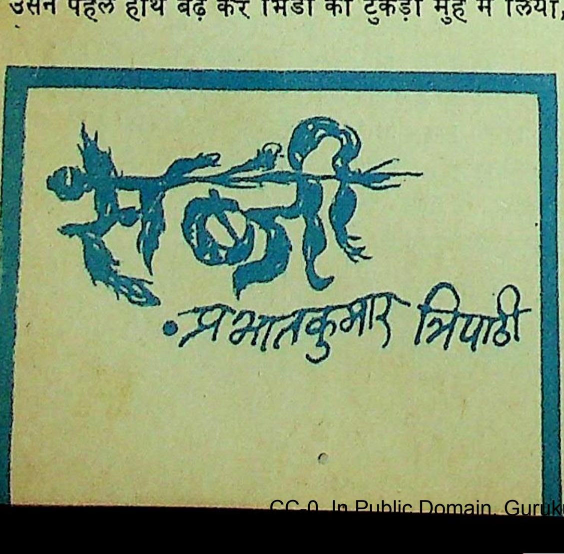
४०३, सी क्रेस्ट-१,
सात बंगला, वर्सोवा, बंबई-४०००६१

रसोई-घर के पास वाले बरामदे में ही खाने का इंतजाम था. हाथ-मुंह धोने के बाद लंबी बिछा दी गयी दरी पर वे बैठे गये. तौलिये से हाथ-मुंह पोंछते हुए गजानन अभी भी साहब और दफ्तर की बातें उगल रहा था. दिनेश रसोई-घर के भीतर चला गया था — शायद खाना निकालने में अपनी स्त्री का हाथ बंटाने क लिए. मजबूरन रामलाल को गजानन की बातों में अकेले शामिल होना पड़ा. कोई घंटे भर से चल रहे इस निदा-पुराण में उसकी दिलचस्पी अब नहीं रह गयी थी. साढ़े बारह हो चुके थे और उसकी अतड़ियां कुलबुलाने लगी थीं. सुबह चाय के साथ, सूखी रोटी भिगोकर जो नाश्ता किया था, उसका कोई नामोनिशान रामलाल के सुखट्टे शरीर और बद्दू चेहरे में नहीं था. भूख ने उसकी स्मृति के सुन्न इलाके में थोड़ी हलचल पैदा की थी. गहरे धुंधलके में डूबे वृक्षों के काले चेहरों से, बचपन के अस्त हो चुके दिन उसे अचानक याद आये थे — तब दो बजे की छुट्टी के समय वह भागता हुआ घर आता था, और मां के खाना निकालने के पहले ही चौके के चूल्हे पर रखी डेगची के भात में पनिथायी दाल सानता हुआ खाने पर ऐसे टूट पड़ता था, मानों महीनों का भूखा हो. आलू-तुरई का झोल हो, या कुकुरमुत्ते की सब्जी, उसकी जीभ ही नहीं, उसकी आत्मा भी तर हो जाती थी.

इस अचानक स्मृति के झोंके ने रामलाल में अदृश्य झेंप की सिहरन जगा दी और उसे लगा कि शायद उसी की वजह से उसका मुंह लार से भर गया है. दरअसल, यह स्मृति की वजह से नहीं हुआ था. गजानन की तरफ मुंह किये जब वह उसकी बकवास को जरूरी सम्मान दे रहा था, तभी दिनेश की औरत सब्जी परोस गयी थी. कनखियों से दिनेश की बीवी का मुआयना करते समय उसे भरवां बैंगन और तली हुई भिंडी की सब्जी भी दिख गयी थी. और गजानन की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा था — चाहे कुछ भी कहो, साहब हैं ईमानदार, और ईमानदार अफसर थोड़ा अक्खड़ और सख्त तो होगा ही.

लेकिन तब उसके दिमाग का असल हिस्सा सब्जी का संभावित स्वाद टटोलने में लगा था. तब तक दिनेश भी आकर उसकी बगल में बैठ गया.

—हां भई, अब शुरू किया जाये. उसने कहा. रामलाल शायद इसी वाक्य का इंतजार कर रहा था. बैंगन और भिंडी के अलावा दो लाजवाब चीजें और थीं— कुकुरमुत्ते की शोरबेदार तरकारी और खीरे का रायता. उसने पहले हाथ बढ़ा कर भिंडी का टुकड़ा मुंह में लिया,

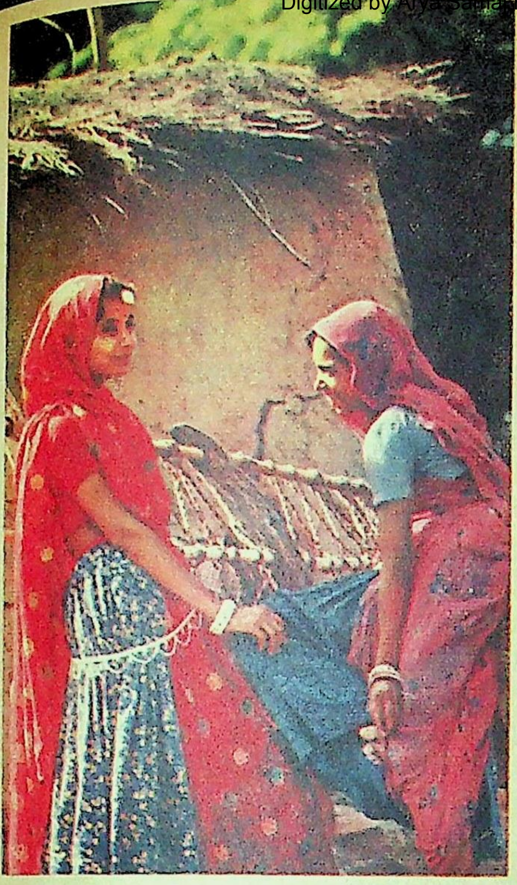


तो स्वाद उसके पूरे बदन में रेंगने-सा लगा. भिंडी यूं तो, मामूली तरीके से तली गयी थी, लेकिन रामलाल अरसे के बाद खा रहा था और वह उसे एकदम नयी लगी. रसेदार तरकारी में रोटी डुबोते तक, वह सोचना बंद कर चुका था — कुछ इस तरह कि गजानन की औपचारिक प्रशंसा के नकली बोल जब उसके कानों से टकराये तो उसे लगा कि उसके नंगे और घने एकांत में कोई बिना किसी पूर्व सूचना के घुस आया है. गजानन के ऊपर चिढ़ते हुए उसने याद किया कि उसके दादा हमेशा कहा करते थे कि खाना खाते हुए अगर तुम्हारा ध्यान कहीं और है, तो तय जानो खाना तुम्हारी देह में नहीं लग रहा है.

उसने देखा भी था, खुद दादा बड़ी तन्मयता से खाते थे. खासकर जब गोश्त बना हो या सहिजन का डाटा, तो उस चूसते-चबाते, वे कुछ नहीं तो आधा घंटा जरूर लगा देते थे. रामलाल को बचपन के वे धुंधले दिन दुबारा याद आये तो उसे थोड़ी तकलीफ हुई. खीरे का एक बारीक टुकड़ा उसके पोले दांतों के बीच कहीं फंस गया था और बड़ा अटपटा लग रहा था. उसने उंगली से वह टुकड़ा पकड़ने की कोशिश की, और उसे लगा कि वाकई अगर खाना स्वादिष्ट बना हो तो कितनी सारी फिजूल की परेशानियां अपने आप गायब हो जाती हैं.

रामलाल खुद अपनी इस बात का जिंदा उदाहरण था. पिछले वर्षों की उसकी जिंदगी अगर नीरस और खामोश रही आयी थी, तो इसका एक कारण यह भी है कि इन वर्षों धीरे-धीरे चीजों का शारीरिक स्वाद उसकी चेतना से अलग होता गया है. यह सच है कि अपने मामूली वेतन और बढ़ती हुई महंगाई को, दीवार की तरह तानकर, वह इस सारी शुष्कता का सामना करने में, इस हद तक सफल रहा है कि ऐन आज तक अपने जीने के तौर-तरीकों से, उसे कोई गहरी और ताबड़तोड़ शिकायत नहीं हुई है — लेकिन रात के काले सन्नाटे में, जब करवट बदलते-बदलते उसने अपने को असहाय महसूस किया है, तो हमेशा उसे लगा है कि उसका पेट ठीक से नहीं भरा है. सात-आठ सूखी चपातियां और पानी जैसा आलू झोल पेट में डाल देने भर से तृप्ति नहीं मिल सकती, यह बात वह अपने अनुभव से जानता है. आदमी का जिस्म किसी खटारे बस की पेट्रोल टंकी नहीं है कि उसे चलाने के लिए आप हर रोज खलासी की तरह पेट्रोल डाल दें. लेकिन अपने को चलाने के लिए उसने खाने का इस्तेमाल इसी तरह किया है और पाया है कि आहिस्ते-आहिस्ते वह अपने जिस्म के तमाम हिस्सों से कटता गया है.

और ऐसे में अचानक किसी मंत्र विद्या के जादू से कोई अगर महसूस करे कि वह अभी भी अच्छे-बुरे स्वाद की तमीज कर सकता है — तो कैसा लगेगा? रामलाल ने, कृतज्ञता के किसी शिष्ट अनुभव से परे, चावल में रसा मिलाते हुए सोचा कि शोखो के मसाले में तेजपत्ते की सुगंध का अभाव कहीं-कहीं चावल में कंकड़ की तरह गड़ रहा है. अगर मसाले में तेजपत्ता भी शामिल होता, तो शायद वह रसे में समूचा डूब चुका होता, मगर बाव-



जूद इस कमी के सब्जी में जान थी. ऐसा लग रहा था कि चवन्नी-पाव वाली यह खालिस आदिवासी डिश फ्राइड-लीवर का मुकाबला करने में कतई कमजोर साबित नहीं होगी. वैसे भी इसकी तुलना प्रायः लोग गोश्त से करते हैं -- सोचकर उसका हाथ, खाली हो चुकी कटोरी की तरफ बढ़ा. उसकी चिंता के एक खास हिस्से में, सब्जी का स्वाद किसी जिंदा जिस्म की मानिंद खुबा था और अपने सारे ऊल-जुलूल सोच के दौरान, वह स्वाद को छूने और उसे अपने में समो लेने के किसी नैसर्गिक आदेश की गिरफ्त में हरकतें कर रहा था. खाली कटोरे से हाथ वापस लाते हुए उसने चावल का दूसरा कौर मुंह में डालना ही चाहा था कि दिनेश की श्रीमती सब्जी का बर्तन हाथ में लिए उसके सामने खड़ी हो गयी.

—बस और नहीं, कहते हुए उसने कटोरे के ऊपर दोनों हाथ फैला दिये. और तृप्त भाव से सामने खड़ी औरत को निहारने लगा.

दिनेश की औरत सुंदर थी. गोरा रंग और इकहरी देह की शालीन ऊंचाई में, उसकी आंखें अद्भुत शांत चमक से परिपूर्ण थीं. गाल भरे थे और पूरा जिस्म किसी कुशल खिलाड़िन की तरह हरकतों से जीवित था. वह सब्जी परोसने के लिए झुकी थी और उसके बड़े-बड़े, गोल-गोल स्तन, रामलाल की आंखों में एक धड़कता हुआ बिंब रच रहे थे. एक ही पल में रामलाल के दिमाग में सैकड़ों इच्छायें उमरीं और उसे लगा कि सुंदर और जवान औरत ही इस बात का मर्म जानती है कि आदमी की जुबान उसके जिस्म का एक नाजुक हिस्सा है.

वह इसरार कर रही थी — क्यों? क्या सब्जी अच्छी नहीं लगी?

रामलाल मुस्कराया. सब्जी बनाने वाली साल भर पहले ब्याह कर आयी इस औरत में पल भर के लिए उसने अपना अतीत टटोलने की कोशिश की. वह वह थी. उसकी अपनी शख्सियत इतनी आजाद और अलग थी कि अपने नये नशे की झोंक में भी, रामलाल उसे अपनी कल्पना के इलाके में नहीं खींच सका.

—ठीक है थोड़ी-सी डाल दीजिये.

—थोड़ी-सी क्यों, कहकर उसने कटोरा पूरा भर दिया और फिर चावल ले आयी. रामलाल ने इंकार नहीं किया लेकिन उस वह चुप भी नहीं रह सका — आप खाना लाजवाब बनाती हैं.

वह मुस्करायी. उसके पतले, ईषत गुलाबी ओठों पर की वह मुस्कान, उसकी देह में रच गयी. रामलाल ने जीभ पर तैर रहे स्वाद की गिरफ्त से मुक्त होकर उसे देखा. अभी-अभी बारिश में नहाये, किसी हरे बगीचे की जीवंत चमक से घिरी यह औरत भी तरा-वट और स्वाद से भरी है; लेकिन...

वह अपने सोच के रास्ते में ठिठका. दिनेश की औरत पलटकर रसोई-घर की तरफ बढ़ रही थी. और दिनेश अपनी मूढ़ प्रसन्नता जाहिर कर रहा था— भई, उसे ज्यादा मत फुलाओ वरना अगर रोज-रोज उसने षटरस व्यंजन बनाने शुरू किये तो अपन तो लुट जायेंगे.

पति की बात उसे चुभ गयी. पलटकर उसने जो कुछ कहा, उसमें इस फूहड़ मजाक पर दुख का भाव था. उसने घुटे हुए स्वर में कहा था— ऐसा कौन-सा खजाना गड़ा है हमारे यहां जो लुट जाने की बात कहते हो.

दिनेश ने फिर कुछ नहीं कहा, लेकिन रामलाल को लगा कि वह शायद अपनी औरत के साथ बेहद हिसाबी तरीके से पेश आता है. उसने अंदाज लगाने के लिए बगल में बैठे दिनेश की तरफ कनखियों से ताका और तब उसे यकीन हो गया कि किसी दुर्भाग्यपूर्ण संयोग से इतनी खूबसूरत औरत इसके हाथ पड़ गयी है. दिनेश जिस तरीके से भात में तमाम सब्जियां सानकर उसकी लुगदी बना कर खाना भकोस रहा था, उससे साफ पता चलता था कि खाने के स्वाद की बारीक पहचान से यह आदमी कोसों दूर है. जो आदमी इस तरह के लजीज खाने के साथ, इस तरह का वहशी सलूक करता है, उसके साथ किसी खूबसूरत औरत का रहना और सोना कितना तकलीफदेह है, रामलाल ने सोचा और धन्य-वाद देते हुए कहा— तबीयत हरी हो गयी यार! मैं सोचता हूं आदमी की सालगिरह साल में एक ही बार क्यों आती है.

दिनेश मुस्कराया. गजानन खाना खाने के दौरान अप्रत्याशित रूप से चुप रहा था. सौंफ चबाते हुए उसने अपना योगदान दिया— प्यारे! यही आदमी अगर इस टपरिया ब्लॉक का अफसर होता, तो साल में तीन सौ

पैंसठ दिन सालगिरह मनाता.

दिनेश उसकी बात पर हंस पड़ा. ठहाके-सी हंसी, रामलाल के भीतर मछली के कांटे-सी खुब गयी. उसने इजाजत मांगी. उसका क्वार्टर भी उसी लाईन में था, और उसे ऐसी कोई जल्दी भी नहीं थी, लेकिन उसे डर था कि अगर कुछ देर इन दोनों के साथ रहा तो दिल और दिमाग में रच गये इस स्वाद की ऐसी-तैसी हो जायेगी.

अपने घर में कदम रखते ही उसे लगा कि भूल हो गयी है. बेहतर होता कि वह दिनेश के यहां ही रुक जाता—यहां तो. . .

उसकी पत्नी खाट पर दोनों टांगें पसारे चित्त सोयी थी और नन्हा बच्चू, उसकी उघरी छाती चूसते-चूसते सो गया था. बच्चू ने भात शायद इसी कमरे में खाया था क्योंकि उसकी जूठी थलिया स्टूल पर रखी थी और मक्खियां भिनभिना रही थीं. सोयी हुई औरत को अपनी पत्नी की तरह सोच कर रामलाल का जी मितला गया. दिनेश के घर की सब्जी, मानों एक-एक जलनभरी खट्टी डकार में बदल कर, उसके जायके को बदमजा कर गयी.

पत्नी का यह फूहड़-शयन देख कर, उसने अपनी स्मृति से झांक रहे सुकुमार चेहरे को जबरन परे ठेला. नहीं! उसे तुलना करने तक का हक नहीं है—उसने सोचा— घुटनों तक सरक आयी साड़ी को आहिस्ते से ठीक कर देने के बाद, रामलाल स्टूल पर रखी जूठी प्लेट उठा कर रसोई-घर के बर्तनों के बीच डाल आया.

और अब? रामलाल ने दुबारा अपनी औरत की तरफ देखा और फिर जैसे किसीने धकियाया हो, सामने के कमरे की ओर बढ़ गया. लंबी बेंच पर सीधा होते हुए उसे लगा कि जिस लजीज खाने की स्मृति को वह संजो-कर जीवंत रखना चाहता था, वह उसकी मुट्ठी से पानी की तरह फिसली जा रही है. उसकी मुट्ठी भिंच रही है. वह तय नहीं कर पा रहा है कि बेंच की कठियल सतह की वजह से नींद नहीं आ रही, या इस या उस औरत की वजह से.

★ ★

इतवार! हर इतवार को रामलाल इसी ढलान पर सायकिल उतारते हुए सब्जी मार्केट तक जाता है. पूरे एहतियात के साथ तीन दिनों के लिए हरी सब्जी खरीदता है और लौट कर झोला अपनी औरत के हाथ में थमा देता है.

इतवार! रामलाल ने कहा— चलो आज पिकनिक हो जाये. पिकनिक! रामलाल की औरत रसोई में प्याज के कतरे भूनती हुई भुनभुनायी— ना बाबा, आज तो ढेर काम है. आटा खत्म होने को है, सारे कपड़ें धोने हैं— ढलान पर तेजी से भागती सायकिल पर बैठे रामलाल ने ब्रेक के झटके का अनुभव किया. घर से निकलते समय पत्नी ने झोले के साथ तीन रुपयें उसे थमाये थे. न तो उसने किसी पिकनिक की बात की थी और नही उसकी पत्नी ने कुछ कहा था और इस तरह पूरे वाक्यों के साथ औरत का याद आना. . . रामलाल को लगा कि वह हर पल अपने साथ अपनी समूची गृहस्थी लाद कर चलता है.

ढलान के बाद की यह पहली चढ़ाई थी. पैरों को तान कर उसने कुछ अतिरिक्त ताकत उंड़ेलने की कोशिश की और फूलती सांस के बीच महसूस किया कि रंगीन तितलियों-सी कुछ बेजुबान इच्छाएं हर कहीं उसके साथ रहती हैं. ऐसा लगता है, जैसे वे कभी नहीं मर सकतीं. रामलाल ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की है कि इन फिजूल की इच्छाओं से निजात पा जाये लेकिन उसे लगता है कि अगर ये उसके साथ नहीं रहेंगी, तो चढाव-उतार वाली दैनिक सड़क पर वह इस कदर बेमालूम ढंग से ढेर हो जायेगा कि उसकी लाश की शिनाख्त भी नहीं की जा सकेगी.

इतवार! उसने जानबूझ कर याद किया. आखिर दिनेश भी तो उसी दफ्तर का एक किरानी ही है. उसे भी तो कुल जमा तीन सौ रुपये मिलते हैं. उसने अपने घर में कोई खजाना तो नहीं गाड़ रखा है.सच पूछो तो सब कुछ आदमी की इच्छा का खेल है. महीने पंद्रह दिन में आप, एक बार भी अगर वक्त की रफ्तार से छिटक कर नहीं सुस्ता रहे, तो तय जानिये यह रफ्तार आपको खा जायेगी. महीने पंद्रह दिन में— उसने लगभग निर्णय करने-सा सोचा, चेंज जरूरी है.

आदमी के भीतर का अदृश्य हिस्सा किसी तिलिस्मी बक्से की तरह है, रामलाल ने अपने भीतर झांकते हुए सोचा. जाने कितने गुप्त स्थान उस बक्से में होते हैं. ढक्कन खोलो तो फिर एक के बाद एक. . . रामलाल खुद यह नहीं समझ सका था कि कुछ चेंज की बात सोचते-सोचते, वह धुइयां और गोश्त की तरकारी और लौकी के लच्छों की स्वीट-डिश तक कैसे पहुंच गया था. अरबी के बारे में तो वह श्योर था कि चार आने पाव तक जरूर मिल जायेगी लेकिन गोश्त. . .?

धुइयां और गोश्त की तरकारी की बात सोचते हुए रामलाल के दिमाग में , अपने बाल्य-बंधु रशीद का चेहरा भी उभर रहा था और कितनी ही शक्लहीन इच्छाएं कुलबुला रही थीं. रशीद के घर में ही उसने पहली बार इस तरह की कोई तरकारी चखी थी. कितने साल हो गये उस बात को? रशीद के चेचकभरे चेहरे और उसकी मुक्त हंसी के बीच, गिलट की थाली में भात और गोश्त की तरकारी का वह मिलन अब इतिहास की एक किताबी-बात हो कर रह गया है. रशीद की अम्मी, कभी करेले की सूखी जायकेदार सब्जी, कभी तली हुई मछली, कभी गोश्त की तरकारी से उसकी किशोर-आत्मा को तर कर देती थी. अब अगर रशीद की याद आती है तो इस तरह, कि वह अपनी सिलाई-मशीन लिये अपनी टपरा-दूकान पर बैठा है. रामलाल वहां से गुजर रहा है. रशीद उसे चिल्ला कर आवाज दे रहा है. दोनों साहू के कालिख-भरे होटल में घुस कर चाय पी रहे हैं. और रशीद पछतावे के ईर्ष्या मिश्रित स्वर में कह रहा है— बड़ी गलती हो गयी यार, कि मैं दुबारा मैट्रिक के इम्तहान में नहीं बैठा, नहीं तो तुम्हारी तरह किसी दफ्तर में बैठा ऐश कर रहा होता. . .

सब्जी -बाजार हर दिन-सा हरा और ताजा था; लोग भी उसी तरह व्यस्त और भागते हुए. थोड़ी देर पहले, रामलाल ने रशीद के बुझे चेहरे के साथ तुलना करते

हुए एक गहरी सांस भरी थी. बाजार पहुंच जाने के बाद उसने शायद सोचा भी नहीं कि अभी-अभी वह गोश्त की बात सोच रहा था, सेर भर आलू-प्याज लेने के बाद, उसके पास एक रुपये का मला कुचला नोट भर बचा था. एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि इतना ही ले कर लौट चले. लेकिन अगर यही खरीदना था, तो क्वार्टर के पास वाले मारवाड़ी की गुमटी क्या बुरी थी. अपनी इतनी दूर की यात्रा को सही सिद्ध करने के लिए उसने चार आने का साग खरीदा और फिर उसी रास्ते पर मुड़ गया.

उसकी औरत बाल्टी में धुले-निचुड़े कपड़े लिये, उसे आंगन में तने तार पर सुखा रही थी. उसे, उसके आने की खबर तक नहीं हुई. वह चुपचाप खड़ा, काम में डूबी अपनी स्त्री को देखने लगा. पता नहीं क्यों, रामलाल को लगा कि यह औरत नहीं है, जिसे वह ब्याह कर लाया था— हर्गिज नहीं है. इस बात पर विश्वास करना कितना कठिन है, कि यह मरियल हड्डी, हांफती हुई औरत वही है, जिसके बाजुओं में कसे जाने के बाद, उसके जिस्म का हर हिस्सा सितार की तरह बजने लगता था; और यह. . .चिरौंटे के पौधे शुरू गरमी में ही खड़खड़हे हो जाते है, शायद उसीमें से किसी ने औरत की शक्ल ले ली है— हर्गिज नहीं; रामलाल ने सोचा और कहा— सब्जी ले आया हूं.

औरत मुड़ी— अरे; आज तो बड़ी जल्दी आ गये, क्या-क्या ले आये?

रामलाल ने थैला आगे बढ़ा दिया और खुद घर के भीतर घुसा. स्त्री उसके साथ-साथ घुसी. उसने तब तक थैले का मुआयना कर लिया था— क्या बात है? आज कोई हरी सब्जी नहीं मिली?

—नहीं, मन नहीं हुआ, उसने अहिस्ते से कहा. वह चुप थी. उसे देखते हुए, रामलाल ने पता नहीं किससे पूछना चाहा— यह ऐसी इतनी बीमार, इतनी जीवनहीन क्यों हो गयी है?

* *

शुरू बारिश के दिन थे. मौसम किसी मनमौजी की तरह कपड़े बदलता था. कभी तार आने की खबर-सी अचानक बरसात, तो कभी मीठी नीलिमा से भरा युवा आसमान. . .क्वार्टर के सामने, दरवाजे पर बैठा रामलाल आंगन की ओर चुपचाप ताक रहा था. आंगन मैदान-सा विस्तृत था. और बारिश की वजह से वहां घास उगने की शुरुआत हो गयी थी. चिरौंटों की झाड़ियां धरती फोड़ कर बाहर निकल आयी थीं, और उनके शिशु चेहरों के हरे रंग में अभी नवजात बच्चों की-सी पवित्रता थी.

इतने खुले, इतने हरे इलाके में अपने को पा कर रामलाल थोड़ी देर के लिए सब कुछ भूल जाता था. उसे लगता था जैसे उस आजाद हरियाली ने उसे चारों तरफ से घेर कर उस कुरूप संसार से अलग कर दिया है और अब वह सांस ले रहा है, अपनी सांस.

लेकिन इस तरह का कोई अहसास इतनी कम देर क्यों टिकता है? रामलाल ने सोचा. अभी थोड़ी देर पहले की झमाझम बारिश के बाद आकाश निथर कर नीला हो गया था. बारिश की नन्हीं-नन्हीं बूंदे, चिरौंटों की कोपलों पर ठहरी थीं. रामलाल उन्हें गौर से देखता हुआ, खामोश टहलने लगा.

—वहां बाहर क्या कर रहे हो? बच्चू को गोद में लिये-लिये उसकी औरत ने पूछा.

—कुछ नहीं, यूं ही, बस. . . रामलाल ने वाक्य पूरा नहीं किया. स्त्री ने, उसे फिर से, घर में, संसार में खींच लिया था. उसका संन्यास बिखर उठा था.

औरत बाहर आ गयी. आंगन के चारों तरफ आंख फेर कर बोली— कितना बड़ा आंगन है, अगर बाड़ लगा दो तो पूरा बगीचा तैयार किया जा सकता है.

रामलाल चौंक कर पलटा. घूर-घूर कर अपनी औरत की तरफ देखने लगा. क्या हो गया है? पल भर में. ये शब्द शब्द नहीं हैं, मानों किसीने परीक्षा हाल में बैठे रामलाल को चुपके से गणित का कोई कठिन सवाल बता दिया है. इसके बाद? इसके बाद, क्या मुमकिन है कि रामलाल थिर खड़ा रहे? उसकी चेतना लहरायी, उसके सामने किसी भी समुद्र की विशाल लहरें बौनी थीं. उन लहरों में डूबते-उतराते वह पल भर में कितना कुछ सोच गया. कितना कुछ हरा मीठा जीवनभरा कि जुबान बच्चे की किलकारी में बदल गयी. एक ऐसी खुशी में, जिसका इजहार सुनाने के मकसद से नहीं होता— सुनने और सुनाने की सांसारिक-भाषा से मुक्त हो कर रामलाल ने कहा— बाड़ का क्या है, किसी पेड़ की चार डगालें काट लो, तो कुछ नहीं तो बारह चार फुटिये खूंटे तो बन ही जायेंगे.

यह सब कहते हुए रामलाल का मन उड़ने लगा था. वह खूंटे काटने और गाड़ने, बाड़ लगाने की प्रारंभिक बाधाओं को पार कर, जहां खड़ा था, वहां तुरई की लतर थी, और भिंडी के इठलाते हुए नन्हें पौधे— बैंगन और मेथी का साग. कुम्हड़ा और लौकी. वह इन्हें जीवित बच्चों की तरह, अपनी आंखों के सामने जवान होते, मस्ती से बढ़ते देख रहा था. . .

रामलाल को पत्नी की आपत्ति पर गुस्सा नहीं आया. एक अप्रत्याशित कामनाभरी दृष्टि से, पल भर को वह उसे ताकता रहा,जैसे अपनी आंखों से छू कर उसके इच्छाहीन जिस्म के तमाम हिस्सों को जगा रहा हो.

—मालती, उसने आहिस्ते से कहा, लगता है तुम कभी देहात में नहीं रहीं, वहां के लोग कंटीले तार की फेंसिंग की कल्पना ही नहीं कर सकते, उन्हें तो सब कुछ अपनी धरती से मिलता है, अगर डगालों से खूंटे बनाये जा सकते हैं, तो छोटी डगालियों से पूरा बाड़ भी तैयार किया जा सकता है, प्राइमरी स्कूल के शिक्षक की तरह अपनी स्त्री को समझाते हुए, उसने निर्णय करने-सा कहा— मैं अभी संतू के यहां से कुल्हाड़ी ले कर आता हूं.

—क्या तुम खुद डगालें काटोगे? स्त्री ने आशंकित हो कर पूछा.

—तो क्या तुम समझती हो, मेरे हाथ सिर्फ वही सब करने को हैं, कहते हुए रामलाल ने लाड़ में आंख मारी, तो मालती लजा गयी. रामलाल फिर नहीं रुका.

आंगन से थोड़ा परे अनेक वृक्षों का एक छोटा-मोटा-

बेडेकर अचारों की शीशी जैसी ही शीशी और फिर वैसे ही लेबल फिर भी असली बेडेकर अचार नहीं!

जिन दिनों में अचार को शीशी में भर कर बेचने का रिवाज न था, उन दिनों हमनें अचार को शीशी में भर कर बेचने की शुरुआत की। शीशी का खास मोल्ड (सांचा) बनवाया, लेबल तैयार किये, मशीन से सीलबंद करनेवाले ढक्कन बिठाये। इतना ही नहीं शीशी में अचार ज्यादा दिन टिकें, इसके लिये अधिक परिश्रम भी किया।
मनपसन्द रुचि और आल्हादक स्वाद के अचार पेश करने के लिये हमने जो जो कष्ट झेले, उसकी सीमा नहीं।
मतलब यह अचार बनाने के क्षेत्र में हम अग्रणी हैं।
शीशी में अचार मिलना अब कोई नयी बात नहीं, लेकिन इनकी लोकप्रियता का श्रेय है बेडेकर को। लेकिन हमारी इस लोकप्रियता को देख कर अनेक अचार-निर्माताओंने बेडेकर अचार की शीशी जैसी ही शीशी और वैसा ही लेबल लगाकर अचार बेचना शुरू किया है।
लेकिन ग्राहक भी समझदार है। वे असली बेडेकर अचार ही खरीदते हैं। बढ़िया जायका और आल्हादक स्वाद केवल बेडेकर अचार का ही है। बढ़िया अचार बनाने का हमारा दीर्घ अनुभव है। जी हाँ, १९२१ से!
बढ़िया अचार बनाना इतना आसान नहीं कि चट मँगनी, पट ब्याह! बढ़िया और विविध प्रकार के अचार केवल बेडेकर ही दे सकते हैं क्योंकि अनुभव लेते लेते बेडेकर के अचार भी अपने ढंग के निराले हो गये हैं।



B. Vasant/VPB/2-76

बेडेकर बम्बई ४

बेडेकर नाम पढ़कर ही अचार खरीदिये

सा जंगल था. संतू के पास से कुल्हाड़ी ले कर, वह उसी की तरफ बढ़ा. एक विशाल वृक्ष के मोटे खुरदुरे तने के करीब खड़े हो कर, उसे लगा कि बावजूद अपने संकल्प और इरादे के, उसके पैर थरथरा रहे हैं. उसने कुल्हाड़ी की सख्त बेंट कस कर पकड़ ली. और कल्पना करने लगा, कि कुल्हाड़ी लिये-लिये, वह चारफुटिये तने के ठीक बाद शुरू होने वाली, दो विशाल शाखाओं के बीच की, दोलना जैसी जगह पर उछल कर बैठ गया है. इस खयाल से उसके पैर जोर से कांपे. एक बार तो विचार हुआ कि संतू से कह कर भी डगालें कटवायी जा सकती हैं. तभी भीतर किसी ने ललकारा, और उसने बिना कुछ सोचे मालती को आवाज दी.

वह रसोई घर में थी. बच्चू शायद दूसरे कमरे में चीख-चिल्ला रहा था. बच्चू को गोद में ले कर लाड़ से चूप कराते वह पेड़ तक आयी.

—तुम थोड़ा कुल्हाड़ी पकड़ो, मैं जब ऊपर बैठ जाऊं, तो मुझे थमा देना.

—तुमसे नहीं होगा. मालती ने कुल्हाड़ी लेते हुए कहा. अपमान और गुस्से में भर कर उसने मालती की तरफ देखा. फिर किसी अनजानी ताकत की पेंग में सवार, खुरदुरे तने से लिपट गया. थरथराते हुए, मगर पूरी सावधानी और विश्वास के साथ पंजे गड़ाते हुए, जब वह उस सुरक्षित जगह पर पहुंच गया, जहां से शाखाएं शुरू होती थीं, तो उसने विजय की गर्व-भरी आंखों से मालती की ओर देखा— लाओ, अब कुल्हाड़ी मुझे दो और वह पतला तौलिया तो ले आना.

बुरबक की तरह खड़ी मालती उसकी ओर ताक रही थी. वह मुड़ी और दुबारा दौड़ती हुई आयी. तौलिये को कमरपट्टे की तरह लपेट कर, कुल्हाड़ी की बेंट उसमें फंसा देने के बाद, उसने अनुभव किया, कि उसके विश्वास ने उसकी स्मृति को हाथ-पैर दे दिये हैं. किशोर-दिन, उसके शरीर में उछल-कूद मचा रहे थे, और वह डगाल पर आगे बढ़ रहा था. आधे घंटे के परिश्रम के बाद उसने पेड़ की खूब मोटी और घनी शाखा काट कर गिरा दी और अपनी हथेलीयों को देखने लगा. दोनों हथेलियां छिल गयी थीं और लाल गांठे उभर आयी थीं, लेकिन उसका मन ऐसे उछल रहा था, मानो कबड्डी मैच के हाफ-टाइम तक उसकी टीम जीत में चल रही हो. वह सरसराता नीचे आ गया. उसकी हरकतों से, उसका दैनिक व्यक्तित्व कट कर अलग होता जा रहा था. उसके भीतर उसका अतीत ही नहीं भविष्य भी घुमड़ रहा था. यह बादलों की घुमड़ थी. बारिश और गीली मिट्टी की सोंधी गंध थी— और वह, वह गड्ढा खोद रहा था. वह कुदाल चला रहा था. वह पसीना पोंछ रहा था. वह पसीने में नहा रहा था. वह याद कर रहा था. वह सपने देख रहा था. वह अपनी इच्छा को नाम दे रहा था.

—देखा, पूरा हो गया न, चारो तरफ से घिरे, किसी खेत की तरह तैयार आगन को मुग्ध हो कर ताकता हुआ वह बोला.

—मालती बुदबुदायी— तुमको अगर धुन लग जाये तो...

—देवीजी, यह धुन-फुन नहीं है, प्यार है प्यार, उसने कहा और एकबारगी मालती से लिपट गया.

—तुम्हें तो घर-बाहर कुछ नहीं सूझता, मालती छूटती हुई बोली, लेकिन रामलाल अपने अचानक कहे गये वाक्य में डूबा था.

इतनी थकान के बाद भी रात को रामलाल की आंखों में नींद नहीं थी. बगल की बड़ी खाट पर मालती बच्चू के साथ बेखबर सोयी थी. बाहर बादलों की गड़गड़ाहट और कौंधती हुई बिजली की चमक. रामलाल चुप लेटा रोशनदान की ओर ताक रहा था. ज्योंही बिजली कौंधती, उसकी इच्छा होती कि मालती को जगा दे और बताये कि बारिश हो रही है. वह बारिश की सोचता, तो उसे अपना आंगन हरा, लहलहाता हुआ दिखाई पड़ता. तुरई की बेल ऊपर चढ़ गयी है. मिर्चों के फूल आ रहे हैं. बैंगन की दोनों किस्में जवान हो रही ह. भिंडी तो दो फीट ऊंची हो गयी. लेकिन कितने दिन में आते हैं फल? वह सोचता तो लगता, जैसे वह मालती का पेट छू कर अंदाज लगा रहा है, अपनी रचना को जीवित महसूस कर थरथरा रहा है. वह एकदम उत्तेजित हो गया.

—देखो, देखो—कितनी जोर से बिजली चमक रही है. उसने मालती को हिला कर जगा दिया.

—क्या हुआ? वह निंदासे स्वर में बोली.

—बारिश होगी, खूब जोर की बारिश होगी, वह बुदबुदाया और मालती को फिर हिलाने लगा—सुनो, कहीं ऐसा तो नहीं कि बारिश में बीज बह जायें और...

मालती कूं-कां करती रही. वह उस पर हाथ फेरता रहा. फिर मालती तुनक गयी — क्यों तंग कर रहे हो, सोने दो न!

वह चुप हो गया. उसने आंख मूंद कर सोने की कोशिश की. तभी जोरों की गडगड़ाहट हुई और बड़ी बड़ी बूंदों वाली टपाटप बारिश शुरू हो गयी. उसे लगा जैसे वह खाट पर नहीं है, बल्कि खुले आंगन में भीग रहा है. अर्थहीन आवाज में चीख रहा है, चिल्ला रहा है — चिल्लाये जा रहा है कि अचानक उसे याद आया कि गेट के खूंटों पर जो टेढ़े कील लगाये गये थे, वहां तो उसने कोई बाड़ नहीं फंसाया है. लकड़ी उसने जरूर काटकर रखी थी. मालती से कहा भी था कि जब कोई बाहर जायें, या भीतर आये तो लकड़ी को कील में फंसाकर रास्ता बंद कर दे. पता नहीं उसने बंद किया भी या नहीं? उसे शंका हुई कि अगर गेट खुला रह गया तो गाय-गोरू घुस आयेंगे, लेकिन फिर उसने सोचा कि आज तो बीज डाले हैं, जब तक पौधे अंकुरा नहीं जाते जानवरों के घुसने का डर नहीं है. अपने को दिलासा देने की कोशिश में भी, उसके मनमें बराबर खटका बना रहा और इस परेशानी में उसने बत्ती जला दी.

मालती रोशनी की चौंध से चौंक कर जाग गयी— क्या हुआ? उसने पूछा.

—क्या तुमने गेट पर वह लकड़ी फंसायी थी उसने पलट कर सवाल किया.

—लगता है, तुम इस बगीचे के पीछे पागल हो जाओगे, अगर नहीं भी लगा हो तो आज ही कोई तुम्हारे



नंदन कानन को तहस-नहस नहीं किये दे रहा है. मालती गुस्से में बोली.

उसने कुछ नहीं कहा. दिमाग में बैठ गये शक को दूर करना जरूरी था. उसने छाता लिया और झमाझम बारिश में दरवाजा खोल कर बाहर आ गया. गेट सावधानी से बंद किया गया था. वह चुपचाप छता खोले काले सन्नाटे में अपने आंगन को देखता रहा.

★ ★

इतवार था. अभी कुछ दिन पहले पैदा हुए बच्चे के जन्म की खुशी से भरा और पूर्ण. रामलाल आंगन में लहलहाते पौधों को ताकता प्रसन्न खड़ा था. तुरई की बेल बांस के सहारे ऊपर चढ़ कर लहलहा रही थी. तुरई लगी भी थी खूब. भिंडी ज्यादा नहीं फल रही थी, लेकिन तीन-चार दिनों में एक जून की सब्जी के लिए काफी थी. बैंगन, चिकने ताजे और खूबसूरत लगते थे. अपनी रचना में अपनी आत्मा के जीवन का प्रमाण देखते हुए रामलाल चिल्लाया –– सुनो, प्याज जब तक पूरा बादामी न हो जाये, सब्जी मत डालना.

––तुम खुद ही आ कर क्यों नहीं पका लेते.

––अरे नहीं भाई, जिसका काम हो, उसीको अच्छा लगता है. रामलाल ने क्रोधहीन स्वर में कहा. आज वह प्रसन्न था. कोई मिलावट नहीं करना चाहता था, आज की प्रसन्नता में. आज उसके बच्चे का जन्मदिन था. उसने पूरी योजना के साथ भरवां बैंगन बनाने का संकल्प किया था. बाजार से गरम मसाला वह स्वयं खरीद कर लाया था. देर तक खुद सिलबट्टे पर प्याज पीसता रहा था. और सब्जी ताजा थी –– उसके अपने बगीचे की.

अगर दिनेश और उसकी श्रीमती को भी बुला लेते तो अच्छा होता –– उसने सोचा. चुप रहा. पता नहीं क्यों उसे लगा कि ऐसा करना आत्म प्रदर्शन होगा. पर भरवां बैंगन की बात सोचते हुए दिनेश की औरत की मुख-छवि उसकी आंखों के सामने स्थिर हो गयी.

––तुमने बैंगन में तेजपत्ता तो छोड़ा है न?

––तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया है; बैंगन की सब्जी तुमने खुद पकायी है.

–ओह, रामलाल बुदबुदाया. फिर घर के भीतर घुसा. बच्चू रसोई के बगल वाले कमरे में बैठा अपनी चित्रकारी चला रहा था. लाल पेंसिल हाथ में लिये सादे कागज पर घोड़ा, हाथी, बंदर और जाने क्या-क्या बनाने के लिए लकीरें खींच रहा था.

आज खाना खा कर शहर की ओर चलेंगे, उसने सोचा और मालती के लिए कुछ ले आयेंगे. निर्णय की उत्तेजना से भरा वह दौड़ कर मालती तक पहुंच गया. ताजा भिंडी और मसाले की मिली-जुली गंध उसके नथुनो में भर गयी. उसके मुंह में लार आ गयी.

––भूख लग गयी है क्या? मालती ने पूछा.

––ऐसी लाजवाब सब्जी के इतने करीब किसे भूख नहीं लग जायेगी.

––मेरे मुंह में तो बनाते-बनाते ही पानी आ रहा है, मालती मुसकरा कर बोली–– चलो फटाफट भिंडी तल लेती हूं, फिर सब एक साथ खाने बैठ जायेंगे.

और थोड़ी ही देर बाद उनकी थालियां लग गयी थीं. भरवां बैंगन के स्वाद के नशे में विभोर, रामलाल मालती को घूरने-सा देख रहा था. मालती ने आज बाल धोये थे. धुले गीले केश उसकी पीठ पर बिखरे थे. गोरे माथे पर लाल बिंदी दिपदिपा रही थी. बच्चू नायलोन के नीले बाबा-सूट में दमक रहा था.

★ ★

लेकिन सब कुछ एक भयानक सपने की तरह था. नींद टूटने के साथ ही उसकी सहमी आंखे बच्चू की तरफ मुड़ी थीं. बच्चू मां की छाती से दुबका, गाफिल था, लेकिन रामलाल के कानों में दहाड़ अभी भी गूंज रही थी. इस सिरपैरहीन सपने के आतंक में डूबा, रामलाल सोच रहा था कि कलकत्ते का चिड़ियाखाना उसके दिमाग में कहां दुबका पड़ा था. पिंजरा अचानक कैसे खुल गया था, अगर मान लो सचमुच खुल जाये तो, रामलाल ने सोचा और सिहर गया. तभी उसने संतू की आवाज सुनी –– रामलाल बाबूऽऽसंतू ने खूब जोर से पुकारा था. उसकी आवाज सुन कर रामलाल को लगा कि जरूर कोई दुर्घटना हो गयी है. रामलाल कमरे के भीतर से ही चिल्लाया––क्या बात है संतू?

––अपना बगीचा बचाइए सरकार, सांड़ घुस आया है, संतू चिल्लाया. उसकी आवाज के साथ ही पत्थर का एक टुकड़ा, दरवाजे पर आ कर लगा. रामलाल ने कांपते हाथों से दरवाजा खोल दिया.

पेड़-पत्तों की बाड़ फलांग कर एक मुस्टंडा सांड भीतर घुस आया था और गुर्रा रहा था. संतू दूर से पत्थर मार-मार कर, उसे भगाने की कोशिश में लगा था. देख-कर रामलाल हतवाक् हो गया. घबराहट में उसे रुलायी आ गयी. उसने आर्तनाद-सा किया और चिल्लाया–– मालतीऽऽऽऽ घबरायी हुई मालती दरवाजे तक आयी तो नजारा देख कर कांप गयी–– हे राम, इसने तो पूरा सत्यानास कर दिया है.

रामलाल ने देखा कि बच्चू फुदकता हुआ जा कर बगीचे मे खड़ा हो गया है. सांड गर्राता हुआ उसकी तरफ बढ़ रहा है. सांड उसके बिलकुल करीब आ गया है. नन्हा बच्चू बिना कुछ सोचे मस्ती में किलक रहा है. ताली बजा रहा है. छोटी-छोटी कोपलों की तरह उसकी नर्म नाजुक हथेलियां धूप में चमक रही हैं. सांड आगे बढ़ रहा है. . .

उसने आहिस्ते से मालती को परे हटाया और गेट का मोटा डंडा हाथ में ले कर कूद पड़ा. पहला वार सांड के माथे पर भरपूर पड़ा. क्रोध में तमतमा कर वह रामलाल के ऊपर झपटा. हवा में उछल कर रामलाल चारो खाने चित्त गिर पड़ा. उसके सिर से खून की फुहार छूटने लगी. मालती चिल्लायी ––कोई बचाओ ऽऽऽऽ! रामलाल की आंखें मुंदने लगीं लेकिन. . . लेकिन उसके हाथ का डंडा हवा में ऐसे घूमता रहा, जैसे मरते-मरते भी अपने दुश्मन को ढहा देने की आखिरी पवित्र कोशिश कर रहा हो. □□□

लेक्चरर, हिंदी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, राउरकेला (ओड़िसा)

सरेआम

मिथिलेश्वर

अभी पिछले हफ्ते ही मेरे दोस्त की हत्या कर दी गयी. मुझसे तथा अपनी पत्नी और बाल-बच्चों से दोस्त सदा-सदा के लिए अलग हो गये. अब वे कभी लौट कर नहीं आयेंगे. उनका अभाव अब कभी भी पूरा नहीं होगा. उनके अरमान और सपने तथा उनकी योजनाएं सब धरी की धरी ही रह गयीं. अपने परिवार को वे एकदम बेसहारा तथा अनाथ करके चले गये. अब उनके परिवार के लिए हर शहर की हर गली अनजान तथा हर रास्ता अंधेरे से भर गया है. कल किराये के मकान से उन्हें निकाल दिया जायेगा. फिर वे कहां जायेंगे? कहां रहेंगे? क्या खायेंगे? तथा क्या करेंगे? इतने सारे सवाल मेरे सामने खड़े हो जाते हैं हालांकि यह बात दोस्त भी जानते थे. वे जानते थे कि उनके बाद उनका परिवार गहन अंधेरे के बीच घिर जायेगा. उन्होंने कई बार मुझसे इसकी चर्चा भी की थी. शायद अपनी हत्या की सूचना पा कर वे इसीलिए ज्यादा चिंतित भी हो गये थे. अपने को बचाने के लिए उन्होंने हर संभव प्रयास भी किया था. लेकिन वे सफल नहीं हो पाये थे. अपनी पूर्व निश्चित हत्या का शिकार वे काफी आसानी से हो गये थे. उनकी पत्नी तथा उनके बच्चों के साथ-साथ मैं भी उनकी होने वाली हत्या से अवगत था. लेकिन हममें से कोई भी दोस्त को नहीं बचा सका. वे हमारी आंखों के सामने ही लुट गये. हमने उनके लिए कुछ भी नहीं किया हालांकि हमें कुछ करना चाहिए था. लेकिन क्या करना चाहिए था? और परस्पर विरोधी ये सवाल हमें घुटते रहने के लिए ही मजबूर कर देते हैं. घुटते रहने के अलावा हम कुछ भी नहीं कर पाते. विकल्पहीन स्थितियां हमारे अंदर पूरी तरह पसर चुकी हैं.

★ ★

इस शहर में दोस्त का कहीं भी अपना मकान नहीं है और न जगह-जमीन ही. इस शहर से काफी दूर भोजपुर जिले के एक कस्बे में दोस्त का जन्म हुआ था. लेकिन वहां भी उनका अपना मकान नहीं था. उनके मां-बाप किराये के मकान में ही रहते थे तथा जीने-खाने के लिए कई रोजगार करते थे. पता नहीं वे कहां से आये थे तथा मूल निवासी कहां के थे? दोस्त ने इसके बारे में मुझे कुछ बताया ही नहीं. दोस्त ने मुझे सिर्फ इतना ही बताया है कि अट्ठारह साल की उम्र में उनके मां-बाप उन्हें छोड़ कर सदा-सदा के लिए चले गये. फिर मजबूरन दोस्त को किराये के मकान को छोड़ देना पड़ा, क्योंकि दोस्त कुछ भी नहीं कमाते थे. अट्ठारह साल की उम्र तक वे मां-बाप की ही कमाई पर पलते रहे थ. लेकिन मकान मालिक को दोस्त के प्रति तनिक भी दया और सहानुभूति नहीं आयी. उसने काफी सख्ती से काम लिया तथा दोस्त को अपने मकान के बाहर कर दिया.

मकान से बाहर होते ही अपनी जन्मभूमि वाला वह कस्बा दोस्त के लिए एकदम बेगाना हो गया; फिर वे उस कस्बे को छोड़ कर शहर की ओर चल पड़े. तब कुछ भी नहीं था उनके पास. सिर्फ दो चीजें ही उनके पास बची थीं—एक अट्ठारह साल की उनकी उम्र तथा दूसरी मैट्रिक की डिग्री. मां-बाप की जिंदगी में ही कस्बे के स्कूल से दोस्त ने मैट्रिक की डिग्री ले ली थी. यही दोस्त की संपत्ति तथा सारी जमा-पूंजी थी.

वैसे दोस्त से दोस्ती बनने और जान-पहचान से पहले भी मेरी कई बार मुलाकात हो चुकी थी—कभी किसी इम्प्लायमेंट एक्सचेंज की क्यू में खड़ा हो कर नाम दर्ज करवाते वक्त तथा कभी मैट्रिक की योग्यता वाले पद पर इंटरव्यू देने के लिए जुट आये युवकों के बीच. फिर भी हम एक दूसरे के लिए अजनबी ही थे. हालांकि चेहरों से हमें यह स्पष्ट लगता था कि इससे पहले भी हम कहीं मिल चुके हैं लेकिन चाह कर भी हम यह जता नहीं पाते थे. शायद कभी नहीं ही जानते. इसी तरह बराबर मिलते रहने के बाद भी अजनबी बने रहते. लेकिन एकाएक एक घटना घट गयी. भीड़ से निकल कर अनायास ही हम एक दूसरे के करीब आ गये. फिर अपने खालीपन और टूटन को सहने के लिए एक दूसरे से जुड़ना हमारे लिए जरूरी हो गया.

दरअसल, बात यह हुई कि हजारों उम्मीदवारों के बीच से कुछ पद के लिए चुने गये चंद उम्मीदवारों में हमारा नाम भी आ गया. लेकिन साक्षात्कार के लिए जब हम पहुचे तो हमें यह कह कर आफिस से बाहर कर दिया गया कि आप लोगों का नाम गलती से आ गया है. जितनी सीटें खाली थीं, उतने कैंडिडेट पहले ही आ चुके हैं. हमें खेद है कि आफिस की असावधानी के चलते आप लोगों को तकलीफ उठानी पड़ी.

और बेरहमी से कुचली गयी अपनी तमाम आशाओं और आकांक्षाओं को नजरअंदाज करते हुए, खालीपन और टूटन के साथ हम आफिस के बाहर की बेंच पर आ बैठे थ. सिवा हम दोनों के वहां कोई भी न था. फिर भी हम दोनों ने एक-दूसरे से कोई बातचीत नहीं की. सिर्फ आमने-सामने बैठे एक-दूसरे को घूरते रहे. फिर वहां से एक ही साथ उठ कर, एक ही रास्ते की ओर चुपचाप चल पड़े. कुछ दूर आगे जाने पर दोस्त ने पूछा—आप कहां से आये हैं?

—एक गांव से.

फिर मैंने पूछा—आप?

—एक कस्बे से.

फिर एक चाय-दुकान के पास हम दोनों बैठ गये.

दो चाय का आर्डर मैंने दिया. पर दोस्त ना-नुकूर करने लगे. उनके ना-नुकूर का अर्थ उस समय मुझे मालूम नहीं हुआ. हालांकि बाद में मुझे यह पता चला कि दोस्त की दोनों जेबें खाली थीं और इसीलिए एक अनजान आदमी के साथ वे चाय पीने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे. लेकिन मेरी जिद ऐसी थी कि उनसे भी टालते नहीं बनी. फिर अंदर की बेंच पर बैठ कर हम चाय पीने लगे. चाय पीने के क्रम में ही हमने बातें शुरू कीं. सत्ता, व्यवस्था, महंगाई, भ्रष्टाचार और आंदोलन से लौट कर हमारी बातें जल्द ही अपने-अपने घरों पर आ गयीं, जहां हमारे बापों ने विरासत के रूप में कुछ भी नहीं छोड़ा था बल्कि हमारी जिंदगी को ऐसे खौफनाक और अंधेरे चौराहे पर छोड़ दिया था. जहां से जाने वाला हर रास्ता जल्द ही अवरुद्ध हो जाता था, मंजिल तक पहुचाने वाला कोई भी रास्ता स्पष्ट और साफ नहीं था.

चूंकि एक-सी स्थितियों, तकलीफों और यातनाओं के हम सहपात्री और सहभोक्ता थे इसीलिए जल्द ही हम एक-दूसरे से जुड़ गये. फिर एक-दूसरे का अता-पता भी हमने नोट किया. एक दूसरे को जान-सुन लेने के बाद एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और अंतरंगता भी हमने ज्ञापित की. भविष्य में बराबर एक-दूसरे से मिलते रहने तथा पत्राचार होने की बातें भी हमने पक्की कीं. फिर हाथ मिला कर अपनी-अपनी दिशाओं की ओर हम लौट गये.

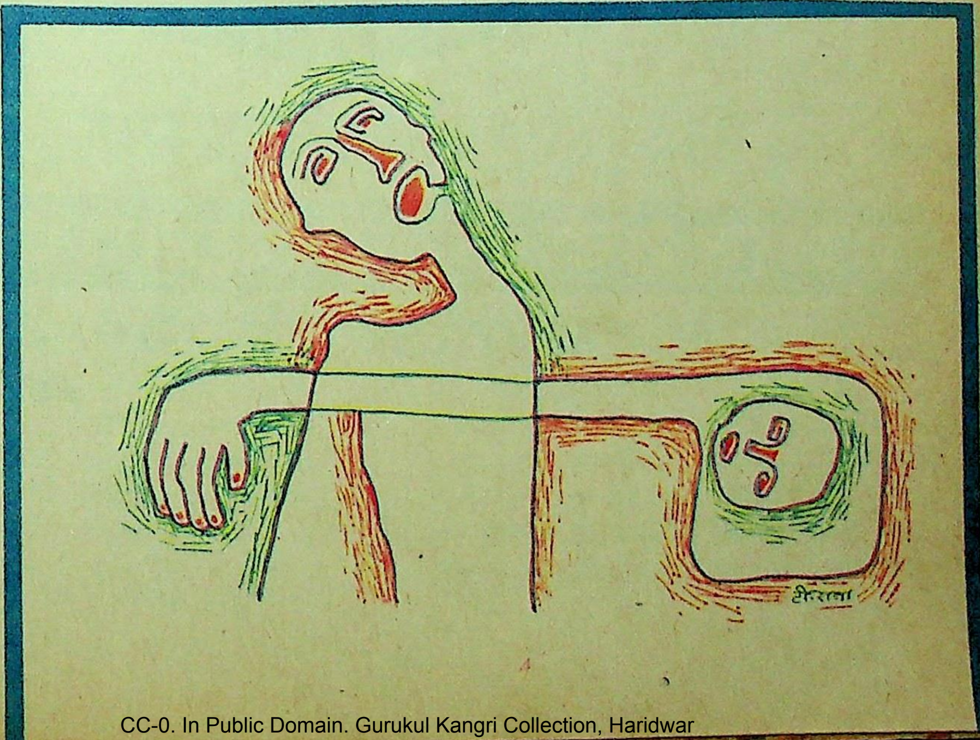
★ ★

मुझे अच्छी तरह याद है, पहला पत्र दोस्त का ही आया. दोस्त ने लिखा कि जिस कस्बे को छोड़ कर वे शहर की ओर भागे थे, अब पुनः लौट-पौट कर उसी कस्बे में आ गये हैं तथा किसी भी तरह जिंदगी जीने के लिए कस्बे के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया है. हालांकि यह ट्यूशन वे शहर में भी पढ़ा सकते थे. लेकिन शहर में इसके लिए उन्हें अपनी पहचान कायम करनी पड़ती जिसके लिए काफी समय गंवाना पड़ता. पर कस्बे में तो उन्हें सब पहचानते थे. वे वहीं पले-बढ़े थे तथा मैट्रिक तक की पढ़ाई भी उन्होंने वहीं पूरी की थी.

दोस्त के पत्र का जवाब मैंने ठीक समय से दिया. दोस्त के दुःखों और तकलीफों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए अपना दुखड़ा भी मैंने दोस्त से सुनाया कि गांव में मेरी स्थिति भी दोस्त की तरह ही है. बाबू जब तक जिंदा थे, दूसरों का खेत ठेका-बटाई पर ले कर जिंदगी गुजारते थे. अब वह सब कुछ मुझसे नहीं हो पाता है. जीने-खाने के लिए दूसरों के कामों में हाथ बंटाना पड़ता है. हां, अंतर सिर्फ यही है कि मकान किराये का नहीं बल्कि अपना है.

फिर इसी तरह दूसरा, तीसरा, चौथा. . .और अनेक पत्रों के आने-जाने का क्रम जारी रहा. पत्रों के माध्यम से ही हम अपनी परेशानियां एक-दूसरे तक पहुचाते रहे तथा समस्याओं से निरंतर लड़ते रहने और संघर्ष करने की बातें एक-दूसरे को बताते रहे. फिर आगे चल कर किसी-किसी इंटरव्यू में साथ-साथ जाने की योजनाएं भी हमने पत्रों के माध्यम से तय कीं. मुझे अच्छी तरह याद है, पत्रों के माध्यम से तय की हुई योजनाओं पर कई इंटरव्युओं में हम एक साथ रहे थे. हममें से जो पहले आता था, वह दूसरे की प्रतीक्षा काफी बेसब्री से करता था. फिर मिल जाने पर साथ ही साथ इंटरव्यू देने, किसी झोंपड़ीनुमा होटल में सत्तू खाने तथा रेलवे प्लेटफार्म या फुटपाथ के किनारे सो जाने के साथ-साथ रात भर एक दूसरे से बतियाते रहने का भी लोभ हम संवरण नहीं कर पाते थे. आज यह सब बातें मुझे याद आती हैं तो लगता है कि हम

● डी. ए. राणा




नया पैकिंग नई शान
REGD.
रत्ना
छाप
ज़ाफरानी पत्ती
RATNABRAND
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
NO 300
नं. १३,२०,३०,६४,१५०,२००,३००,४५०.
प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुजफ्फरपुर
अब नये पैकिंग में माँग करें
AVANTIKA/76

कहीं बहुत गहरे में एक-दूसरे से जुड़ गये थे. काश! उस गहराई से हत्यारे अवगत होते तो संभवतः मेरे दोस्त को मुझसे तथा अपनी पत्नी और बाल-बच्चों से अलग नहीं करते.

हां, तो बहुत प्रयत्न करने और बहुत समय गंवाने के बाद बिहार राज्य पथ परिवहन निगम में बुकिंग क्लर्क के पद के लिए मेरी नियुक्ति हुई. यह शुभ-सूचना सबसे पहले मैंने दोस्त को दी. दोस्त बहुत प्रसन्न हुए. उन्होंने लिखा कि 'मित्र, यह खबर पाते ही कि तुम व्यवस्थित हो गये, मेरी आधी गर्दिश अपने आप टल गयी.'

लेकिन मैं कब बैठने वाला था. काउंटर बुकिंग क्लर्क के पद पर इत्मीनान होते ही मैंने दोस्त के लिए भाग-दौड़ शुरू कर दी. लेकिन नौकरी कहां मिलनी थी? फिर भी एक लंबे समय तक मैं प्रयत्नशील रहा. इस बीच दोस्त के अनेक पत्र आये. पत्रों से ही मालूम हुआ कि दोस्त की शादी तय हो गयी. उसने मुझे बुलाया भी. किंतु परेशानी वश मैं नहीं जा सका. फिर दोस्त की शादी भी हो गयी. नाराज हो कर दोस्त को मैंने एक पत्र लिखा कि उसे इन स्थितियों और हालातों में अभी शादी नहीं करनी चाहिए थी. जवाब में दोस्त ने मेरी नाराजगी को एकदम खत्म कर दिया. दरअसल, दोस्त की शादी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि आरोपित ढंग से हुई थी. लड़की के मां-बाप दोस्त के मां-बाप की तरह ही उस कस्बे के मूल निवासी नहीं, बल्कि शरणार्थी थे. लड़की उनकी एकमात्र संतान थी. उनकी साख कस्बे से उठ चुकी थी. महंगाई ने उन्हें बुरी तरह तोड़ दिया था. फलस्वरूप रोजगार बदलने के लिए वे कहीं दूसरी जगह जा रहे थे. मगर जाने से पहले लड़की को वे अपने स्तर के लड़के, यानी मेरे दोस्त के हाथों सौंप देना चाहते थे. क्योंकि उन्हें कहीं दूसरी जगह लड़की का हाथ सौंपने में काफी कठिनाई मालूम पड़ती, क्योंकि इस कस्बे के सिवा कहीं भी उनकी पहचान कायम नहीं थी. लेकिन दोस्त स्वीकार नहीं कर रहे थे. वह अपनी फटेहाल स्थितियों में शादी के लिए कतई तैयार नहीं थे. मगर लड़की के मां-बाप और कस्बे वालों ने उन्हें बाध्य कर दिया. फिर मजबूरन ही सही, लड़की को उन्हें अपनी पत्नी बनाना ही पड़ा.

शादी के बाद से दोस्त के पत्र बहुत अधिक लाचारी और विवशता का जिक्र छेड़ने लगे. मैंने अपना चैन और नींद हराम कर दी. जितनी परेशानी अपनी नौकरी को ले कर मैंने नहीं उठायी थी, उतनी परेशानी दोस्त के लिए उठायी और फिर बिहार राज्य पथ परिवहन निगम में ही एक कंडक्टर के पद के लिए दोस्त की बातचीत भी मैंने पक्की कर ली. हालांकि इसके लिए घूस स्वरूप पांच सौ रुपये भी देने के लिए मुझे वचनबद्ध होना पड़ा. मैंने तत्काल दोस्त को इसकी सूचना दे दी. दोस्त का मरता हुआ उत्साह जग गया. वह शीघ्र ही चार सौ रुपये का इंतजाम कर मेरे पास आये. तीन सौ रुपये उन्होंने पत्नी के चांदी के जेवरों को बेच कर इकट्ठा किये थे तथा सौ रुपये कस्बे वालों से मांग कर. शेष सौ रुपये का इंतजाम मैंने किया. फिर अप्रैल की चिलचिलाती दुपहरी में ही इधर से उधर दौड़-दौड़ कर मैंने दोस्त को कंडक्टर के पद पर व्यवस्थित कर दिया.

अब हम साथ-साथ रहने लगे. एक ही कोठरी में साथ-साथ रहने, खाने तथा सोने का इंतजाम भी हमने कर लिया. इससे हमें बहुत फायदा हुआ. भयंकर महंगाई के बावजूद भी हमने टूटन और असमर्थता महसूस नहीं की. आधे-अधूरे मिल कर हम पूरे हो गये. हमने एक-दूसरे को ढंक लिया. लेकिन चिंताएं खत्म नहीं हुईं. दोस्त की पत्नी को भी बुलाना तथा साथ-साथ रखना जरूरी था. क्योंकि दोस्त ने मुझसे कहा था कि वह जिन लोगों के घर ट्यूशन पढ़ाता था, पत्नी को उन्हींके घर छोड़ आया है. मगर वे नंबर एक के टुच्चे और कमीने हैं, उनकी मानसिकता निहायत ही क्रूर और पूंजीवादी है. दोस्त के सामने ही वे उनकी पत्नी को छेड़ देते थे. अब तो . . .

हम दोस्त की पत्नी को बुलाने के लिए शहर में कमरे की खोज काफी व्यग्रता से करने लगे. इस बीच दोस्त की पत्नी के दो पत्र अपने माहौल के प्रति घुटन और उदासी को लेकर आये. फिर उसके तीसरे पत्र ने तो हमारे धैर्य को तोड़ दिया. बगैर कमरा ठीक किये ही उसे बुला लेना पड़ा तथा उसी एक कमरे में रखना पड़ा.

* *

दोस्त के साथ घटी घटनाएं अब मैं कभी नहीं भूलूंगा. चूंकि जिंदगी के अनेक महत्वपूर्ण क्षणों को हमने साथ-साथ जिया और भोगा है, इसीलिए उन्हें भूलना संभव भी नहीं है. यह इसलिए भी कि हम समान गर्दिशों के सहभोक्ता तथा समान आकांक्षाओं के सहयात्री थे. शायद यही कारण है कि आज दोस्त का अभाव न सिर्फ मुझे बुरी तरह साल ही रहा है बल्कि अंदर कहीं गहरे में न बिखरने वाली अमिट चुभन और टीस भी दे रहा है. दोस्त की पत्नी और बच्चे अब कहां जायेंगे? कहां रहेंगे? क्या खायेंगे? क्या करेंगे? इतने सारे सवालों ने मुझे घेर लिया है. और इन सवालों के पीछे दोस्त के साथ घटी घटनाएं सिनेमा की रील की तरह आंखों के सामने से गुजरने लगी हैं. एक-एक घटना, एक-एक बात सब अच्छी तरह याद आ रही है.

दोस्त की पत्नी कोठरी के भीतर सोती थी तथा दोस्त के साथ मैं कोठरी के बाहर बरामदे में. अपनी तकलीफों और इच्छाओं को नजरअंदाज करते हुए काफी समय तक हम ऐसे ही रहे थे. लेकिन एक दिन जब दोस्त ने मुझसे कहा था कि मेरी पत्नी को बच्चा होने वाला है तो शादी करने की मेरी वह इच्छा भी, जिसे मैंने जबरन दबाया हुआ था, जाग गयी थी. फिर दोस्त और दोस्त की पत्नी के लिए एक अलग कमरे की तलाश हमने जारी कर दी थी. चूंकि हमें संघर्षों में विश्वास हो गया था, हम जान गये थे कि संघर्ष के बाद सफलता हमें निश्चय ही मिलेगी, इसीलिए बगैर निराश हुए शहर के इस छोर से उस छोर तक कमरे की तलाश

हमने अनवरत रूप से जारी रखी. हालांकि मकान कई खाली थे, लेकिन एक पूरे मकान में रहने की हैसियत हमारी नहीं थी. हम चाहे पारिवारिक स्तर पर बड़े हों या छोटे, हमारी हैसियत एक कोठरी की ही थी.

फिर खोजते-खोजते एक कोठरी हमने पा ही ली. उस कोठरी की दूरी मेरी कोठरी से लगभग एक मील थी. लेकिन शहर के लिए यह दूरी कोई खास नहीं थी. जब सड़कें रात-रात भर जगी रहती हैं और मुसाफिर चलते रहते हैं, तब फिर यह दूरी कोई माने नहीं रखती है. हम कभी भी एक-दूसरे के पास आ-जा सकते हैं, एक-दूसरे से मिल सकते हैं, यही सोचा हमने. और यही सोच कर दोस्त की पत्नी को उस कोठरी में ठहरा दिया.

दोस्त की पत्नी को, उस कोठरी में जाने के पांचवें महीने बाद ही एक लड़का पैदा हो गया और आठवां महीना पूरते-पूरते मेरी शादी भी हो गयी. हम दोनों दोस्त इन मौकों पर एक साथ रहे तथा आपस में सलाह-मशविरा कर हंसते-हंसते इन समस्याओं पर से निबट गये. अब हम अलग-अलग कोठरियों में अपने परिवार के साथ रहने लगे. वैसे बस डिपो पर दोस्त से मेरी मुलाकात रोज ही होती रही, क्योंकि वहीं से दोस्त किसी गाड़ी को ले कर जाते थे तथा पुनः लौट कर वहीं आते थे. लेकिन बावजूद इसके हम रोज ही एक-दूसरे के डेरे पर आते-जाते रहे तथा हफ्ते में तीन या चार बार हमारी पत्नियां भी एक-दूसरे से मिलती रहीं. हमारी जिंदगी ठहर गयी. हमारे अंदर का संघर्ष चुक गया. हम जहां थे, वहीं जड़ हो गये. पहले हम अकेले थे इसीलिए संघर्ष करते थे. अब पारिवारिक झमेलों ने हमें फंसा लिया. दोनों जून अच्छा खाना खाने के लिए आर्थिक तनावों के बीच हम कस गये. कभी-कभार हम अपनी अच्छे खाने की मुराद पूरी करने के लिए पैसे भी इकट्ठे कर लेते लेकिन ऐन वक्त पर या तो बच्चे बीमार पड़ जाते या पत्नी. फिर हमारी खुराक डाक्टर के पेट में चली जाती. थोड़ा-बहुत जो कुछ बचता उसे मकान मालिक ऐंठ लेता. तब यहीं से हमने गलत रास्ता अख्तियार किया. ट्रैफिक इंस्पेक्टर को पैसा दे कर, बगैर टिकट काटे ही कम पैसों में लोगों को दोस्त सफर करवाने लगा और मैंने भी हर गाड़ी का चालान बनाते वक्त कंडक्टर से दो रुपया लेने का नियम बांध दिया. लेकिन इससे हमारी स्थितियों में बहुत अधिक सुधार नहीं आया. फिर भी हम अपने ढंग की जिंदगी जीते रहे. हमें लगा कि हमारे जैसे लोगों की जिंदगी यही है. इससे अच्छी जिंदगी जीने की ख्वाहिश गलत है. और यही सोच कर एक लंबे अरसे तक चुपचाप हम वह जिंदगी जीते रहे जिस जिंदगी का वर्त्तमान तो धुंधलका और कोहरा भरा था ही, भविष्य एकदम अंधकार से पूर्ण था.

★ ★

अब दोस्त नहीं रहे. हत्यारों ने हमसे उन्हें छीन लिया. जिस अंधकारपूर्ण भविष्य की संभावनाएं हमें नजर आ रही थीं, दोस्त का परिवार उसके गर्त्त में डूब गया. मैं चाह कर भी दोस्त के परिवार को अब उबार नहीं सकता हूं. आखिर एक बुकिंग क्लर्क की हैसियत ही क्या है? जो अपने परिवार को संभाल सकने की क्षमता रोज खोता जा रहा है, दूसरे के परिवार को कैसे संभाले? लेकिन यह जानते हुए भी कि दुनिया में अब उनका कोई नहीं है, उन्हें कैसे छोड़ दें? चाहे जैसे भी हो, उन्हें अब साथ रखना ही होगा. चाहे जिस तरह हो, उनका गुजर-बसर करना ही होगा. पर इतने से ही बात बनेगी नहीं. जब आदमी अपना संतुलन ही कायम नहीं कर पायेगा, तो फिर कैसे कुछ करेगा.

और मेरे साथ यही हुआ है. दोस्त की निर्दोष हत्या के बाद से मैं अपना संतुलन एकदम खो चुका हूं. घर पर, रास्ते में या आफिस में हर जगह भय महसूस करने लगा हूं. कोई जगह और कोई वातावरण मुझे सुरक्षित नहीं लग रहा है. हर जगह बिखरे असुरक्षित माहौल के भयावने पंजे आगे की ओर सरकते नजर आने लगे हैं. अब एक अदने आदमी से भी कड़ा होकर बोलने की शक्ति नहीं रह गयी है मुझमें. हर आदमी का चेहरा हत्यारों की तरह लग रहा है. लग रहा है जैसे दया, माया, मानवता और ममता नामक चीज इस धरती से उठ गयी. रुपये-पैसों का तो सवाल अलग है. नन्हीं-नन्हीं आवश्यकताओं और चीजों के लिए भी हत्याएं शुरू हो गयी हैं. कुछ पता नहीं कि कब बीच सड़क पर आपको छुरा भोंक दिया जायेगा. और मरते वक्त आपसे ये कहा जायेगा कि अमुक गाड़ी में आप अपनी सीट पर पसर कर बैठे थे और लाख कहने पर भी सीट खाली नहीं कर रहे थे, जिससे काफी मुसीबत उठानी पड़ी थी, इसी से आपको मारा जा रहा है.

मेरी नींद और चैन हराम हो गया है. खाना भी नहीं खाया जा रहा है. असुरक्षित देश के अनेक सवाल मुझे बुरी तरह डस रहे हैं. अगर आफिस में मैं बैठा हूं और कोई मेरे सीने में रिवाल्वर सटा दे कि टिकट देने में तूने देर की इसीलिए बस छूट गयी, तो मैं क्या करूंगा? अगर मेरी जेब से सिर्फ एक अठन्नी निकालने के लिए बीच सड़क पर मुझे छुरा मार दिया जाय, तो मैं क्या करूंगा? अगर कोई मुझसे कहे कि मैं तुम्हारी पत्नी को तुम्हारी आंखों के सामने बेइज्जत करूंगा, बोलोगे तो छुरा मारूंगा तो मैं क्या करूंगा? मैं कुछ भी नहीं करूंगा. कोई मेरी फरियाद नहीं सुनेगा. कोई मेरी सहायता नहीं करेगा.

मेरे दोस्त के साथ भी ऐसा ही हुआ है. वे बस डिपो से गाड़ी लेकर जा रहे थे, चालान बन चुका था तथा गाड़ी अब खुलने ही वाली थी. लोग ऊपर से नीचे तक बुरी तरह लदे थे. ट्रेन हड़ताल के चलते बसों से सफर करना ही लोगों के लिए एकमात्र विकल्प बचा था. भीड़ के बीच परेशान दोस्त लोगों को व्यवस्थित कराते हुए ड्राइवर से गाड़ी खोलने का तथा खलासी के ह्विसिल बजाने का आदेश दे रहे थे. मैं काउंटर से सब कुछ देख रहा था. ठीक इसी समय गुंडे किस्म के कुछ लोग एक लड़की को लेकर आये. लेकिन अब तक बस स्टार्ट हो चुकी थी तथा बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी थी. वे लोग चिल्ला कर बोले—ऐ कंडक्टर!

गाड़ी रोको. इस लड़की को चढ़ा कर खोलना.

परेशानी से खीझते हुए दोस्त ने जवाब दिया—अब तनिक भी जगह नहीं है. गाड़ी नहीं रुकेगी.

फिर गुंडों में से एक गरजा—तुम पहचानते हो किससे बात कर रहे हो?

—हां, पहचानता हूं. तुम्हारे जैसे लोग रोज ही यहां आते हैं. दोस्त की आवाज भी गर्म हो उठी.

—अच्छा साले, बाद में तुम्हें पता चलेगा. एक गुंडे ने दूसरे गुंडे की ओर देख कर कहा. फिर एक ही साथ सभी आक्रोश में आ गये. बोले, लौटने पर साले को पूछा जायेगा.

लेकिन उनकी यह आवाज दोस्त तक नहीं पहुंच पायी. क्योंकि गाड़ी अपनी रफ्तार पकड़ चुकी थी.

किंतु यह क्या ? गाड़ी खुलने के दस मिनट बाद ही गुंडों का एक दूसरा दल वहां आ धमका और पहले दल से लड़की छीनने लगा. हमें सब कुछ समझ में आ गया. वह लड़की पेशेवर थी तथा दूसरे दल के अधीनस्थ रह रही थी. पहला दल उस लड़की को भगा कर कहीं दूर जगह ले जाना चाहता था. लेकिन बस छूट जाने के कारण वे पकड़े गये. फिर देखते ही देखते दोनों दलों में खींचातानी शुरू हो गयी. पता नहीं कब चमचमाते छुरे भी दोनों ओर से निकल गये. इससे पहले कि फोन करके हम पुलिस को बुलाते, एक गुंडा वहीं धराशायी हो गया. शेष गुंडे आपस में लड़ते-झगड़ते तथा एक-दूसरे को धमकियां देते हुए कहीं चले गये.

दूसरी सुबह गुंडों का एक जत्था बस डिपो आया तथा दोस्त को खोजने लगा. संयोग अच्छा था कि दोस्त अभी नहीं आये थे. निश्चित था कि दोस्त मिल जाते तो गुंडे डिपो पर ही दोस्त को कत्ल कर देते. मैं तत्काल भागते हुए दोस्त के घर पहुंचा तथा बस डिपो आने से दोस्त को रोक दिया. फिर एक महीने की दोस्त की छुट्टी भी मैंने मंजूर करवा दी.

तीसरी सुबह दोस्त दौड़ते हुए मेरे घर आये तथा हांफते हुए कहने लगे कि पड़ोसियों ने बताया है कि जब मैं बाजार गया था तब काफी गुंडे मुझे खोजने के लिए आये थे तथा देर तक मेरी प्रतीक्षा किये थे.

मैं मुसीबत में पड़ गया. हालांकि किसी भी सूरत पर मैं दोस्त को बचा लेना चाहता था. इसीलिए रातों रात ही मैंने दोस्त के डेरे को चेंज करवा दिया तथा शहर के अंतिम छोर पर उन्हें ठहरवा दिया. फिर दो-तीन दिन गुजर गये. इस बीच डिपो पर रोज ही गुंडे आते रहे तथा दोस्त की खोज करते रहे.

फिर अपने कुछ परिचितों से उन गुंडों के बारे में मैंने पता लगाया. मुझे पता लगा कि वे इस शहर के नामी और पेशेवर गुंडे हैं. एक बार जिसको अपनी नजर पर चढ़ा लेते हैं, फिर इस शहर में उसे कोई नहीं बचा पाता.

मैंने सोचा कि दोस्त को जाकर गुंडों के पैरों पर गिरवा दूं और बिना किसी गलती के ही प्रायश्चित करवा दूं. किंतु मेरे एक परिचित ने डांट दिया. कहा—भूल कर भी आप ऐसा मत कीजिएगा. इन गुंडों के पास क्षमा नाम की कोई चीज नहीं.

फिर मैं दूसरे विकल्प की खोज में लग गया. इस बीच समय निकाल कर दोस्त को ढाढ़स देने तथा उनकी पत्नी को चुप कराने में मैं रोज ही उनके डेरे जाता रहा. एक दिन दोस्त को ले जा कर थाने में सनहा भी लिखवा आया तथा गुंडों का नाम भी दर्ज करवा दिया. फिर चार-पांच दिन गुजर गए. अचानक मेरे आफिस जाने के वक्त ही एक दिन दोस्त आ धमके तथा हांफते हुए ही कहने लगे कि उस मुहल्ले का पता भी गुंडों को लग गया है. नुक्कड़ के पान वाले ने दोस्त से कहा था कि काफी गुंडे उन्हें खोजने आये थे.

मैं दौड़ा-दौड़ा आफिस गया तथा पत्नी के बीमार होने का बहाना बना, पुनः वापस आ गया. फिर अपने कमरे में दोस्त के साथ बैठ कर बचाव के रास्तों पर घंटों सोचता तथा बातें करता रहा. देर तक विचार-विमर्श के बाद भी हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाये. अंत में दोस्त को मैंने यही सुझाव दिया कि इस शहर के किसी थाने के बगल में डेरा ले कर रहना उचित होगा. फिर हम शहर भर के तमाम थानों की बगल वाली कोठरियां तलाशने लगे. दोहरा ही नहीं, बल्कि तिहरा किराया देने को राजी होने पर, एक थाने की बगल वाली कोठरी मिली. फिर रातोंरात ही दोस्त उस कोठरी में आ गये. उस कोठरी में आ जाने के बाद दोस्त को काफी बल मिला तथा मुझे भी शांति महसूस हुई. थाने पर सिपाही रात भर पहरा देते हैं इसीलिए थाने की बगल वाली कोठरी पर आक्रमण होने का सवाल ही हमारे सामने पैदा नहीं हुआ. अब हम निश्चित हो गये तथा चिंतारहित हो कर समय गुजारने लगे.

पर हठात् एक सुबह दोस्त की पत्नी रोती-बिलखती आयी. और रात में गुंडों द्वारा उसी थाने की बगल वाली कोठरी में ही दोस्त की हत्या की सूचना दी.

★ ★

कल मकान-मालिक दोस्त के परिवार को निकाल देगा लेकिन वह समय मैं आने नहीं दूंगा. आज ही शाम तक दोस्त के परिवार को अपने कमरे में ला रखूंगा. दोस्त थे तो सुख-दुख बांट कर जी लेता था इसीलिए मुसीबत ज्यादा नहीं अखरती थीं. अब किस तरह जिंदगी बिताऊंगा? दोस्त को थाने की बगल वाली कोठरी में नहीं ठहराना चाहिए था. लेकिन एक सवाल खड़ा हो जाता है मेरे सामने कि दोस्त को कहां ठहराना चाहिए था? फिर मेरी नजर पूरे शहर पर दौड़ जाती है. लेकिन इस शहर में निराश हो कर पुनः दूसरे बड़े शहर पर जा टिकती है. वहां भी उसे निराशा ही मिलती है और वह तीसरे बड़े शहर पर जा टिकती है, फिर वहां से भी निराश हो कर वह आगे बढ़ती है और दिल्ली के इस छोर से उस छोर तक पूरे देश को टटोलती है. पूरे देश में मुझे कहीं भी ऐसा सुरक्षित स्थान नजर नहीं आता है जहां रह कर दोस्त अपने को बचा सकते थे. □□□

महाराजा हाता कतीरा, आरा (बिहार)

पंजाबी कहानी

पंजाबी में आजकल कहानी-गोष्ठियों की बाढ़-सी आयी हुई है. ३ जुलाई की शाम को एक नये प्रकार की कहानी-गोष्ठी जिला बठिंडा के एक गांव भीखी में रखी गयी. इस गोष्ठी में न तो किसी आलोचक को बुलाया गया था और न ही किसी पाठक को. जितने भी थे, सब कहानीकार थे. कोई प्रधान नहीं था, और न ही कोई मंत्री. नछत्तर सिंह, आर. स्याल, गुरचरन चाहल भीखी और सिद्धू दमदमी ने अपनी नयी एवं अप्रकाशित कहानियां पढ़ कर सुनायीं. इन पर भरपूर समीक्षा की गयी.

रात का खाना लेने के पश्चात कच्चे घरों की छत पर चारपाइयों के ऊपर बैठे सभी कहानीकार पंजाबी कहानी का जायजा लेने लगे. चलते-चलते बात 'समांतर' पर आ ठहरी. रामसरूप अणखी ने हिंदी में समांतर के नाम पर हो रहे काम का संक्षिप्त ब्योरा दिया. उन्होंने बताया कि समांतर सोच न तो कोई नया अंदोलन है और न ही कोई साहित्यिक गुटबंदी. समांतर नाम आने से पहले भी इस सोच की कहानियां लिखी जाती रही हैं. हमारे पंजाबी साहित्य में भी. नयी बात यह है कि इस सोच ने सभी भारतीय भाषाओं के लेखकों को एक मंच पर इकट्ठा कर दिया है और दिशा दी है. उपस्थित सभी कहानीकारों ने इसे स्वीकार किया और यह तय हुआ कि हर वर्ष बीस-पच्चीस समांतर कहानीकारों की एक-एक सर्वश्रेष्ठ कहानी ले कर एक शानदार संकलन प्रकाशित किया जाये.

दूसरे दिन सुबह नौ बजे बीबा कुलवंत, गुरुपाल और प्रेम गोर्खी ने अपनी कहानियां पढ़ीं. समीक्षा हुई. शमशेर सिंह संधू ने अपना लेख 'पंजाब के गायक कलाकार' पढ़ा. □

बायें से : रामसरूप अणखी, नछत्तर सिंह, आर. स्याल, धर्मसिंह, शमशेरसिंह संधू, नछत्तर चाहल, अश्विनी जेतली, किरपाल कजाक, अजीतपाल सिंह, सिद्धू दमदमी, प्रेम गोर्खी, गुरचरण चाहल भीखी, बीबा कुलवंत, मनजीत सिंह और गुरपाल. (नीचे) रोहीराम



सारिका का नवलेखन अंक



बायें से : शशि तिवारी, सच्चिदानंद देशमुख, गणपत सिंह, रघुवंशी विकल, अनूपसिंह परिहार, डॉ. रवि अग्रवाल, आचार्य निर्भय, 'हीरा', महेंद्रकुमार श्रीवास्तव तथा अन्य लोग

गोंदिया की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था कवि संसद द्वारा १५ मई को शाम ७ बजे डॉ. रवि अग्रवाल की अध्यक्षता में 'नवलेखन अंक' पर एक विचार - गोष्ठी का आयोजन किया गया.

हीरा ने कहा कि **'सारिका'** ने हिंदी कहानी को नयी-नयी प्रतिभाएं दी हैं. डॉ. रवि अग्रवाल ने हिंदी कहानी के क्रमिक विकास पर गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया. साथ ही नवलेखन अंक की कहानियों पर अपने विचार प्रगट किये.

तत्पश्चात संस्था के अध्यक्ष आचार्य चतुर्भुज मसानी एवं महेंद्र कुमार श्रीवास्तव महेंद्र ने नवलेखन अंक की कहानियों पर विचार रखते हुए **'फरिश्ते की मौत'** को अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी निरूपित किया. तत्पश्चात नवलेखन अंक की प्रत्येक कहानी पर विस्तृत चर्चा हुई.

□ **हीरालाल जायसवाल**

कृतियां

एक कहानी-संग्रह

'मेरी प्रिय कहानियां'

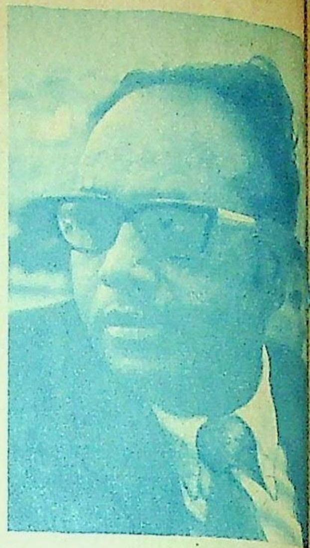
लेखक : शानी;
प्रकाशक : राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६;
पृष्ठ-संख्या : १२७; मूल्य : सात रुपये.

प्रस्तुत संकलन में शानी की कुल दस कहानियां हैं — **'जली हुई रस्सी', 'नंगे', 'एक नाव के यात्री', 'एक कमरे का घर', 'पत्थरों का तालाब', 'जगह दो, रहमत के फरिश्ते आयेंगे', 'जनाजा', 'युद्ध', 'इमारत गिराने वाले'** तथा **'शर्त का क्या हुआ.'**

ये कहानियां पहले भी छप कर पाठकों के सामने आ चुकी हैं, और इनमें से कुछ विशेष रूप से चर्चित भी हुई हैं.

शानी की उपर्युक्त कहानियों में जो सबसे बड़ी विशेषता दिखायी पड़ती है, वह है अनुभव और अभिव्यक्ति की ईमानदारी. 'अनुभव की ईमानदारी' या 'अनुभूति की प्रामाणिकता' जैसे मुहावरे को पिछले वर्षों जितना दुहराया और पीटा गया है, उतना उसका निर्वाह नहीं किया जा सका है. अधिकांश लेखक राजनीति के आधार पर साहित्यिक खेमे बना कर अपनी रचनात्मक क्षमता नष्ट करते रहे. कविता और कहानी इस तरह के खेमों का अखाड़ा रही. कुछ ने अपने लेखन को फार्मूलाबद्ध कर लिया तथा कुछ चौंकाने का प्रयास करके अपने को प्रतिष्ठित करने के फेर में ज्यादा रहे. तात्पर्य यह कि सही लेखन जो अनुभव और अभिव्यक्ति की ईमानदारी में चरितार्थ होता है, बहुत कुछ सामने नहीं आया. शानी की कहानियों पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि उनकी कहानियां गुटबंदियों, फार्मूलों और चमत्कारों से मुक्त हैं.

पिछले कुछ वर्षों की अधिकांश कहानियों में आधुनिक औद्योगिक-यांत्रिक जीवन तथा नगरों-महानगरों की समस्याएं विशेष रूप से चित्रित मिलेंगी. शानी की इन कहानियों में इस तरह की समस्याएं नहीं हैं. इनके कथानक व्यक्ति और परिवार की समस्याओं को ले कर बुने गये हैं. लेखक ने जिस जिंदगी को अपने चित्रण का विषय बनाया है, वह मध्यवर्गीय अभावग्रस्त जिंदगी है—उसके आसपास की जिंदगी है. इसीलिए इन कहानियों में एक प्रकार की आत्मीयता मिलती है. यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इन कहानियों में कहानीकार ने पाठकों को सेक्स का स्वाद चखाने की कोशिश नहीं की है. दरअसल ये कहानियां उस खाते-पीते वर्ग की कहानियां नहीं हैं, जिसकी जिंदगी शराब और औरत में रमी होती है. इसके विपरीत ये उस मामूली जिंदगी की कहानियां हैं जो अपनी अतृप्तियों और तकलीफों में सांस खींच रही है. **'जली हुई रस्सी'** कहानी की सफिया मुनीर साहब की जेवरों से लदी बीवी को देख कर अपने नसीब को कोसती है. उसका पति वाहिद मुअत्तल कर दिया गया है. मुनीर साहब के यहां आलीशान दावत है, मगर वाहिद के लिए घी अब एक ख्वाब है. सफिया कहती है : 'प्राविडेंट फंड के पैसे मिलेंगे, तो घी ला दोगे? बहुत दिनों से अपने यहां पुलाव नहीं बना.' **'नंगे'** कहानी की रुबीना के लिए ईद का कोई महत्व नहीं है. जैसे रोज, वैसे ईद. इस कहानी का मुख्य पात्र 'मैं' ईद के दिन अपनी फूफी के यहां जाता है, पर वहां अपने भतीजों को देने के लिए उसके पास कुछ नहीं है. उन लोगों के सामने उसे लगता है, जैसे वह एक उटुंग-सी कमीज के द्वारा जैसे-तैसे अपने को ढंकने की कोशिश कर रहा है, पर पेट ढंकता है, तो पीठ खुल जाती है. **'एक कमरे का घर'** शीर्षक कहानी भी ऐसे ही अभाव की कहानी है—अभाव जो



● नवल जायसवाल

शानी

न केवल पारिवारिक संबंधों
बल्कि व्यक्ति के मानसिक संतुलन
को भी बिगाड़ कर रख देता है.

'एक नाव के यात्री' शीर्षक
कहानी एक अलग स्तर पर पारि-
वारिक संबंधों को खोलती है.
इसी जमीन से मिलती-जुलती
कहानी है **'शर्त का क्या हुआ'**
'पत्थरों का तालाब' शीर्षक
कहानी उस सामाजिक बदबू को
सामने लाती है, जो सारे परिवेश
में व्याप्त है और विडंबना यह
कि सब इसी कीचड़ में कैद हैं.
**'जगह दो, रहमत के फरिश्ते
आयेंगे'** तथा **'इमारत गिराने
वाले'** शीर्षक कहानियां मानवीय
और मूल्यों का एक विशिष्ट
असर छोड़ जाने वाली कहा-
नियां हैं. **'जनाजा'** और **'युद्ध'**
शीर्षक कहानियां विभाजन
बाद के भारतीय मुसलमानों
भय और उनके लगाव-विलगाव
की कहानियां हैं. यहां यह भी उल्लेख-
नीय है कि शानी की लगभग
सभी कहानियों के पात्र मुस्लिम
समाज से लिये गये हैं. ऐसा लेखक
ने जानबूझ कर किया है. प्रस्तुत
संग्रह की भूमिका में वह लिखता है
'जातिगत पूर्वग्रह और वर्गगत
संस्कार सचमुच कितने भयानक
होते हैं—इस हद तक खतरनाक
कि वे ऊपरी तौर पर बौद्धिक लगने
वाले आदमी को भी इनसानियत

की बुनियादी शर्तों को बलाये-ताक़ रखने पर मजबूर कर सकते हैं ...इस बात की जरूरत आज पहले से कहीं ज्यादा है कि ऊपर-ऊपर से लिये हुए भोले विश्वास पर संदेह करने वाली यह छानबीन जातीय संवेदनाओं और वर्णगत संस्कारों तक गहराई से की जाये।'

यह कहा जा सकता है कि शानी अपनी कुछ कहानियों को अधिक सांकेतिक बना सकते थे, और उन्हें संवेदना के अधिक गहरे स्तर से उठा सकते थे. पर इसमें संदेह नहीं कि शानी की ये कहानियां शिल्पगत चमत्कारों से मुक्त साफ-सुथरी कहानियां हैं, जो व्यक्ति और परिवार की जिंदगी को अनेक स्तरों पर पहचानती और चित्रित करती हैं.

□ **विश्वनाथप्रसाद तिवारी**

एक उपन्यास

'बहुत देर कर दी'

लेखक : अलीम मसरूर : प्रकाशक : कहानीकार प्रकाशन, के ३०/३७ अरविंद कुटीर, वाराणसी; मूल्य : बीस रुपया, पृष्ठ-संख्या : २४५.

'बहुत देर कर दी' मूल रूप में उर्दू का उपन्यास है. उपन्यास शुरू करते हुए बहुत कुछ उलझन-सी होती है, क्योंकि एक बंबइया फिल्म का पूरा परिवेश इसमें मौजूद है, परंतु उपन्यासकार ने उपन्यास को आगे चल कर गंभीरता से लिया है और पाठक को विश्वास में ले लिया है.

उपन्यास का नायक दाऊद बनारस का निवासी है. वह एम. ए. पास एक प्रबुद्ध युवक है. बंबई जैसे महानगर में उसे महज डेढ़ सौ रुपया माहवार की नौकरी मिलती है. वह पुस्तकों की दुकान में मामूली किरानी है. रहने का कहीं ठिकाना नहीं है. तंग आ कर दाऊद बंबई के एक कुख्यात गुंडे करीम के सामने अपनी समस्या रखता है. करीम उसकी इस समस्या का चुटकी बजाते हल खोज लेता है. अपनी चहेती वेश्या सुलताना को पंद्रह दिन के लिए दाऊद की पत्नी बना कर उसके साथ कर देता है. दाऊद सुलताना के साथ रहता जरूर है, परंतु उसके साथ दैहिक संबंध स्थापित करने से परहेज रखता है. एक स्तर पर उसके संस्कार तथा दूसरे स्तर पर सुलताना के वापस चले जाने की शर्त उसे सुलताना के प्रति तटस्थ तथा ठंडा बनाये रखती है.

इसी दौरान एक अन्य युवती कायनात उसके संपर्क में आती है, जिसका उपन्यास दाऊद की कोशिश से प्रकाशित हो जाता है और अप्रतिम ख्याति अर्जित करता है. कायनात दाऊद के प्रति पहले दिन से ही आकर्षित है. दाऊद भी बेचैन रहता है, लेकिन कायनात को अपनी तकलीफ साफ ढंग से बता नहीं पाता कि वह दुनिया-दिखावे के लिए एक वेश्या को अपनी पत्नी बना कर रखे हुए है. दाऊद सोचता है कि जैसे ही करीम सुलताना को अपने पास बुलायेगा, वह कायनात से शादी कर लेगा. इसी दौरान करीम को तीन माह की सजा हो जाती है और सुलताना को अपने पास रखने की विवशता से वह

अलीम मसरूर



कुढ़ उठता है. कायनात की बेचैनी से भी वह परिचित है. उसका मस्तिष्क कोई हल खोजने के लिए परेशान रहता है. सुलताना दो दिन के लिए अपने घर बड़ौदा जाने लगती है, तो दाऊद को उसे विदा देते हुए पहली बार एहसास होता है कि वह सुलताना की अनुपस्थिति में जीवित नहीं रह सकता. जो सुलताना दाऊद को हमेशा जीवंत बनाने की कोशिश में लगी रहती थी, वह स्वयं दाऊद के विषाद से परिचित होते ही गंभीर हो जाती है.

आखिर करीम जेल से छूटता है और सुलताना को वापस बुला भेजता है. दाऊद सुलताना को करीम के घर वापस छोड़ कर बाहर जाते ही अपनी मनःस्थिति को एकदम बदला हुआ पाता है. वह अत्यंत पीड़ा और अपमान का अनुभव करता है कि उसने अपनी पत्नी को कायरता और निर्लज्जता से एक गुंडे के हवाले कर दिया है. वह गहरे मानसिक द्वंद्व में आलोड़ित होते हुए करीम के घर जाता है और सुलताना को उससे छुड़ा ले जाता है. सुलताना को साथ ले कर कायनात के घर जाता है और बतला देता है कि सुलताना उसकी पत्नी है. कायनात यकायक कुछ समझ नहीं पाती. वह केवल इतना कहती है : 'सुलताना, तुमने बहुत देर कर दी!'

'बहुत देर कर दी' अलीम मसरूर का पहला उपन्यास है लेकिन कथा-तत्व की जबरदस्त बुनावट इसमें मौजूद है. पूरा उपन्यास गहरी सतर्कता से संवारा गया है. रचना के स्तर पर आने वाली चुनौतियों को लेखक ने जिम्मेदारी से झेला है. संपूर्ण कृति में गहरे चिंतन और महीन विचारों की धारा सतत प्रवाहित हुई है. उपन्यास के भीतर बहुत कुछ ऐसा है जो पाठक को झकझोर देता है, और अनुभव की सघनता दे जाता है.

□ **से. रा. यात्री**

फिल्में

ध्रुवीकृत वातावरण : वह प्रतिबद्धता कहां है ? • राम अरोड़ा

अब फिर वैसा ही ध्रुवीकृत वातावरण है. एक तरफ अभेद्य सन्नाटा है, जिसमें नये (या बेहतर या समांतर) सिनेमा का जिक्र तक करने से लोग बचते घूम रहे हैं, दूसरी तरफ दिशाएं और रास्ते साफ न होने की विपदा को मूले अलमबरदार तबके सेंसर वगैरा जैसी सामयिक कठिनाइयों को एकमात्र समस्या मान लेने के लिए शोर मचाये जा रहे हैं. आठवें दशक के प्रारंभ में उभरी आशाओं का कहीं कुछ पता नहीं. बागी सिने-शिल्पी करीब-करीब गुम हो गये हैं, या बड़े कौशल से विशुद्ध व्यावसायिक हलकों में कैमुफ्लाज कर गये हैं. **'दस्तक'** जैसी एक हद तक ठीक-ठीक फिल्म बनाने के बाद **'फागुन'** जैसी चोंचलेबाजी से पिटने वाले राजेंद्रसिंह बेदी को **'आंखिन देखी'** जैसी विनम्र यथार्थ-परक फिल्म बनाने में चारों तरफ से दिक्कतें पेश आती हैं, और वह पस्त हो कर कहते हैं : 'प्रतिबद्धता से कुछ हासिल नहीं हुआ. हम किनारे धकेले जा रहे हैं.'

जबकि **'सारा आकाश'** के सहनीय रोमानवाद से चल कर **'चितचोर'** तक आते-आते बासु चटर्जी बड़ी सूक्ष्म नीति से पलायन-वाद के पोत पर विहार करते दिखायी देते हैं. **'छोटी-सी बात'** संबंधी एक दूरदर्शन-चर्चा के दौरान अपने अंदाज में छाती ठोंकते हुए डॉ. गोपालदत्त से वह कहते हैं : 'हां, साहब! यह (**'छोटी-सी बात'**) यथार्थ नहीं, पलायनवाद ही है.' क्यों?

व्यक्तिपरक फिल्म के पैरोकार

और दूसरे बासु—भट्टाचार्य—**'अनुभव'** के बाद **'आविष्कार'** जैसी ठेठ व्यक्तिपरक फिल्म (इंडिविजुअल्स फिल्म) बनाते हैं, और फिर पता नहीं क्यों डकैती और **'बॉबी'** टाइप कथानकों के बेतुके प्रयोगों में रम जाते हैं. समीक्षकों से वह साफ-साफ कह देते हैं, 'मुझे फिक्र नहीं अगर आप मेरी फिल्म पसंद नहीं करते तो . . .' और सामान्य प्रेक्षक से उनकी शायद कभी मुलाकात ही नहीं हुई. कुछ-कुछ ऐसा ही रवैया मणि कौल का भी रहा है, जो तीन नितांत 'व्यक्तिगत' फिल्में, **'उसकी रोटी'**, **'आषाढ़ का एक दिन'** और **'दुविधा'** बनाने के बाद फिल्मकारी के मसीहा बन गये और पता नहीं कहां चले गये.

गुलजार और हृषिकेश मुखर्जी 'साफ-सुथरी' फिल्मों के टिपिकल उदाहरण हैं. दोनों अपने साफ-सुथरे स्टैंड पर दृढ़ता से टिके ही हुए हैं, और शायद कभी भी अपनी स्थिति नही बदलेंगे, हालांकि **'परिचय'** और **'कोशिश'** के बाद **'आंधी'** और **'मौसम'** और एक हद तक **'अचानक'** में भी गुलजार थोड़े विवादास्पद जरूर बने. मगर **'चुपके-चुपके'** के माध्यम से हृषि ने प्रदिबद्धता के प्रति अपनी अरुचि कुछ स्पष्ट कर दी. दोनों ही शिल्पी सामान्य प्रेक्षक की सीमाओं से भयंकर दहशत खाते हैं. इसीलिए जब हृषि कहते हैं कि 'किसी भी फि[ल्म] का अधिक से अधिक जनता [को] स्वीकार्य होना बहुत जरूरी है,' [तो] उनका थोड़ा किया कम-से-क[म] उनके संदर्भ में बहुत मान ले[ना] पड़ता है.

'कोरा कागज' के बाद अनि[ल] गांगुली भी साफ-सुथरी फिल्मों [के] निर्देशक बन कर सामने आये [हैं] (**'तपस्या'** और **'संकोच'**) औ[र] बहुत साफ शब्दों में कहते हैं 'हमारी फिल्मों में बहुत कु[छ] आपत्तिजनक है. मगर, क्षमा कीजिए, फ्लॉप हो कर मैं कु[छ] भी नहीं कह या कर सकता, इसलिए थोड़ा कहा बहुत समझि[ए].'

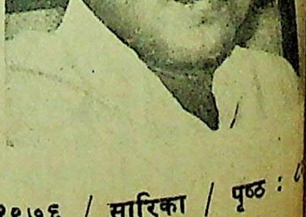
एक साहसी फिल्मकार

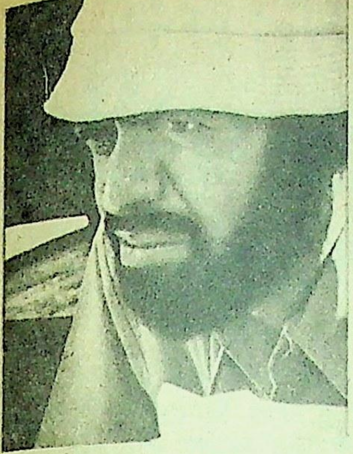
'अंकुर' और **'निशांत'** के फिल्मकार श्याम बेनेगल का अभ्यु[द]य हालिया है, मगर अत्यंत प्रबल है. कम पैसों और नये या अपेक्षा-कृत छोटे सितारों से उन्हें को[ई] फर्क नहीं पड़ता, और कल्पना की तकनीकी सिद्धहस्तता पर बैठा क[र] भव्यता, अभिनवता और दृश्या-त्मक यथार्थता रचने में वह प्राय[ः] मास्टर हैं. किसी लकीर के फ[कीर] फकीर भी नहीं हैं और ९९ प्रतिश[त] अन्य फिल्मकारों की भांति

मृणाल सेन



अनिल गांगुली





श्याम बेनेगल

वह प्रेक्षक की सीमाओं से भी नहीं डरते. वह कहते हैं: 'माना कि स्पांसरशिप व्यावसायिकता के शिकंजों में है, मगर उससे सीधे जूझे बिना कोई रास्ता भी नहीं है' और वह यह मानने से कतई इनकार करते हैं कि कतिपय ट्रेंड्स (जिनकी हमेशा हर कोई दुहाई देता है) वास्तविक हैं. 'ये ट्रेंड्स उद्योगियों की निजी भीतियों के परिणाम हैं, इसलिए बेमानी हैं.' ...श्याम की ताजा फिल्म 'मंथन' उनकी पिछली फिल्मों से कुछ नवीनतापरक है, और अगर क्लिक कर जाती है तो उनकी बात हर स्तर पर सही साबित हो जायेगी.

* *

सत्यू ('गर्म हवा') के निजी व्यक्तित्व में श्याम जितनी दबंगता नहीं है, मगर शिल्पधर्मिता में गरिमा कहीं अधिक है. अपनी वर्तमान फिल्म के संदर्भ में सिर्फ इतना ही कहते हैं: 'अगर मैं किसी विडंबना, अत्याचार या विरोधाभास पर प्रहार नहीं कर सकता तो मेरा कथाफिल्म बनाना बेकार है.'

दिक्कत यह है कि बेहतर सिनेमा के पैरोकारों, शिल्पियों और रसिकों के पास अब फिल्म वित्त निगम जैसी संस्था का सक्रिय समर्थन पहले जैसा नहीं रहा. इसलिए सत्यू या श्याम जैसे इक्के-दुक्के सिपाही पर्याप्त नहीं लगते. दूसरी तरफ फिल्म एंड टेलिविजन इंस्टीट्यूट ने बढ़िया रंगरूट तैयार करना एक अरसे से बंद-सा कर रखा है.

* *

आज मृणाल सेन प्रायः अकेले फिल्मकार बचे हैं, जो सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबद्धता अपनी हर फिल्म में निभाते चले जा रहे हैं. इस मामले में सत्यजित राय से वह कई कदम आगे हैं. शैली और सुहानेपन को कथ्य के करीब नहीं फटकने देते, चाहे यह स्पष्टता कितनी भी करख्त हो. **'प्रतिद्वंद्वी'** के मुकाबले वह **'इंटरव्यू'** बनाते हैं. **'आशानी संकेत'** के मुकाबले **'पदातिक'** पर टिके रहना बेहतर समझते हैं. आजकल का पूरा हिसाब-किताब उनके लिए व्यथा का विषय है; क्योंकि 'यह तो ठीक है कि प्रतिबद्ध सिनेमा निर्देशकों की वैचारिक क्षमताओं पर निर्भर करता है, मगर निर्देशक तब तक मोरचों पर पूर्ण सफल नहीं हो सकते, जब तक लेखक, अभिनेता, तकनीशियन और वित्तीय संस्थाएं भी उतनी ही प्रतिबद्ध न हों.'

यह प्रतिबद्धता क्यों गायब है, इसका जवाब किसी संजीव कुमार (या अमिताभ बच्चन या शबाना आजमी), किसी कमलेश्वर, किसी के. के. महाजन और किसी गुलशन राय के सिवा कोई नहीं दे सकता. और फिर फिल्म वित्त निगम को क्यों असफलता का यह मुंह देखना पड़ा?

सही फिल्मों के अनुकूल वातावरण

...मगर यह स्वीकारना होगा कि सही फिल्मों के लिए वातावरण आज जितना अनुकूल है, उतना पहले कभी नहीं था. और इस वातावरण के निर्माण में उन सब का भी सहयोग रहा है, जो सही सिनेमा के कम लाभदायक क्षेत्र से व्यावसायिक क्षेत्रों में कैमुफ्लाज कर गये. जगहें खाली हैं... □□□

यथार्थवादी सिनेमा के प्रथम आचार्य

भारतीय सिने-पटल पर जिन दिनों धार्मिक-पौराणिक फिल्मों का जादू चल रहा था, और पोस्टर और साइनबोर्ड जब विभिन्न देवी-देवताओं के नाम से संप्रदाय विशेष को टिकट खरीदने के लिए उकसाया करते थे, तब धीरेंद्रनाथ गांगुली अपनी अर्थ, व्यंग्य और प्रहार भरी फिल्में ले कर फिल्म-क्षितिज पर उदित हुए थे. 'विलेत फेरात', 'द मैरिज टॉनिक' और 'द लेडी टीचर' जैसी चटीली फिल्मों में उन्होंने अंग्रेजी जीवन शैली के अंध भक्तों की डट कर खबर ली थी. रवींद्रनाथ टैगोर को 'ताप्ती' की पटकथा लिखने के लिए भी उन्होंने प्रेरित किया था और शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय के 'चरित्रहीन' को फिल्माने का साहस भी दिखाया था. १९३० के आसपास धीरेन गांगुली यदि फिल्म-निर्माण में न आते, तो पता नहीं अभी और कब तक सामाजिक कथानक परे पड़े रह जाते. और शायद पी. सी. बरुआ और देवकी बोस जैसे समर्थ शिल्पी भी फिल्म-संसार से परिचित न हो पाते.

भारतीय फिल्मों में यथार्थ की जीवनधारा को संचारित करने वाले ८५ वर्षीय धीरेन गांगुली को १९७६ के दादा साहब फाल्के पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया है. □

अब तक आपने पढ़ा है

धारावाहिक उपन्यास (पांचवीं किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे— इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे, और मॉरिशस की धरती का सारा सोना उन्हें मिलेगा. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था. . . . वह जेल से भाग निकला और एक गांव में जा पहुंचा. गोरे मालिक लोग भारतीय मजदूरों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते थे. कुंदन ने अपना नाम बदल कर देवननन् कर लिया और मजदूर बन कर रहने लगा. इन मजदूरों में गांव के मुखिया रघुसिंह का लड़का किसन भी था. किसन अपनी जाति के लोगों की बेबसी देख कर परेशान रहता था. उसके मन में तरह-तरह के सवाल थे. भूखे पेट काम करने और उसके बाद पिटने से जतन की मृत्यु हो गयी— और फिर एक बैठक बुलायी गयी. अब आगे पढ़िए. . . .

इधर किसन के घर के सामने गाने-बजाने का कार्यक्रम भी जारी थी. वैसा करके सरदारों के ध्यान को इधर आकर्षित होने से रोक दिया गया था. किसन ने सबसे बाद में वाक्वा की चटाई पर जगह ली. कुंदन उसी की ओर देख रहा था. आंखों से उसका इशारा पा कर उसने बात शुरू की —पहले क्या होता रहा है, मैं नहीं जानता, लेकिन जब से मैं यहां हूं, इस तरह की यह दूसरी घटना है. अब आप ही लोग सोच लें कि इस तरह की और कितनी घटनाओं को होने देना है.

फिर से किसन की ओर देखा और किसन ने उसे इशारे से बात को जारी रखने को कहा.

—गोपाल की मां को आप लोगों में से कुछ लोगों की सुना-सुनी मैं भी बेटी कहने लगा था. उसके पति की मृत्यु किन हालतों में हुई थी, उसे तो आप लोग मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं. गोपाल की मां को पहली बार देख कर मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि उसका गोपाल जैसा लड़का हो सकता है. गोपाल की मां की तरह अभी और भी कई विधवाओं को जबरदस्ती अपने यहां मंगवा कर ये लोग ऐसा करते रहेंगे.

वह चुप हो गया. कुछ लोगों के बीच कानाफूसी शुरू हो चुकी थी. उन्हें शांत करते हुए कुंदन ने आगे कहा —हम लोग यहां इसलिए जुटे हैं कि और कुछ तो हमसे हो नहीं सकता, कम से कम अपनी बहू-बेटियों को लुटने से तो बचायें.

—देवननन् भाई, ऐसा सोचे के तू पहला ना बानी. बगल से दाऊद के बाप ने कहा.

—मैं जानता हूं चाचा, कि तुम लोग पहले भी इस पर सोच चुके हो. पर अब तक कुछ कर नहीं पाये.

—ऊ त अब भी ना होई, देवननन्!

—क्यों नहीं होगा? किसन ने धीरे से पूछा.

—कौन करेगा?

—हम सभी को करना होगा.

किसन की इस बात पर दो-तीन बूढ़े हंस पड़े. उनकी हंसी का गोया यह मतलब हो कि अरे, कभी हमने भी ऐसा ही कहा था! बीच में कई लोगों ने धीमे स्वर में बातें कीं. कई लोग कुंदन के साथ थे, कई उसे आज भी इधर की वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ समझते रहे. जब लोगों के बीच घांव-मांव होने लगा, तो किसन के बाप ने पहली बार बात शुरू की. —देवननन् जो आज सोचता रहली, ओके हम लोगन बरीसन पहले से सोचते आवत बानी. पर सोचल कुछ होवेला और करल और कुछ. सौ बात के एक ही बात बा.

—वह क्या?

—किसी से कुछ भी होने को नाहीं.

—तो फिर जो कुछ हो रहा है, उसे आंखें मूंद कर होने दिया जाये?

रघुसिंह ने अपने बेटे की ओर देखा. अपने नारियल के हुक्के का लंबा कश लिया और उसी गांभीर्य के साथ कहा —मरके क्या पाना है?

कुछ देर तक कानाफूसी होती रही. किसन ने ऊंचे स्वर में सभी को चुप करा कर उनके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किया.

—अब तक हम सोचते रहे हैं. और अगर अब तक कुछ नहीं हो सका तो इसका यह मतलब थोड़े ही हो जाता है कि हम कभी भी कुछ नहीं कर सकते!

रघुसिंह ने डांट भरे स्वर में पूछा— क्या?

—यह तो हम सभी को मिल कर सोचना है.

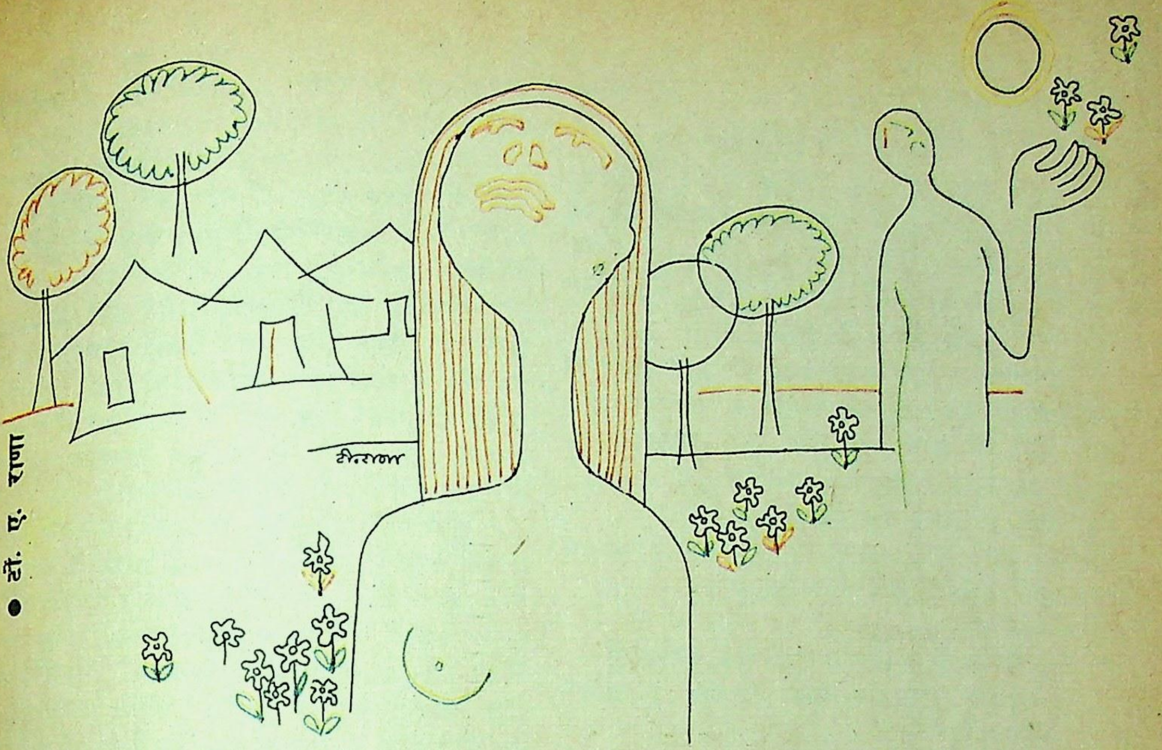
—गोरवन से जा कर ई कहना है कि वे लोगन अपन ई आदत को छोड़ें, नाहीं तो. . .

—बापू, तुम इस बात को इस तरह कह रहे हो जैसे कि यह दुनिया का सबसे कठिन काम हो!

—तुम एके सबसे आसान मानत हो तो करके देखो.

—मैं अगर इसे आसान नहीं मानता तो कठिन भी नहीं.

—तो फिर देरी काहे के? कोशिश करके देख लो,



• डॉ. ए. पाल

बेकहल कहीं के! हर बखत उलटी-सीधी बातें करत रहत हो. अगर हम सभन को दिन-दहाड़े मरवाना है तो फिर अपने इस देवननन् को साथ ले ले और बढ़ जा मालिकन की टांग तोड़ने.

किसन पर से आंखें हटा कर वह देवननन् को घूरता है.

—तू तो आते ही इन लड़कवन के उलटा-सीधा पाठ सिखला गयले. लगत बा कि जौन कोठी से भाग के इधर आल बाले, उधर भी तू एही तरह के उटपटांग काम किया होगा.

पीछे से किसी ने कहा—मियां के हारे मियायन के बुकोटे.

फिर वह सभी को संकेत करके शांत स्वर में बोला —हम सब कोई के मालूम बा कि गोरवन के विरुद्ध एगो शब्द के नतीजा का है.

—इसका तो यही अर्थ होता है कि हम गूंगे के गूंगे रहें? किशन ने पूछा.

—जहां ना बोले के बा, हुआं काहे बोलल जाये?

बहस में कुछ और लोगों ने भाग लिया और अंत में बाप-बेटे के बीच की तनातनी और भी बढ़ गयी. रघुसिंह अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और क्रोध से कांपते हुए उसने सभी को चेतावनी दी—तुम लोगन के कुत्ता के मौत मरे के बात जौन मन में आय कर स. पर बोल देवत हैं कहीं गोरवो तरेके और हचुवो तरे के न चल जाये.

इसके साथ ही वह उस भीगी अंधेरी रात में बाहर निकल गया.

* *

क्षण भर की खामोशी में दूसरी ओर से आता हुआ बिरहे का स्वर सुनायी पड़ा. फिर बातों के शुरू होते ही बंद हो गया. दाऊद के बाप ने अपनी खांसी के दौरे के बीच पूछा कि क्या करने को सोचा गया है. इस पर कुंदन ने बताया कि पहले से कुछ भी सोचना है, उसे यहां सोचा जायेगा.

किसी ने पीछे से कहा —जब मुखिया ही चला गया, तो फिर क्या सोचना बाकी है?

—अभी बहुत कुछ सोचना बाकी है! किसन ने कहा.

—पहले हम यहां आदमी तो समझे जायें! जब तक हमारी गिनती यहां आदमी में नहीं होती, तब तक कुछ भी होने को नहीं.

—हमें आदमी तभी समझा जायेगा, जब हम भी जानवर की तरह पेश आयेंगे.

दाऊद के बाप की इस बात को सभी लोगों ने अपने-अपने ढंग से समझा. किसन ने अपने ढंग से. इसीलिए उसने झट से कहा —तो फिर एक बार जानवर बन जाने में मुझे कोई दिक्कत नहीं.

—हम अपनी स्थिति में सुधार की बात सोचते तो ज्यादा अच्छा होता. . . देवननन् को अभी कुछ और कहना था, कि किसी ने बीच में ही कह दिया.

—यह काम एक जगह से नहीं शुरू हो सकता.

—मतलब?

—जब तक हर कोठी के मजदूर एक साथ न खड़े हों, तब तक कुछ भी संभव नहीं.

—मैं इसके ठीक विपरीत समझता हूं.

कुंदन के बाद किसन के कहा —मैं भी यह नहीं मानता कि जब तक हर कोठी के लोग तैयार न हो जायें, तब तक हमें इसी तरह मन मारे बैठे रहना है. कहीं से शुरू तो होना है. अगर हम यहां पूरे संकल्प के साथ खड़ा हो पाते हैं, तो फिर कोई कारण नहीं कि

धीरे-धीरे सभी कोठियों के लोग हमारा साथ देने को तैयार न हो जायें.

अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए दाऊद के बाप ने सिर हिलाया, जिसे सभी लोगों ने यही समझा कि शुरुआत तो कहीं-न कहीं से होनी ही है.

—हम अपने यहां से शुरू करने को तैयार हैं. पर क्या शुरू करना है? सोनालाल का बाप जो अब तक चुप था, अपने कमजोर स्वर में बोला —जब तक हम अपने ऊपर उठने वाले हाथों में से एक को मरोड़ते नहीं, तब तक ये रुकने को नहीं.

सोनालाल के बाप से इस तरह की बात सुनने की उम्मीद किसी को नहीं थी. चिराग के प्रकाश के साथ-साथ लोगों की आंखों में हैरत भी चमकी. एक लंबे सन्नाटे के बाद किसन ने एकाएक कहा —नहीं! सभी लोगों की आंखें उसकी ओर मुड़ गयीं.

—हमारे पास उतनी ताकत नहीं है कि हम अपने ऊपर उठते हुए हाथ को मरोड़ सकें.

—तो फिर?

—हमें पहले अपने को ताकतवर बनाना है.

—यह जो आधा पेट खाना मिलता है, उससे?

—हां, उसी से.

—असंभव.

—नहीं! हजारों की संख्या में होते हुए भी अगर हम शक्तिशाली नहीं बन सके, इस देश को फल-फूल दे कर भी अगर हम आज ही की-सी स्थिति में रहना मान लें, तो बस वह हाथ हमारे ऊपर उठते रहने से कभी नहीं रुकेगा और तब सचमुच ही आने वाले हर कल के लिए हम कमजोर रह जायेंगे. हमें अपनी ताकत को बहुत ही सावधानी और होशियारी से बढ़ाना है. इस तरह धीरे-धीरे इस काम को करना है ताकि किसी को कानों-कान इसका पता न चले. एक कोठी से दूसरी कोठी तक जाना इस समय हमारे लिए बहुत ही कठिन होता है. पहले इस बाधा को हम दूर करें. हर कोठी के लोगों से हम मिल सकें, इसका प्रबंध सबसे पहले करना है. फिर तो हमारे एक स्थान का निर्णय दूसरे स्थान से तीसरे तक पहुंचेगा और अवसर आने पर सभी कोठियों के लोग एक साथ खड़े होंगे. तब कहीं जा कर लोगों को हमारी शक्ति का मान होगा और हमारे ऊपर उठने वाले ये हाथ दोबारा उठने की हिम्मत नहीं कर सकेंगे.

किसन की बातें सभी लोगों की समझ में नहीं आयी थीं, पर जिन थोड़े लोगों की समझ में आयी थीं, उससे किसन संतुष्ट था. कुंदन भी.

किसन का संतोष कभी-कभी बहुत जल्दी ही व्यग्रता का रूप लेता. इधर कुछ दिनों से किसन में एक व्यग्रता-सी देख कर रघुसिंह कह उठता कि हड़बड़ी से गूलर ना पकेला. किसन हमेशा से यही तो सुनता आ रहा था कि वह समय अपने आप आयेगा. वह जानता था कि जिस समय की सभी को प्रतीक्षा थी, वह कभी नहीं आयेगा. इस तरह के समय को सामने लाने के लि[illegible] आगे बढ़ना पड़ता है और उसे घसीट कर ही अ[illegible] बीच लाया जा सकता है. बहुत सोचने के बाद किस[illegible] को लगता कि समय को घसीट लाने की वह शक्[illegible] अभी बस्ती के लोगों में नहीं आयी है. वह कुंदन से क[illegible] बार पूछ चुका था कि उस बल को कैसे पैदा किया जाये. उत्तर में कुंदन कहता— वह बल समय के साथ ह[illegible] आयेगा. और किसन फिर से उसी प्रश्न के सामने अपने को खड़ा पाता— वह समय कब आयेगा?

समय को समय से पहले घसीट लाने के प्रयास [illegible] किसन को लगता कि समय उससे बलवान था. कुंद[illegible] यह भी कहता कि हम आस-पास की सभी बस्तियों क[illegible] शक्ति को अगर एक सूत्र में बांध कर आगे बढ़ें तो संभवत: हम समय से अधिक बलवान प्रमाणि[illegible] हो जायें. लेकिन यह काम संभव था?

कुंदन के यहां पहुंचने से पहले उस दिन जब फू[illegible] वंती के बच्चे की मृत्यु हुई थी, मातमपुरसी के समय कु[illegible] वृद्धों और जवानों के बीच बहस छिड़ गयी थी. व[illegible] पहला अवसर था कि जब सभी जवानों का अपन[illegible] अलग स्वर था. बेचारगी की स्थिति को उस दिन पहल[illegible] बार नकारा गया था. बूढ़ों के भीतर पहली बार [illegible] डर पैदा हुआ था कि इस धरती के ये पहले जन्मे बच्[illegible] कहीं हिंसक न हो उठें. इधर कुंदन की उपस्थि[illegible] में रघु सिंह के भीतर यह डर और भी बढ़ गया था.

बीस-पच्चीस वर्ष से वे जिस जीवन को जीत[illegible] आ रहे थे, उसके इतने अधिक आदी हो गये थे [illegible] स्थिति में परिवर्तन का विचार उन्हें कभी छूता भी नहीं था. जबकि जवानों में एक चेतना-सी आने लगी थी. उसी चेतना के विरुद्ध बोलते हुए रघुसिंह कहता [illegible] उफनल दूध बरतन से बाहर जा गिरेला. किसन को इ[illegible] बात की परवाह नहीं थी. इसके लिए रघुसिंह उसे कोसत[illegible] ही रहता. कभी किसन की मां पर भी बरस पड़ता था, यह कहता हुआ, कि वही उसे बढ़ावा देती है. अप[illegible] सामने कुंदन को पा कर किसन एक प्रक्रिया का [illegible] तैयार करने लगा था और उसका बाप उस प्रक्रि[illegible] को दुध-मुंहा बच्चा मानता.

किसन की मां सिल पर नीम के पत्ते पीस रही थी जब रघुसिंह ने बात छेड़ी थी.

—कैसनो त मुट्ठी भर खायके मिलत बा. पर तो[illegible] लड़का के कारन लगत बा एकरो मोहाल हो जाए[illegible] तुम्हारा बेटा त बस कालहे बनिया आजहें सेठ, जम[illegible] चुकाये सारा देश. हम पूछत बानी कि दूसर लोगन [illegible] झंझट कोई अपन माथे काहे लेवत फिरत ह?

लोढ़े को चलाती हुई बिना सिर उठाये किसन की मां बोली —तोहरा त ओकर कोई भी काम अच्छ[illegible] ना लगेला.

—सरदार लोगन के त मुंह देखत ही रहल, अ[illegible] मालिक के साथ भी झगड़ा खोज रहल बा. आजक[illegible] देवननन् ओकर गुरु बनल बा.

कुछ ही दूरी पर किसन बस्ती के बच्चों को कबड्डी सिखाने में लगा हुआ था. दो दिन पहले इन्[illegible]

बच्चों को सरदार ने अपने यहां मक्की के दाने छुड़ाने की आज्ञा दी थी. और किसन ने बच्चों को उस मुफ्त के काम से रोक लिया था. रामजी सरदार शिकायत लिये रघुसिंह के पास पहुंचा था. एक-एक करके सभी बच्चों के बापों को धमकी दी थी. यह कह गया था कि अगर आज वे बच्चे काम नहीं करते तो फिर वह उन सभी से ईख की गाड़ियां खिंचवा कर रहेगा. किसन अगर तड़के ही बच्चों को कबड्डी के खेल में लगा चुका था तो बस इसीलिए कि वे सरदार के यहां न पहुंच कर अपने खेल में लगे रहें.

अपने हाथ के दतवन को फेंकते हुए रघुसिंह ने कहा —पानी में रहके इ लईका मगरमच्छ से बैर करत बाते.

★ ★

पक्षियों के कलरव के बंद होने पर जब किसन खेत की ओर बढ़ा, उस समय बस्ती के सभी मजदूर आ चुके थे. वह पिछड़ गया था. उसे इमली के पेड़ तक छोड़ने के लिए पुष्पा साथ हो गयी थी. पगडंडी की दूबों पर ओस की बूंदें चमक रही थीं. पावों से छू जाने वाली उनकी ठंडक प्रिय थी. किसन की अंगुली को छोड़ते हुए पुष्पा बोली —बस्ती के कुछ लोगों को तुम्हारी बातें पसंद नहीं हैं.

—तुम्हें तो पसंद हैं न?

—कभी-कभी तो मुझे भी. . . .

—इसका मतलब है कभी-कभी तुम भी बूढ़ों की तरह सोचने लगती हो!

दोनों उस स्थान पर पहुंच आये थे, जहां से पुष्पा को पीछे लौट जाना था. दोनों रुक गये. किसन की निगाह ईख के कारखाने की ओर थी. पुष्पा ने किसन को देखा. उसके आगे आ कर उसने धीरे से कहा— तुमने कल वाला उत्तर नहीं दिया.

—कल वाला उत्तर?

—भूल गये?

याद करने का अभिनय करते हुए किसन ने मुसकरा कर कहा—कल तुमने एक ही बात थोड़े पूछी थी!

—मुझे पिछली बात का उत्तर चाहिए.

—क्या थी वह?

—कुछ लोग सत्या से तुम्हारे ब्याह की बातें करते हैं.

—मुझे जिस लड़की से ब्याह करना है, वह अभी मुझे दीखी ही नहीं है.

—तुम सत्या से ब्याह मत करना.

—क्यों? वह अच्छी लड़की नहीं?

—अच्छी तो है, लेकिन. . .

—बोलो!

—उससे ब्याह करके तुम भी बड़े आदमी बन जाओगे.

—क्यों, मेरा बड़ा बनना तुम्हें गवारा नहीं?

—मेरे कहने का मतलब है कि फिर तो तुम हम गरीबों से कट जाओगे.

—कैसे कट जाऊंगा?

—जिस लड़ाई की तुम बात करते हो, उसे फिर कैसे लड़ सकोगे?

किसन जाने लगा. पुष्पा की ओर देखा और ऊंचे स्वर में बोला —मैं सत्या से ब्याह नहीं कर रहा हूं.

पुष्पा दौड़ती हुई बस्ती की ओर लौट पड़ी.

★ ★

कुछ देर बाद आकाश पर जो सूरज चमकता दिखायी पड़ा, वह इस प्रण के साथ ऊपर आया था कि मजदूरों के शरीर से सारे पसीने को निचोड़ कर रहेगा. दौड़ती हुई पुष्पा कुएं के पास से गुजरी ही थी कि हरबसिया ने उसे आवाज दे कर रोक लिया.

—क्या है चाची?

—अरी कलमुंही के बार तोके कह लीं कि हम तोर चाची नाहीं मौसी लागत बानी.

—ठीक है, चाची और मौसी दोनों एक ही बात है.

—हमर डोलवा उठा के जाना.

—मौसी, मरदों को तुम्हारे हाथ का पानी बहुत मीठा लगता होगा. सूरज की चमकती किरणें सीधे पुष्पा के चेहरे पर पड़ रही थीं. हरबसिया कुछ देर तक उसे एकटक देखती रही.

—क्या देख रही हो, मौसी?

दौड़ कर आने के कारण पुष्पा अब भी हांफ रही थी. नीचे-ऊपर होती उसकी छाती को देखती हुई हरबसिया बोल उठी—देखत ही देखत तोर में त जवानी डबडबा गईल, पुष्पी!

पुष्पा कुछ और लाल हो गयी.

—मौसी, मैं डोल उठा लूं?

—अरे कोई जल्दी ना बा. थोड़ा बात कर ले.

—तुम्हारा लहंगा बहुत सुंदर है, मौसी.

—पुष्पी, तू हमार एक बात मानेगी?

—तुम्हारे पास तो बस एक ही बात होती है, कोई नयी बात हो तब तो!

—तू जेतना पगली हवे ओतना ही तोर मां भी बाते.

—मैं डोल तो उठा लाऊं, मुझे भी पानी भरना है.

—तू हमार बात मान जइबे त मादाम बन के जीबे.

—चाची, फिर वही बात!

—अरी पगली तु लोग दूनों के दिन फिर जाये.

—तुम्हें डोल नहीं उठवाना है, तो मैं चलती हूं.

—हमर संगे खाली कोठी घूमे चलिए.

—मैं जाती हूं.

—अरी हमर डोर उठाती जा.

हरबसिया ने अपने सिर पर कपड़े का बीठा रखा और पुष्पा ने झुक कर डोल को उठा कर उसके सिर पर रख दिया. खेतों की ओर बढ़ने से पहले हरबसिया ने एक बार फिर कहा— घर पहुंच के सोचना.

पुष्पा मन-ही-मन खुश थी कि आज हरबसिया ने बात को थोड़े ही में खत्म कर दिया. अपने प्रयोजन को न तो विस्तार दिया और न ही प्रलोभन गिनाये. उन प्रलोभनों के असर से अपने को बचाते हुए पुष्पा कई बार सोचती रही थी—कोठी. . . वहां की हवेली. . . गहने. . . . सुंदर कपड़े. . .

उसकी मां ने एक ही थप्पड़ में उसके गाल को

लाल कर दिया था. . .बहुत अधिक गरमी थी.

हरबसिया की कुछ पुरानी बातों को सोचती हुई पुष्पा घर की ओर बढ़ गयी. वह गरमी जितनी बाहर थी, उतनी ही भीतर भी. वह मन-ही-मन सोचती रही. चंद बातों में किसन सचमुच ही बहुत पीछे थे. उन्हीं चंद बातों की ऊष्णता से जूझती हुई वह चलती रही. उसकी पलकें बोझिल हो चली थीं. उसके चेहरे पर पसीने के कई दाने चमक आये थे. भीतर से उस गरमी की अकुलाहट को लिये वह घर पहुंची. खटिया पर लेट कर उसने आंखें मूंद लीं. सूरज उसके भीतर धधकता रहा.

पुष्पा के बारे में कुंदन ने सबसे पहले किसन के ही मुंह से कुछ सुना था. जतन के यहां टिकते हुए एकाध बार उसने उस सांवली धुआंधार आंखों वाली लड़की को देखा भी था. इधर जब से जतन का घर उसका अपना घर हो गया था, तब से पुष्पा सुबह-शाम उसके सामने होती थी. जतन के घर के ठीक सामने वाली कतार में था वह घर. दोनों तरफ के घरों के बीच में जो बरगद का विस्तृत पेड़ था, उसी के नीचे के चबूतरे पर वह कभी चक्की में आटा पीसती नजर आ जाती, तो कभी कपड़ों में पैबंद जोड़ती हुई. दिन में दो-तीन बार कुंदन की अनुपस्थिति में भी वह कुंदन के घर पहुंच कर उसके जूठे बरतनों को मांजने के लिए उठा लेती और घर के बाकी कामों को भी निबटा जाती.

किसन ने जो बातें कुंदन को नहीं बतायी थीं, उन्हें पुष्पा ने भी उसे नहीं बताया था. फिर भी कुंदन के बारे में पुष्पा जो भी बात करती, उससे एक दुर्लभ घनिष्ठता का आभास होता. उसकी उन धुआंधार आंखों की धुंधली मायूसी कुंदन को बहुत अच्छी लगती. उसे बात-बात पर मुसकराते पा कर कुंदन मन-ही-मन दुआ कर बैठता कि वह निर्मल मुसकान सभी मजदूरों की स्थायी मुसकान बन जाये.

इस घर में आ कर और पुष्पा को नजदीक से जान कर कुंदन को एक रात अचानक ही खयाल आया कि कहीं पुष्पा तक अपनी पहुंच को अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए तो किसन ने उसे उस घर का नहीं बनाया था? दूसरे क्षण वह अपने आप पर झुंझला उठा था. उसने इस बात को संयोग ही मानना चाहा कि पुष्पा के घर के पास ही घर खाली हुआ था. किसन का जो नदी की ओर कम जा कर इधर की ओर अधिक जाना शुरू हो गया था, उसे भी कुंदन अपने ही कारण समझा.

किसन के बारे में सोचते हुए उसे लगता कि पूरे गांव में वह अकेला था, अकेला, जिसके भीतर एक चिनगारी थी. कई वर्षों से चली आने वाली एक बेबसी को जला कर राख कर देने वाली चिनगारी. किसन के मुंह से वह संतू और मदन की कहानी सुन चुका था. वे दोनों प्रथम चिनगारियां थीं, पर एक को चारदीवारी निकल गयी थी और दूसरे की छाती से बग्घी गुजर गयी थी. इस खयाल से कुंदन कांप जाता कि कहीं किसन के भीतर की चिनगारी को भी भड़कते ही उसे मिटा न दिया जाये. पुष्पा को उसने सुबह और शाम के धुंधलके में अधिक देखा था, फिर भी वह उसे बहुत निकट की मानने लगा था.

यहां नये घर में आये कुंदन का पहला रविवार था. पहली बार वह काम पर से सूर्यास्त से पूर्व लौटा था. पहली बार बरगद के नीचे वह पुष्पा से काफी देर तक बात कर सका था.

—तुम पराठे बहुत अच्छी बनाती हो!

—मां तो कहती है कि मेरा पकाया पराठा लीटी की तरह होता है.

—घर की मुरगियां साग बरोबर, बेटी.

—पर क्या आपको सचमुच ही पसंद है?

—जो चीज अच्छी न लगे, उसे अच्छा क्यों कहूं?

—मुझे खुश करने के लिए आप कह भी सकते हैं.

—अच्छा यह तो बता कि तू कब तक मेरे लिए पराठे बनाती रहेगी?

—जब तक यहां रहूंगी.

—क्या, यहां से कहीं जाने की बात भी तुमने सोच रखी है क्या?

—चाचा! उसका ठुनक कर कहना कुंदन को बहुत अच्छा लगा.

—पुष्पी!

पुष्पा ने आंखें उठा कर कुंदन की ओर देखा.

—अगर तुम्हारा बाप होता तो तुम उसे क्या कहतीं?

—बाप कहती और क्या कहती?

—नहीं, मेरा मतलब यह नहीं.

—तो?

—तुम उसे आप-आप कह कर पुकारतीं या प्यार से तुम कहतीं?

—यह तो मैं नहीं जानती, चाचा!

—अच्छा तो तुम अपनी मां को कैसे पुकारती हो?

—तुम कह कर!

—तो फिर इसका मतलब है कि तुम मुझे कम चाहती हो?

—और आपको भी तुम कहना शुरू कर दूं तो?

—तो अधिक चाहने लगोगी.

—तो फिर अब आपको तुम कहूंगी.

कुछ देर के लिए दोनों के बीच बातें बंद रहीं.

—पुष्पी, तुम्हारी मां बीमार रहती है, फिर भी, वह सरदार की गाय के लिए घास काटती रहती है.

—उसी से तो हमें थोड़ा-बहुत आटा-चावल मिल जाता है, चाचा!

यह तो कुंदन को बाद में मालूम हुआ था कि रोजाना तीन गाय और दस बकरों के लिए घास जुटाने पर पुष्पा की मां को क्या मिलता था. सप्ताह में दो डिबिया चावल, तीन डिबिया आटा, मुट्ठी भर दाल और अंजुली पर तेल. उसी में दो प्राणियों का गुजारा हो जाता था. इस पर कुंदन को हैरत हुई थी. प्रश्न करने पर पुष्पा की मां के मुंह से उसने सुना था.—मैया.

चिरैई के पेट खातिर चिरैई ही के खुराक चाही न.

शाम को काम से लौटते हुए कुंदन कुएं के पास रुक गया था. पुष्पा कुएं से पानी निकाल रही थी और कुछ औरतें कुएं के इर्द-गिर्द खड़ी थीं. कुंदन को अपने बीच आते देख सभी को हैरानी हुई थी. पुष्पा ने हंस कर पूछा था—देवननन् चाचा! प्यास लगी है क्या?

किसी को यह नहीं मालूम हो सका था कि कुंदन सामने से आते हुए दो सिपाहियों से आंख बचाने के लिए औरतों के बीच पहुंचा था. बस्ती में पहली बार दो सिपाहियों को देख कर कुंदन डर गया था. एक के हाथ में जो जंजीर थी, वह काफी देर तक कुंदन के कानों में खनकती रह गयी थी. बाद में जब पुष्पा की मां के मुंह से उसने सुना कि वे यों ही गश्त लगाने आ गये थे, तो कुंदन ने चैन की लंबी सांस ली. फिर अपने चेहरे पर की लंबी दाढ़ी-मूंछ पर हाथ फेरते हुए मन-ही-मन हंस पड़ा. उसे पहचानना आसान थोड़े ही था.

* *

बरगद के पेड़ के नीचे औरतें मकई पीसती हुई चक्की की घड़घड़ाहट के साथ स्वर मिलाये गाये जा रही थीं. जांते की उस घड़घड़ाहट ने सबसे पहले उसे कैद की याद दिलायी, फिर जतसार के राग से बिहार का वह गांव याद आ गया, जहां उसकी मां एकदम इसी तरह सतवा पीसती हुई गाया करती थी. उन जतसारों की इधर-उधर की एकाध पंक्तियां उसे आज भी याद थीं. औरतों के स्वर के साथ वह भीतर-ही-भीतर गुनगुनाता रहा. धुन के बाद कुछ शब्द भी आ गये, अस्पष्ट से :

'मोरे नैहर के संदेसवा बेके तू पहुंचो
मोरे भैया ताकत हूं मैं तोरी राह
गवां के कुवां पानी से भरल होवे
कि अकाल सचेला चहुं ओर
ननदीया मोरी जो तोहे आने न देवे
मोरे भैया देना न तू ओके चंदरहार
मोरे नैहर. . . .'

गौतम की मां अपने सातवें बच्चे को नहलाने के लिए उसके पीछे-पीछे चिल्लाती हुई दौड़ रही थी. कुंदन ने आगे बढ़ कर बच्चे को पकड़ लिया. गौतम की मां एक हाथ से अपनी ओढ़नी को ठीक करती हुई आगे आयी और दूसरे हाथ को आगे बढ़ा कर बच्चे का हाथ थामना चाहा कि कुंदन ने बच्चे को पीछे कर लिया.

—इसे मारोगी तो नहीं?

घूंघट के नीचे से गौतम की मां ने सिर हिला दिया और कुंदन ने बच्चे के हाथ को उसके हाथ में थमा दिया.

अपने हाथ-पांव धोते हुए भी कुंदन चक्की की घड़घड़ाहट और जतसार सुनता रहा. बिहार के खलिहानों और कैद की दीवारों के बीच भटकता रहा, जब तक कि पुष्पा सामने आ कर खड़ी न हो गयी. उसके हाथ में मिट्टी का बरतन था.

हाथ-पांव धो चुकने के बाद खड़े होते हुए कुंदन को पता चला कि मिट्टी के बरतन में ईख के रस से बनी भेली के दो टुकड़े थे. उसे समझते देर नहीं लगी कि एक टुकड़ा उसके लिए था और दूसरा किसन के लिए, जो वहां पहुंचने ही वाला था. बस्ती में ईख की भेली चुपके-चोरी तैयार की जाती थी. अगर किसी सरदार को यह बात मालूम हो जाती तो उस घर के मजदूर कोरस की चोरी के अभियोग में मालिक के सामने पेश किया जाता था. फिर तो उस व्यक्ति के शरीर से कुर्ता और धोती उतार ली जाती थी और चकोतरे के कंटीले पेड़ के साथ उसे बांध कर तब तक कोड़े लगाये जाते थे, जब तक कि चीत्कार बंद न हो जाता और वह बेहोश हो कर लुढ़क न जाता.

यह दृश्य अभी कुंदन को देखने को नहीं मिला था. पर जो उसने सुना था, उससे तो यह भेली सहज में पचने वाली चीज-सी नहीं लगी. उसे डर था कि इस चीज को खाने का मतलब कहीं अपने जिगर पर लोहे के टुकड़े रख लेना तो नहीं था.

पुष्पा जब घर के भीतर जाने लगी, तब कुंदन ने देखा कि उसका लहंगा फटा हुआ था. उसे दुख हुआ. यह दुख उस समय और भी बढ़ गया, जब उसे मालूम हुआ कि पूरे वर्ष में एक ही लहंगे और एक ही चोली भर का कपड़ा सभी औरतों को मिलता है. मर्दों के लिए भी तो वही बात थी. एक धोती, एक कुरते में पूरा वर्ष बिताना पड़ता था. पुष्पा का लहंगा उस हालत में बिल्कुल नहीं था कि उसमें पैबंद आदि लगा कर कुछ और दिन बिताये जा सकते.

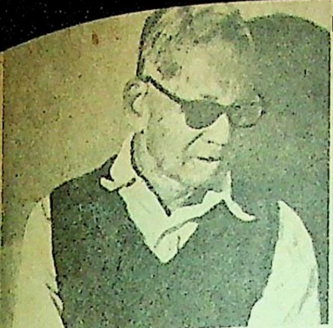
उसे उस गठरी की एकाएक याद आ गयी, जिसे अपने साथ लिये वह कैद से भागा था. उसमें मंगरू की वह पीली धोती अब भी उसी तरह थी. कई यादें सामने आने के लिए दिमाग में छटपटायीं, पर कुंदन ने उन्हें जेहन के भीतर ही बंद रहने दिया. एकाएक उसके भीतर एक उल्लास की व्यग्रता पैदा हो गयी थी. पहली बार उसके सामने किसी को कुछ भेंट करने का अवसर आया था. वह उससे चूकना नहीं चाहता था. वह तुरंत अपने स्थान से आगे बढ़ा. घर के कोने में पहुंच कर उसने पुस्तकों के तख्ते के बगल वाले मचान पर हाथ पहुंचाया. गठरी उसके हाथ आ गयी. उसने उसे खोला. मंगरू की वह पीली धोती अपनी दयनीय हालत में उसके सामने थी. एक बार फिर यादों ने उसके भीतर अकुलाहट पैदा की. एक बार फिर कुंदन ने यादों को फेनिल बुलबुलियों की तरह मिट जाने दिया. उसने उस धोती को उलट-पलट कर देखा. अब भी उससे पुष्पा के लिए दो लहंगे और दो चोलियां बन सकती थीं.

अगले अंक में

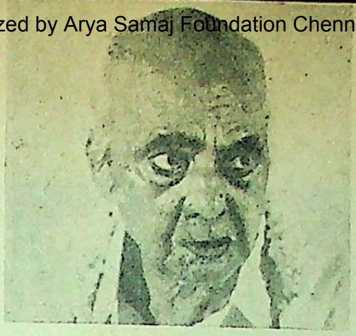
कुंदन ने मंगरू की वह पीली धोती पुष्पा को दी तो उसे देख कर पुष्पा की मां, फूलवंती के सामने पति का चेहरा आ गया—यानी मंगरू का चेहरा... और उन दिनों की यादें, जब वह बिहार से मारीच देश के लिए चली थी. . . .'


ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
REGD.
EYETEX
KUMKUM PASTE
11 IN 1
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

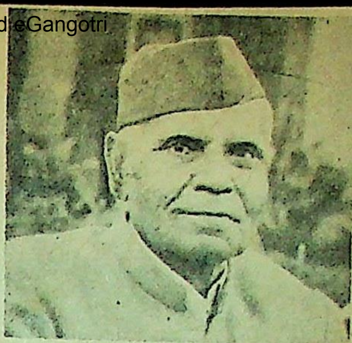

लिखाई में एक
नया आनन्द
लक्सर-कैमलिन
प्रस्तुत करते हैं
लिखाई के आधुनिक साधनों
में १००% डायनाफ्लेक्स निब
के साथ में :
एक्सेला और हालमार्क
हर एक के साथ धातु का एक
अतिरिक्त रिफिल
खूबसूरत कलमों की उच्चकोटि की डायनाफ्लेक्स
निब की जांच आधुनिक स्वचालित मशीनों से की जाती है।
बिना रुके सरलता से चलती हैं और लिखाई का
पूरा आनन्द देती है। एक्सेला और हालमार्क
सुन्दरता और कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है।
इन्हें खुद इस्तेमाल कीजिये या उपहार में दीजिये।
एक्सेला
Luxor camlin CASSET DYNAFLEX TIP REFILL
हालमार्क
मुफ्त
एक खूबसूरत
पेनकेस पेनस्टेन्ड
आप के लिये।



वि. स. खांडेकर



काजी नजरुल इस्लाम



जी. पी. . वास्तव

श्रद्धांजलियां

यह एक दुखद संयोग ही है कि कुछ ही दिनों के अंतराल से हिंदी, मराठी और बंगला के तीन महान साहित्यकार हमारे बीच से उठ गये—और यह भी एक संयोग ही है कि इन तीनों के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये 'कला जीवन के लिए' के आदर्श में विश्वास रखते थे.

वि. स. खांडेकर

मराठी के मूर्धन्य साहित्यकार विष्णु सखाराम खांडेकर का नाम आने वाली पीढ़ियां श्रद्धा और आश्चर्य से लेंगी. ७८ वर्ष के अपने जीवनकाल में अधिकांश समय खांडेकर किसी-न किसी बीमारी से पीड़ित ही रहे, पर इसके बावजूद जो साहित्य वे छोड़ गये हैं, उस पर आश्चर्य ही हो सकता है—— १५ उपन्यास, ३० कथा-संग्रह, १० निबंध-संकलन, ११ आलोचनात्मक ग्रंथ, १ जीवनी, १ नाटक, ५ अनुवाद, आदि.

पर परिमाण किसी लेखक की विशिष्टता नहीं बताता—— विशिष्टता उसके कथ्य में होती है. अपने बारे में एक बार खांडेकर ने कहा था: 'मैं मात्र यथार्थवादी नहीं हूं--मैं सौंदर्यप्रेमी यथार्थवादी हूं. जीवन जैसा है, उसे वैसे ही चित्रित करना मुझे अभीष्ट नहीं, जीवन कैसा होना चाहिए, उसका चित्रण भी मैं करना चाहता हूं.'

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने वाला उपन्यास **'ययाति'** उन्होंने १९५९ में लिखा था. पर इसके पूर्व ही **'उल्का', 'दोन ध्रुव', 'हिरवा चापा'** और **'दो मणे'** आदि उपन्यासों से वह महाराष्ट्र के युवा-वर्ग का मन जीत चुके थे.

काजी नजरुल इस्लाम

बंगाल के विद्रोही कवि नजरुल इस्लाम उन गिने-चुने बंगला साहित्यकारों में से थे जो अपने लेखन को रवींद्रनाथ टैगोर के प्रभाव से मुक्त रख सके. पर नजरुल के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह जनता के कवि थे. उन्होंने अपनी रचनाओं में जन-भावनाओं को स्वर दिया. यही कारण था कि नजरुल के गीत आजादी के दीवानों के लिए मंत्र बन गये.

स्वयं को महाप्रलय का नटराज और वर्तमान का कवि कहने वाले नजरुल की कविताओं ने आजादी के दीवानों को नयी गीता, नयी चेतना और नया ओज दिया था. उनके प्रथम काव्य संग्रह **'अग्निवीणा'** ने ब्रिटिश शासन का तख्ता हिला दिया था. संग्रह जब्त कर लिया गया. पर कवि अब भी स्वतंत्र था. वह उसी जोश से से दहाड़ता रहा. **'विषेर बांशी', 'भांगर गान', 'प्रलय शिखा', 'दोलन चम्पा', 'नजरुल गीतिका', 'संचायिका'** आदि उनकी रचनाओं में विद्रोह का वही स्वर था.

जी. पी. श्रीवास्तव

लोगों को हंसाना भी अपने आप में कितनी गंभीर बात है, इस बात का सबसे पहले एहसास कराने वाले लेखक का नाम है गंगाप्रसाद अर्थात जी. पी. श्रीवास्तव. जी. पी. ने अपनी रचनाओं से पाठकों को खूब हंसाया है— यहां तक कि उनकी रचनाएं भुवाली सेनिटोरियम में क्षय रोगियों को पढ़ने के लिए दी जाती थीं ताकि वे प्रसन्न चित्त रहें.

व्यंग्यकार विसंगतियों में जीता है, सामाजिक विद्रूपताओं को समझता है और फिर स्वयं को जोकर बना कर इन विसंगतियों और विद्रूपताओं को स्वर देता है. ऐसा करते समय वह स्वयं कितना निरीह लगता है, यही उसकी सफलता की कसौटी है. और **'गड़बड़झाला'** (१९१२) से ले कर **'मिस्टर अकिल बहादुर'** (१९७१) तक का जी. पी. का लेखन इस कसौटी पर खरा उतरता है. अपने ८६ वर्ष के जीवन में उन्होंने ३५ ग्रंथ प्रकाशित करवाये.

पर इतना सब लिखने के बावजूद जी. पी. अभावों में जिये और अभावों में ही मरे भी. उन्होंने कहीं लिखा था: 'हिंदुस्तानी लेखक जब खुद ही कुआं खोदता है, तब कहीं उसे हलक तर करने के लिए दो-चार बूंद पानी नसीब होता है.' जी. पी. जिंदगी भर दो-चार बूंद पानी के जुगाड़ में लगे रहे. कुल मिला कर आम आदमी की यही स्थिति है. इसीलिए जी. पी. ईमानदारी के साथ आम आदमी की बात कह सके थे.

इन तीनों महान साहित्यकारों को हमारी श्रद्धांजलि! □□□

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर : डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ९६, द फर्स, एलेक्जेंड्रा रोड, हौंस्लो टी डब्ल्यू ३, ४ आर एच, मिडिलसेक्स, यू.के.

पंजीयत स. एम. एच. दक्षिण बंबई-३९९

